

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186702

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP-902-26-3-70-5000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H301.4

Accession No. G.H.3616

Author R175

Title रंगेयराघव & मुरारीप्रभाकर

सामाजिक संस्थाये और ऐतिहास

This book should be returned on or before the date last marked below.

1961.

सामाजिक संस्थायें और रीतिरिवाज़

(SOCIAL INSTITUTION AND CUSTOMS)

डॉ० रांगेयराघव एम० ए०, पी-एच० डी०
मुरारी प्रभाकर (सोध-विद्यार्थी)

विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक :

राजकिशोर अग्रवाल

बिनोद पुस्तक मन्दिर

हॉस्पिटल रोड, आगरा

सर्वाधिकार सुरक्षित है

प्रथम संस्करण

१९६१

मूल्य

₹ ००

मुद्रक :

गुलाबमिह यादव

आगरा फाइन आर्ट प्रेस

राजा की मण्डी, अहीर पाड़ा

आगरा

प्रस्तावना

समाज के विकास में संस्था, रीतिरिवाज, लोकाचार और रूढ़ियों का विशेष स्थान है। प्रत्येक देश की, प्रत्येक जाति की अपनी कुछ विशेषतायें हैं। प्रायः सब जातियाँ अपने रिवाजों को शाश्वत समझती हैं। यदि कोई उनमें किसी प्रकार का अभाव दिखाता है तो वह बात उन्हें नहीं सुहाती। ग्रामीण जनता और भी अधिक रूढ़ होती है। भारतीय समाज व्यवस्था में अनेक प्रकार की कुरीतियाँ मौजूद हैं। किंतु किसी भी मानव-मूल्य का अंकन करने के पूर्व हमें सार्वभौम दृष्टिकोण प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

देश के भविष्य निर्माताओं के मानसिक क्षितिज को जितनी व्यापकता प्राप्त हो, वही श्रेयस्कर है। इस विषय पर पहले यहाँ सम्मत विद्वानों के विचार एकत्र कर दिये गये हैं और भारतीय विशेषतायें उल्लिखित करके उनकी व्याख्या करते हुए, स्वतंत्र मत दिया गया है। हमारी व्याख्या पूर्णतः मौलिक है और हमने उसके आधार भी प्रस्तुत किये हैं।

आशा है यह पुस्तक इस विषय के प्रति पाठकों में रुचि जगायेगी और भविष्य में विद्वान महान कृतियों का सृजन करेंगे।

—रांगेयराघव

—मुरारी प्रभाकर

प्रकाशकीय

संसार के विभिन्न देशों के रीतिरिवाजों (Customs) लोकाचारों (folkways) तथा रूढ़ियों (mores) पर प्रस्तुत पुस्तक नई दृष्टि से विवेचन प्रस्तुत करती है। यहाँ विद्वान लेखकों ने मौरगैन, मार्क्स, एंगिल्स, मेकाइवर, मेलिनोवस्की आदि विचारकों की विशद व्याख्या की है तथा अपना मौलिक मत प्रस्तुत किया है। विद्यार्थियों और विद्वानों के लिये यह वैज्ञानिक विवेचन अत्यंत महत्वपूर्ण है। परिवार, पितृसत्ता, मातृसत्ता, तथा उनके विकास और प्रभाव यहाँ बड़े गंभीर चिंतन के साथ प्रस्तुत किये गये हैं। संस्थाओं और संस्कृति के विषय में यहाँ अनेक नये तथ्य मिलते हैं, जो अन्यत्र एक ही स्थल पर प्राप्त होना दुष्कर है। हमें आशा है कि यह पुस्तक एक महत्वपूर्ण अभाव की पूर्ति करेगी। इसकी मौलिकता इसकी वास्तविक शक्ति है।

विषय-सूची

१—भूमिका : रिवाज, लोकाचार और रूढ़ि	१
२—मैकाइवर का मत और विवेचन	१६
३—बसन्त ऋतु के रिवाज	२४
४—ईसामसीह के स्मरणार्थ दिवस के प्रसिद्ध रिवाज	३२
५—मई दिवस और उत्सव	३६
६—सजावट और पवित्रता	४४
७—मध्यग्रीष्म के विश्वास और आचरण	४८
८—प्राचीन और नवीन गोष्ठी	५२
९—शिष्टाचार के रिवाज	५६
१०—रोमनी आचार व्यवहार और प्रथाएँ	६१
११—शरीर गोदना और उसका महत्त्व	६५
१२—असभ्य जातियों का यौन-जीवन	७२
१३—पर्दा और उसका महत्त्व	८०
१४—यौन-जीवन का पृथक्करण	८७
१५—काउवेड का अर्थ	९३
१६—दुल्हन-रहित विवाहोत्सव	९८
१७—विवाह की किस्में	१०४
१८—पूर्वी लोगों की शादियाँ	११२
१९—यूरोप के राष्ट्रीय नृत्य	१२१
२०—दुष्ट तथा अन्य आत्माओं के नृत्य	१३०

२१—बीमारी के भूतों को भगाना	१३७
२२—पवित्र नगाड़े	१४४
२३—पुतलों का उत्सव	१५०
२४—नेताओं के प्रति शोक-प्रदर्शन	१५८
२५—वृक्ष और शव गाड़ने का स्थान	१६४
२६—पवित्र सप्ताह और इसके उत्सव	१७१
२७—आधुनिक साधु, फकीर और तपस्वी	१७८
२८—उत्तरी यूरोपीय शादी के रिवाज	१८७
२९—वर्ष के प्रथम दिवस के रीति-रिवाज	१९५
३०—उपसंहार	२०४

जाने जमीन को छोड़ दिया जाता है, इसके लिये कोई तिथि निश्चित नहीं की जाती। यह बिल्कुल साफ़ चित्रों में बनाया जाता है कि रोटियों के ऊपर दुजोड़ी बहिन दिखाई दें, जिन्होंने कि शताब्दियों पूर्व दान-प्रथा को प्रचलित किया था। इस प्रकार का विश्वास लोगों में बहुत समय तक रहा और कहीं-कहीं आज भी मौजूद है। लेकिन यह प्रथा १८ वीं सदी के अन्त में नष्ट कर दी गयी। अब इन चित्रों के सम्बन्ध में ऐसा माना जाता है कि ये दो विधवायें, जो कि एक विशेष किस्म की रोटी बनाती थीं, हैं।

दूसरा वसियतनामा भी इस किस्म का प्रचलित है जो कि एक छोटी जगह अपटन के नाम से पुकारा जाता है। यह १५८३ में खोज की गयी थी। रोटी के टुकड़े चुने हुये १६४ व्यक्तियों को दिये जाते थे और ९ आवश्यकता वाले व्यक्तियों को, ५ गज फलालीन तथा ११ गज सफेद कपड़ा दिया जाता था।

टन्वीकिन्दम में एक खाली रोटी को चर्च के अन्दर इसी दिन के अवसर पर काटा जाता है और वह जवान व्यक्तियों में बाँट दी जाती है। इस प्रथा को सन् १६४५ में प्यूरिटन लोगों ने खत्म किया। वे लोग इसे एक अन्ध-विश्वास का शेष भाग कह कर पुकारते थे। पार्लियामेंट ने आज्ञा दी कि ये रोटियों के टुकड़े खरीदे जायें और गरीब आदमियों में बाँट दिये जायें। छीना-झपटी के लिये आज्ञा नहीं दी। ऐसा रिवाज एक बार पेडिगटन में भी रोक दिया गया। यह लन्दन के पास एक छोटा सा गाँव था। यह १९वीं शताब्दी के लोगों द्वारा याद किया जा सकता है, क्योंकि इसकी याद पुरानी नहीं है।

चर्च के त्योहारों में सबसे बड़ा उत्सव स्वभावतः ही ईसामसीह का दिन हो गया और यह स्वभावतः छुट्टी के रूप में मनाया जाने लगा। मुख्य रूप से जब कर्जदारी समाप्त होती है, दुःख दूर होता है और दुःख खुशी में बदल जाता है, सर्दी का अन्त होता है और नये-नये फूल प्रगट होते हैं, पेड़ों पर नवीन पत्तियाँ खिलती हैं और सूर्य नयी चमक के साथ चमकता है। वास्तव में ऐसा माना जाता है कि ईसामसीह के इतवार के दिन सूर्य अन्य कैलेण्डर के निश्चित समय की अपेक्षा पहले निकलता है और अपनी विशेष चमक के साथ अधिक गर्मी लिये हुये दमकता है और नाचता भी है।

“ईस्टर के सूर्य की तुलना में कोई भी दृश्य नहीं रखा जा सकता।”

इस प्रकार का गीत दुल्हन अपनी शादी पर गाती है।

इस इतवार के बारे में 'मिरर आफ द मन्थ्स' के लेखक ने काफी लिखा है।

इस बात की रक्षा करने के हेतु लार्ड मेयर और एल्डरमैन ने शिकारी-अवस्था के मध्य एक सुन्दर लक्ष्य बताया है, जिसे हर एक ईसामसीह के सोमवार को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। एक लेखक ने सन् १८२६ के लन्दन के एक अखबार की बात के दृश्य को वर्णित किया है, इस मूर्खता से भरे हुए पाठ को छिपाया नहीं जा सकता। प्रातः ६ बजे से कुछ शिकारी व्यक्ति घोड़े पर चढ़े हुये, कुछ टमटम पर बैठे हुये, कुछ गाड़ियों पर और कुछ पैदल चलते हुये दिखाई देते हैं। कुछ घण्टों तक वे अपने शिकार की बाट देखते हुये इधर-उधर घूमते हैं। वे लोग शाम तक बाट जोहते हैं। बहुत से लोग जंगल में अपने खाने-पीने के लिये घूमते हैं, और बहुत-से अपना खाना अपने साथ ले जाते हैं। सरायों के रक्षक शिकार शुरू होने से पूर्व तक उसे प्रयोग में लाना चाहते हैं। इसलिये वह बारहसिगा गाड़ी में एक घर से दूसरे घर को ले जाया जाता है। प्रत्येक सुबह ३ पैसे हर एक से लिया जाता है। ढाई बजने के बाद शिकारी दो बड़ी लाइनों में वापिस हो जाते हैं, जब कि यह आशा की जाती है कि जानवर दौड़ेगे। अनेकों ही खिलाड़ी दौड़ते हैं और गायब हो जाते हैं। किस के साथ क्या गुजरेगी, यह नहीं जाना जाता, फिर कई शिकारी लन्दन को वापिस लेडीमेयोरेस, मेन्सन हाउस में लौटते हैं।

प्रत्येक आदमी ईसामसीह के उत्सवों से जोश प्राप्त करने की कोशिश करता है। ईसामसीह के सोमवार के दिन पुरुष स्त्रियों को उछालते हैं और मङ्गलवार को स्त्रियाँ अपने पुरुषों को अपनी ताकत के मुताबिक उछालती हैं। कुछ गेंदों के खेल होते हैं, जिनमें पुजारी हिस्सा लेते हैं। दुरहम की काउन्टी में जवान व्यक्ति सोमवार को लड़कियों के जूतों को ले जाते हैं और दूसरे दिन लड़कियाँ इससे लाभ उठाती हैं। तब वे सब मिलते हैं और साथ-साथ आनन्दोत्सव मनाते हैं। इस प्रथा का पूर्व-स्वरूप आज तक नहीं जाना गया है कि क्यों स्त्रियाँ पुरुषों के साथ और पुरुष स्त्रियों के साथ ऐसा करते हैं। कुछ स्थानों पर यह रिवाज इस प्रकार भी है कि स्त्रियाँ मङ्गलवार के दिन अपने पतियों को पीटती हैं और दूसरे दिन पुरुष भी ऐसा ही करते हैं। लेकिन यह सब कुछ दयालुता के वशीभूत होकर तथा आनन्द लेने के ढँग से किया जाता है। ईसामसीह उन सबको क्षमा प्रदान करते हैं। इस दिन छुट्टी की परम्परा मनाते

के लिये लोग दावत और शराब अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक प्रयोग में लाते हैं। अण्डा और सूअर का गोشت अँग्रेज लोगों का एक आनन्ददायक नाश्ता बन गया है, तथा मजदूरों को यह शाम का मधुर भोजन है। इस सम्बन्ध में उन लोगों के विचार ईसामसीह की तश्तरी से सम्बन्धित हैं। सूअर की जंघा प्रत्येक मेज के ऊपर रखी होती है और इसके साथ अंडा होता है जो कि ईसामसीह से पूर्व का माना जाता है। इससे जीवन का प्रारम्भ तथा जीवन की निरन्तरता समझी जाती है।

✽

इस ईसामसीह के अंडे का इतिहास मिस्री और फारसी लोगों में खोजा जा सकता है। यह ईसाइयत से पूर्व की बात है। बहुत से लोग इससे चीनी और चाकलेट बनाने की सोचते हैं तथा इससे शहर की छोटी और बड़ी दुकानें भरी हुई रहती हैं। यह सिर्फ ईस्टर-एग की नकल है। वास्तविक बात यह है कि एक मुर्गी का अण्डा होना चाहिये। यह बहुत तेज गर्म करना चाहिये तथा इसको रंगीन बनाना चाहिये। इसको रंगीन करने का तरीका यह है कि इसे कोकोनियल में डुबो देना चाहिये तथा सब्जी के रंगीन मसाले में डुबोना चाहिये। फिर इसको ऊँचाई से लुढ़काना चाहिये। अगर किसी का अंडा लुढ़कते समय टूटता नहीं है तो वह व्यक्ति अगले ईसामसीह-दिवस तक बड़ा भाग्यशाली बना रहेगा—ऐसा माना जाता है। अगर किसी का अण्डा चटक जाता है तो समझना चाहिये कि उसके भाग्य में किसी भी कार्य में सफलता मिलना कठिन है। लंकाशायर और नार्थम्बरलैंड में इसको 'पेस एग्स' कहा जाता है, जहाँ पर बजाय लुढ़काने के हँसी-हँसी में इसे उछाला जाता है और यह पेस से पेस्ट हो जाता है। निश्चित रूप से वे पार्क एग होने चाहियें। यह नाम ग्रीक के पेस्चा शब्द से लिया गया है।

जर्मन देश के अन्दर भी अण्डा इस दिवस के अवसर पर अपना उतना ही महत्व रखता है जितना कि इंग्लैण्ड में। फ्रांस, इटली और स्पेन में यह मुश्किल से दिखाई देता है। फ्रांस की हलवाइयों की दुकानें अधिकतर इस दिन सुन्दर मीठी मछलियों से भरी हुई दिखाई देती हैं। ये पोइसोन्सद एत्रिल के नाम से पुकारी जाती हैं, और कभी-कभी यह ईसामसीह से सम्बन्धित समझी जाती हैं। लेकिन इनमें से कोई बात साफ नहीं है। जर्मनी के स्प्रिवालड जिले में, जो कि बर्लिन के निकट है, जवान व्यक्तियों का इस दिन के खेल और प्रथाएँ उन बातों से सम्बन्धित हैं जो कि बहुत-सी जगह देखी जा सकती हैं। अण्डा इनके अन्दर एक प्रमुख भाग रखता है। बच्चों द्वारा इस दिन एक

प्रसिद्ध लीला की जाती है। वे लोग किसी नाले या तालाब के किनारे ईसामसीह की अग्नि जलाते हैं। पानी, जिसके अन्दर यह अग्नि चमकती है, उसे ऐसा माना जाता है, कि यह व्याधि-मुक्त करने की ताकत रखता है। बहुत से चम्मच अपने लिये और अपने बीमार दोस्तों के लिये प्रयोग में लाये जाते हैं। स्त्रीवाल्ड के गाँवों में इस दिन औरतें अपनी पुरखिनों की पोशाकें धारण करती है, जिसमें वे बड़ी सुन्दर दिखाई देती है। लड़कियाँ, जब वे इस अवसर के जुलूस में भाग लेती हैं, तो फ्रॉक पहिनती हैं तथा अपने सिर पर एक पर्दा रखती हैं। सेक्सन लड़के और लड़कियाँ उत्तरी देश के अँग्रेज बच्चों की भाँति ही अण्डों को लुढ़काते हैं। प्रशा में, अँग्रेजों के अण्डा माँगने के रिवाज की अपेक्षा, अण्डा बेचते हैं, और उसके चारों ओर एकत्रित हो जाते हैं।

जर्मनी में ईसामसीह के त्यौहार पर गाने अधिक गाये जाते हैं। टिरोल के निवासी, जो कि अब तक जर्मन है और इटली के शासन में है, अपने सितार के स्वरों पर गीत गाते हैं और एक गाँव को जाते हैं तथा वहाँ के निवासियों द्वारा उनका स्वागत किया जाता है। इंग्लैण्ड में भी गायन का प्रचार है। दक्षिणी भाग में स्कूल के बच्चे बाजार में गाने के लिये एकत्रित हो जाते हैं। इनमें से बहुत से अनोखी पोशाक पहने हुये होते हैं, तथा बहुत से फूलों की मालाएँ पहने हुये होते हैं। यार्कशायर के वेवरले में लड़के मिन्सटर गुम्बद की चोटी पर पहुँच जाते हैं और गीत गाते हैं।

गुड फ्राइडे के रिवाज भी इतने ही प्रसिद्ध और आदरणीय माने जाते हैं जितने कि ईसामसीह के जन्म-दिवस के। अब मुश्किल से ही कोई प्रथा जीवित है। सिवाय इसके कि अँग्रेज लोग गर्म मसाले की मीठी टिकिया इस दिन वैसे ही खाते हैं जैसे पहिले खाते थे, बाकी सब बदल गया है। कभी जैसे गुड फ्राइडे के दिन टिकिया रखी जाती थी, उसी प्रकार रोटी रखी जाती है, और वह साल में अच्छे उत्सवों पर काम में लाई जाती है। अगर कोई बीमारी से परेशान होता हो तो इसका एक टुकड़ा पानी में भिगो कर रखे और इस प्रकार का पानी उसे तन्दुरुस्त बना देगा, ऐसा अभी तक माना जाता है।

अगर गठिया का रोग हो जाये तो विश्वासानुसार रोगी को चाहिये कि गुड फ्राइडे के दिन एक अगूँठी राजा-रानी के पास ले जाये। वे उसे आशीर्वाद देंगे और उससे उसकी बीमारी दूर हो जायेगी। मुश्किल से सौ वर्ष

पहिले, नौ कुंआरे व्यक्ति मिलकर ६ पैंस और सिक्के देते थे तथा उस धन से एक चाँदी की अँगूठी बनाई जाती थी तो वह किसी भी जवान औरत को जो कि कमजोर हो गयी है, पुष्ट बना सकती थी और उसकी कमजोरी में लाभ पहुँचा सकती थी, ऐसा माना जाता था। वास्तव में आज भी बहुत से व्यक्ति किसी न किसी किस्म की अँगूठी में विश्वास रखते हैं, चाहे वह राजा-रानी द्वारा आशीर्वादित न हो। प्रभु-सत्ताधारी लोग गुड फ्राइडे के दिन एक दूसरा कार्य करते थे। वे लोग मार्ग पार करते हुये रेंगते थे। उनके रेंगने के लिये एक विशेष प्रकार का गलीचा ले जाया जाता था। लेकिन वे वास्तव में अपनी सम्पूर्ण ताकत से नीचे की ओर जाते थे, और ईसा के प्रति अपनी स्वामिभक्ति मार्ग पार करने से पहले दिखाते थे, तथा वे उसे प्यार करते थे।

अंग्रेज प्रभुसत्ता-धारियों में माउण्डी गुरुवार के दिन गरीबों को धन देने की प्रथा हमेशा से चली आ रही है। यह प्रथा गुड फ्राइडे से पहिले की जाती है। डच विलियम के जमाने से सत्ताधारी लोग गरीब व्यक्तियों के पैर धोते चले आ रहे हैं। लेकिन एक प्रोटेस्टैंट शहजादे ने आर्कबिशप ऑफ यार्क से कहा, कि वह लॉर्ड हाई आलमौनर था, उसे ऐसा नहीं करना चाहिये। पर इस प्रकार की बातें फिर भी बहुत वर्षों तक चलती रही। पर अन्त में इस प्रकार गरीब व्यक्तियों के पैर धोना एकदम त्याग दिया गया।

माउन्डी शब्द पुराने बास्केट शब्द से लिया गया है। बास्केट वह डलिया थी जो कि गरीब व्यक्ति कुछ लेने के लिये लाते थे। १७३१ के अदालत सर्कूलर के समय से ही ऐसा स्पष्ट है। ४८ पुरुष और ४८ स्त्रियों की संख्या हमेशा से ही मान्य थी। इन्हें प्रभुसत्ता-धारियों की आयु माना जाता था। वह असल में सम्राट् जार्ज द्वितीय की ४९ वीं वर्ष थी। लोगों को लिये गर्म गोश्त तथा भेड़ के कन्धे का गोश्त और माँगने का प्याला, डिनर के नाम पर दिया जाता था। इसके बाद बहुत बड़ी मछली तथा (रोटी जो कि सुन्दर ढँग से नहीं बनी होती थी) एक बड़ी पुरानी लिग तथा एक बड़ी सूखी मछली, बारह लाल मछलियाँ तथा बारह सफेद मछलियाँ और चार चौथाई रोटी के टुकड़े दिये जाते थे।

प्रत्येक ऊँची किस्म के तथा धनवान ईसाई लोगों का यह कर्तव्य था कि वे गरीबों के पैर धोयें तथा इस उत्सव को मनायें। पोप ने इस आदत को जारी रखा, लेकिन वह गरीब आदमियों के लिये १३ स्थानापन्न विशप रखता

था । १२ विशेष धर्मदूत के प्रतिनिधि थे तथा १३ वाँ देवदूत था जो कि सिर्फ एक बार प्रगट होता था, ठीक जब कि ऐसी क्रिया की जा रही होती थी । लेकिन वे जो कि अपने पैर धुलवाते थे, वास्तव में गरीब हो जाते थे और होते थे ।

मई-दिवस और उत्सव

विश्व-महायुद्ध मानव-जाति पर दंड की भाँति गिरा, जिसने अनेकों ही प्रथाओं तथा परम्पराओं को गहरा बना दिया। जो कुछ भी शेष बची हैं, और जीवित रही है, वे मानव-जाति की विशेषताओं को बतलाती हैं। और ये सभी अपने प्राचीन स्वप्न तथा उम्मीदों को अब तक कायम किये हुये हैं। इन जीवित प्रथाओं में से कोई भी इतने विशेष महत्त्व की नहीं जितनी कि मई दिन की।

अप्रैल के अन्त में यह देखा जाता है कि शादियों की संख्या काफी बढ़ जाती है, और यह ३० अप्रैल तक बढ़ती ही जाती है। इसका कारण मई की शादियों के विरुद्ध सामाजिक निर्णय है। ऐसे लोग अपने को अभागा मानते हैं, जो शादी नहीं कर पाते। लेकिन वे अभागे क्यों हैं? शायद इसलिये कि एक मिथुन जो अप्रैल खत्म होने से पहिले शादी करने की जल्दी करता है या जून के शुरूआत तक के लिये अपनी शादी को स्थगित कर देता है, वह मई की मधुर ऋतु की वास्तविकता को समझता है।

मई नाम की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अबतक कुछ सन्देह बने हुये हैं। ओविड कवि ने इस सम्बन्ध में कुछ बातें बताई हैं—‘मैजस्टास या रोमन लोगों की प्रभुता-शक्ति—रोम के विधान की परिपद की शक्ति, रोमन लेजिस्लेचर की छोटी शाखा, इससे ही शायद इस महिने का नाम लिया गया है। शायद यह जुपीटर की माता माया के नाम से लिया गया है। एक हजार नौ सौ वर्ष पहले यह ओविड ने लिखा था और यह घोषित किया था कि शादियों के लिये यह महीना बीमारी का है, जिसने कि लोगों के मस्तिष्क पर प्रभाव डाला है।

मई दिवस की धार्मिकता के बारे में महायुद्ध से सम्बन्धित बातें बच्चों द्वारा आज भी की जाती हैं, जो कि परम्परा का स्वाभाविक भंडार है। लड़ाई

से पूर्व बहुत-सी प्रथायें जो कि भूली जा चुकी थीं, जीवित हुईं। अब भी इंग्लैंड के ३५ मील के हिस्से में बच्चे अपने को फूलों की मालाओं और फूलों के द्वारा निर्मित कपड़ों से सजाते हैं और घर-घर घूमकर पैसा इकट्ठा करते हैं। वे लोग अपने पड़ोसियों के साथ संगीत गाते हैं, जिनमें से एक यहाँ दिया जाता है—

“शुभ प्रभात ! सज्जनों, महिलाओ ! आज मैं आप की शुभ-कामना करता हूँ। मैं आपको अपना हार दिखाने आया हूँ, क्योंकि आज मई-दिवस है।

ओ ! स्त्री और पुरुषो ! मैं तुमको नमस्कार करता हूँ तथा मैं तुम्हारे लिये अच्छे दिन की आशा करता हूँ। मैं तुम्हें अपनी माला दिखाने आया हूँ, क्योंकि यह मई-दिन है।”

उपर्युक्त गीत का अन्त यह कहते हुये होता है कि, “कृपया हमको आधा पैनी दीजिये, हम सभी आप के यहाँ से भाग जायेंगे।” यह सम्भव है कि बच्चे स्वयं को विदूषक के रूप में ढाल कर फूलों की माला पहिनते हैं और सुन्दर पोशाक से सजाते हैं। इसकी उत्पत्ति हमको पीछे की ओर, फूलों की देवी की ओर ले जाती है, और उस प्राचीन समय में ले जाती है, जबकि मनुष्य ईश्वर की खोज में “उपजाऊपन” के लिये भेंट बनाने में लगा हुआ था। बच्चे जिनसे अपने को सजाते हैं वे वही मालायें हैं जिनसे कि एक बार मई पोलस के उत्सव को सजाया गया था, प्रत्येक सरसब्ज गाँव में ही नहीं बल्कि प्रत्येक कस्बे में भी शोभा रची गयी थी। लन्दन में भी इस नष्ट हुये मई पोलस की स्मृति भी सेंट अन्ड्रू के डंडे के साथ जीवित है। यह डंडा मई के प्रातः को छाँटा जाता था, दक्षिणी चर्च के बीच वाली गली के पहले इस डंडे का एक किनारा जमीन के अन्दर गाढ़ दिया जाता था और यह चर्च की छत से ऊँचा रहता था।

सर जेम्स फ्रेजर के अनुसार मई-पोल और इसकी धार्मिकता हमको पेड़ों की पूजा की ओर ले जाती है। पेड़ मानव के लिये लाभकारी माने जाते हैं और वर्षा तथा सूर्य की रोशनी देते हैं, फसल को पैदा करते हैं। जड़ी-बूटियों को बढ़ाते हैं। स्त्रियाँ इसी से इस वसन्त को मनाती हैं। लोग अपने घर के सामने मई-पेड़ को लगाते हैं और गाँव को हरा-भरा रखते हैं। लोग इसको अपने घर पेड़ों द्वारा दिया आशीर्वाद पाने के लिये लाते हैं। यूरोप के अलावा भी इस वृक्ष-पूजा के विश्वास प्रचलित हैं, और यह एक परम्परात्मक धार्मिकता ही नहीं है, बल्कि इसका उद्भव पूर्णरूप से अन्धकारपूर्ण है; क्योंकि इसकी प्राचीनता ने हमें मूल तथ्य से दूर कर दिया है। गोल्डकोस्ट के ऊपर नीग्रो

लोग किसी बड़े लम्बे पेड़ की जड़ों में कुछ बलिदान करते हैं। अगर वह वृक्ष गिरता है तो वह बरबादी की ओर ले जाता है, और उसके सभी फल पृथ्वी पर नष्ट कर दिये जाते हैं। सम्पूर्ण उत्तरी भारत में यह वृक्ष-पूजा आज भी मौजूद है। फरबरी के महिने में पवित्र वृक्षों पर जल चढ़ाया जाता है, और स्त्रियों की भलाई के लिये, जानवरों, तथा फसल की रक्षा के लिये, प्रार्थना अर्पण की जाती है। नारियल एक बहुत पवित्र फल माना जाता है। जो औरतें माता होना चाहती हैं उनके लिये पुजारी लोग इस फल को देते हैं। ऐसा उत्तरी भारत में किया जाता है।

प्राचीन समय में औरतों को फल देने वाली (बच्चों को जन्म देने वाली) बनाने के लिये पेड़ों का आरोपण किया जाता था। बाँझ औरतें ऐसे पेड़ों को अपनी भुजाओं से प्यार करती थीं और उससे वे लड़की या लड़का प्राप्त करती थी। ऐसा पूर्व और पश्चिम में प्रायः समान भाव से है।

यूरोप में वृक्ष-पूजा तीन प्रकार से होती है। इंग्लैंड के बहुत से हिस्सों में और ससार के बहुत से देशों में मई-पोल को एक साल व दूसरी साल तक सुरक्षित रखते हैं। ३० वर्ष पहले इनमें से कुछ मौजूद थे। लन्दन में १६६१ में एक पोल को सुरक्षित रखा गया, यह १७१७ तक बचा रहा और इसको सर आइजक न्यूटन ने खरीदा तथा इसको टेलिस्कोप चढ़ाने के लिये काम में लाया गया, जिसे फ्रैन्च ज्योतिषी एम० हगन ने रॉयल सोसायटी को भेंट किया था।

उत्तरी बवेरिया में यह प्रथा थी कि मई-पोल प्रति तीसरे या चौथे वर्ष बदल दिया जाता था और नवीन पोल ले लिया जाता था। लेकिन धार्मिकता इस बात में मानी जाती है कि मई-पोल की लकड़ी सूखी नहीं होनी चाहिये। इंग्लैंड में पुराने पोलों को ही प्रतिवर्ष रगड़ कर चमकाया जाता है। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि अधिकतर देशों में मई-पोल मई के प्रातः को लगाया जाता है, लेकिन स्वीडन और बोहेमिया के कुछ भागों में यह उत्सव २३ जून की शाम को मनाया जाता है।

यूरोप के बहुत से भागों में मई-पोल से सम्बन्धित जादू आज भी देखने को मिलता है। जर्मन देश के बहुत से जिलों में मई के प्रथम दिन किसान लोग अपने दरवाजों पर मई-वृक्ष और मई के पत्ते लगाते हैं, जो कि एक घोड़े और गाय के लिये होते हैं, इससे यह सोचा जाता है कि गायें अधिक दूध देंगी। ऐसी ही एक प्रथा आयरलैंड में भी मनाई जाती है। बवेरिया में नई शादी

करने वाले लोगों के घरों के दरवाजों पर मई-वृक्ष लगाया जाता है। दक्षिणी सालवेनियाँ के निवासियों के बीच भी प्रति एक बाँझ औरत सेंट जार्ज दिवस की साँझ को ऊपर वर्णित रीति का पालन करती है। दूसरे दिन सुबह सूर्य निकलने से पूर्व वह अपनी पोशाक को देखती है, और अगर कोई जीवित जीव अपने ऊपर रेंगता हुआ देखती है, तो वह आशा करती है कि उसकी, बच्चा होने की आशा, वर्ष-भर में पूर्ण हो जायेगी। स्वीडन के किसान अपने खेतों के कोनों पर पत्तियोंदार टहनी लगाते हैं और यह विश्वास करते हैं कि इसमें काफी पैदावार होगी।

इसका दूसरा ढँग यह भी है कि एक वृक्ष की आत्मा बनाई जाती है और उसे मनुष्य रूप में फूलों से तथा मालाओं से सजाते हैं। मई-पोल दिवस को घूमने वाले बालक भी कभी-कभी अपने साथ में एक गुड़िया रखते हैं, जिसे, कि वे लोग मई की लेडी कह कर पुकारते हैं। फ्रान्स के दूसरे हिस्सों में एक लड़के को पत्तियों से ढँक दिया जाता है, जो कि मई का पिता कहलाता है। उत्तरी बवेरिया में एक व्यक्ति को सिर से पैर तक भूसे में रख दिया जाता है, और इसके सिर पर अनाज का मुकुट बना दिया जाता है और लोग मई-पोल के चारों ओर नाचते हैं। कैरेन्थिया में यह उत्सव सेंट जॉर्ज के दिवस पर मनाया जाता है। एक लड़के को पत्तियों से ढक दिया जाता है, और उसे तालाब तक ले जाया जाता है। वहाँ बड़ी चालाकी के साथ उसका पुतला नदी या तालाब में डुबो दिया जाता है तथा यह सोचा जाता है कि गर्मियों में वर्षा होगी और उनके चरागाह तथा खेतों को हराभरा रखेगी। ट्रान्सालवेनियाँ और रोमानियाँ के जिप्सियों में भी यही रिवाज प्रचलित है।

इस प्रथा की तीसरी रीति बहुत ही आनन्ददायक है। इसमें फूल और डालियाँ बिल्कुल छोड़ दी जाती हैं। वृक्ष की आत्मा ही एक जीवित पुरुष द्वारा अपना प्रतिनिधित्व करती है। यह जैक-इन-द-ग्रीन के विकास के फल-स्वरूप है। रूस में मई-उत्सव पर जैक-इन-द-ग्रीन के चित्र काम में लाये जाते हैं। यूरोप के कुछ हिस्सों में इस अन्ध-विश्वास को खत्म कर दिया गया है। इलगोथ में, जो साइलेशिया में है, एक किंग्स रेस कही जाती है, इसमें एक लट्ठा होता है जो कि कपड़े से बँधा हुआ रहता है और इसे चरागाह में गाढ़ दिया जाता है। लोग इसके पीछे घोड़े पर चढ़े हुये होते हैं, और जब ये कपड़े लहराते हैं, तो उसे, हर एक चुनने की कोशिश करता है। और जो एक को भी ले जाने में सफल हो जाता है, वही राजा कहलाता है। फ्रान्स में मई रानी का चुनाव बहुत ही साधारण है, इंग्लैण्ड में भी यह प्रथा जीवित है।

दक्षिणी पूर्वी आयरलैण्ड में सबसे सुन्दर लड़की को रानी होने के लिये चुना जाता है, जो कि बारह महीने तक जिले-भर में रानी बनी रहती है। उसको फूलों से सजाया जाता है, दावतें होती हैं, नाच-गान होते हैं, और खेल होते हैं तथा शाम को बहुत बड़ा जुलूस निकाला जाता है। वह लड़की पूरे साल तक होने वाले नाच-गान आदि की अध्यक्षता का कार्य करती है। अगर वह दूसरे मई के दिवस से पहले शादी कर लेती है तो उसका यह अधिकार छीन लिया जाता है। लेकिन आने वाले मई-दिवस तक उसकी जगह दूसरी रानी नहीं चुनी जाती।

इंग्लैण्ड के कुछ हिस्सों में मई-दिवस पर वनस्पति की आत्मा, राजा और रानी द्वारा जो कि मालाओं से ढकी रहती है, व्यक्त होती है। वह जुलूस के साथ चलती है। हाईलैण्ड और ऑइल ऑफ मैन में ये उत्सव १ फरबरी को मनाये जाते हैं। सुधार होने से पूर्व मई-दिवस एक छुट्टी का दिन माना जाता था। मई का माह ट्री मिल्की के नाम से जाना जाता था। गायें दिन में तीन बार दूध देती थीं।

पुराने लेखन के अनुसार छपाई करने वाले, यात्रा करके वाले तथा नींव लगाने वाले और स्याही बनाने वाले लोग मई-दिवस पर एक साधारण दावत देते हैं। रानी विक्टोरिया के शासन-काल से इसे श्रम-दिवस के नाम से जाना जाता है।

अन्त में यह ध्यान रखना चाहिये कि एक आदत जो कि आज तक प्रचलित है वह यह है कि इस दिन लड़कियाँ अपने मुँह को ओस से धोती हैं। इससे लड़कियाँ यह विश्वास करती हैं कि मई की ओस में मुँह धोने से उनकी सुन्दरता कायम रहेगी। इस प्रकार मई-दिवस पर संसार के विभिन्न देशों तथा अनेकों जातियों में विभिन्न प्रथायें पाई जाती हैं।

सजावट और पवित्रता

प्राचीन पोशाक सजाने के रिवाज, जो कि आज भी डर्वीशायर में गर्मी के मौसम में देखे जा सकते हैं। ये बाहर से आने वाले लोगों की भीड़ को बड़े ही आनन्ददायक और हर्ष प्रदान करने वाले होते हैं। ये रिवाज आज भी जीवित है। यह तथ्य एक विचारक के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसका उद्भव हमको मानव के बचपन की ओर वापिस ले जाता है।

जीवनमात्र के लिये पानी बहुत ही आवश्यक वस्तु है। इसके बिना, न मानव, न जानवर, न पेड़, कोई भी नहीं रह सकता। पानी की आवश्यकता इतनी तीव्र है कि अब्राहम के समय से लेकर आज तक इसके पीछे लड़ाइयाँ होती रही हैं। अरब के रेगिस्तान में कुएँ बहुत ही खतरनाक हैं। यदि अरब के निवासी किसी के अधिकार में हों तो वे आगन्तुक पर अग्नि बरसाते हैं। प्राचीन समय के कुएँ, नाले और तालाब जनसाधारण के लिये पीड़ा देने वाले समझे जाते थे। इसलिए होमर के जमाने में जेनथोज और स्केमेन्डर नदियों पर एक-एक पुजारी होता था, तथा इनकी शक्ति के लिये बलिदान दिये जाते थे। वास्तव में ये नदियाँ इतनी प्रसिद्ध तथा पूजित नहीं थी, जितनी कि आज गंगा नदी है। जो लोग यह विश्वास करते थे, कि इसमें नहाने के बाद आनन्द मिलता था वे लोग इस पर अनेकों ही गुम्बद बनवाते थे। भारत में कुएँ और नाले पूजे जाते हैं।

टिसिंग्टन सजावट का उत्सव एक प्रसिद्ध उत्सवों में से था, जो कि हर गर्मियों के शुरुआत के दिन मनाया जाता था। कुँओं को फूलों से सजाया जाता था और प्रत्येक के लिए धार्मिक सेवा की जाती थी। ये सजावटें बहुत ही

आश्चर्यजनक होती थीं। इन सजावटों का उदाहरण प्राचीनकाल के चतुर कारीगर की चतुराई के लिये काफी है। इनमें रंग करने के लिये फूल-पत्तियाँ तथा चावल और अन्य अन्न जो कि डिजायनों के साथ में लगा दिये जाते थे, काम में लाये जाते थे। इनमें कुछ रंग वास्तव में बहुत ही आश्चर्य-जनक होते हैं।

बक्सटन में प्रत्येक गर्मी की शुरुआत में एस एन्सवैल की जो सजावट होती है, उसे देखने के लिये बड़ी भीड़ एकत्रित हो जाती है। इसकी सजावट भी इसी प्रकार होती है। यह कुआँ रोमन समय से ही इसके लिये प्रसिद्ध है। कभी-कभी लोग कुए की देवी के लिये भेंट भी प्रस्तुत करते हैं। १८७५ में एक रोमन कुआँ खोजा गया था, जो कि ४००० काँसे, ३०० चाँदी और कुछ सोने के सिक्कों से भरा मिला। यह ऑगस्टस के जमाने में बना था। इन सिक्कों की तारीखें यह बताती हैं कि ये बहुत प्राचीन हैं और ये भेंट-स्वरूप चढ़ाये गये हैं। यह रूप्यों का समूह सुरक्षा के कारण यहाँ नहीं रखा गया, बल्कि ये सब सिक्के उसकी पूजा में चढ़ाये गये थे। सन् १८७० में ट्रोक्यूर में एक एस क्येरडन का कुआ साफ़ किया गया था, जिसमें सैकड़ों ही सिक्के प्राप्त हुये थे। सिक्के रानी ऐलिजाबेथ और जार्ज तृतीय के समय के थे। कुओं को भेंट देने की आदत दुनिया में दूर-दूर तक पाई जाती है। अफ्रीका में कुओं के पास की झाड़ियों को चिथड़ों से ढक देते थे।

कुओं की पवित्रता और जादू की बातें संसार-भर में पाई जाती हैं, लेकिन ग्रेट-ब्रिटेन में यह बहुत मात्रा में पाई जाती हैं। कार्नवाल इंग्लैंड का एक धनवान जिला है, यहाँ यह प्रथा अधिक मिलती है। वेल्स, स्कॉटलैंड और आयरलैंड में भी यह अधिक मिलती है। इससे करीब ५ गुने तो इंग्लैंड में है, और इससे भी अधिक शायद स्कॉटलैंड में है। ५० के करीब पवित्र साधुओं के नामों से सम्बन्धित है। ग्लासगो में एक बहुत ही दिलचस्प उदाहरण एस मूंगू के कुए का है। विन्चैस्टर में भी प्राचीन काल के पवित्र कुओं की कथायें कही जाती हैं।

वेल्स में बहुत से पवित्र कुए उल्लेखनीय हैं, लेकिन इनमें दो बहुत ही दिलचस्प हैं। डेनविगशायर में एस ऐलियन का कुआ बहुत प्रसिद्ध है। यह शापों से भरा हुआ कुआ है। इसमें पत्र डालने से स्वयं नाम खुद जाता है। छूटा हुआ शब्द फँक दिया जाता है। इन शब्दों के बारे में शताब्दियों पहले एक उमंगों से भरा हुआ, नाटक जो कि घृणा और प्यार से भरा हुआ है, लिखा

गया था। भई का प्रथम दिन बड़े उत्सव के साथ मनाया जाता है। यह त्यौहार पूरे महाद्वीप का है तथा यह जून और नवम्बर तक जारी रहता है, जबकि एक बहुत बड़ी भीड़, साधु की हड्डियों को देखने जाती है। कुओं के उद्भव के पीछे बहुत ढोंगपूर्ण बातें भरी हुई हैं। एस विनिफ्रेड एक पवित्र आत्मा थी जो कि सत्रहवीं शताब्दी में रहती थी। यह एक मुखिया के द्वारा शादी के लिये चुनी गई थी, लेकिन इसने उससे मना कर दिया क्योंकि वह पवित्रता से भरी हुई थी। सरदार ने उसे दोषी बनाना चाहा तो वह वहाँ से भाग गई और उसने आखिर अपनी तलवार द्वारा अपना सिर काट लिया। कठोर सरदार पहाड़ी से नीचे लुढ़का और उस जगह पर जहाँ कि वह आराम करने के लिये आया एक पवित्र कुआ फूट निकला। इस प्रकार की अनेकों ही धार्मिक कथाएँ पाई जाती हैं। इंग्लैंड में २६ कुओं के बारे में यह कहा जाता है कि ये वहीं प्रगट हुये हैं, जहाँ पर कि साधु-आत्माओं ने आराम किया था।

ग्रीस में भी अनेकों ऐसी कथाएँ मिलती हैं। वहाँ पर कोई बालक यदि कुए से पानी लेने जाता है, तो उसको यह बताया जाता है कि वह तीन बार, अपने बर्तन को भरने से पहले थूक ले। बच्चों के पानी खींचने के साथ आज भी ये कहानियाँ कही जाती हैं। एक शताब्दि पहिले वेल्स में भी ऐसे ही विश्वास मनाये जाते थे। वेल्स में पानी का घोड़ा और पानी का बैल पाया जाता है। ऐसा ही आमूल ऑफ मैन और स्काटलैन्ड में भी पाया जाता है। वेल्स के कुए, नाले और तालाब तो जैसे किसी आदमी की पूजा की जाती है, उसी भाँति पूजे जाते हैं। रेगिस्तान में तो पानी की शक्ति को लोग तभी भलीभाँति जानते हैं जबकि वह जानवर और मनुष्य को प्यास से मरते समय बचाता है। वह रेगिस्तान के मध्य में मरुद्यान पैदा कर देता है। प्राचीन आइरिश में कौनला नामक पवित्र कुआ ९ पेड़ों से ढका हुआ था, उसके ऊपर नारियल के पेड़ थे, तथा इन पेड़ों के नारियल ज्ञान से भरे हुये रहते थे। ऐथेना में ईसा से ४८० साल पहले जब फारस के निवासियों ने एक मन्दिर को नष्ट किया था, तो यह विवरण मिलता है कि उन्होंने एक पवित्र जैतून के पेड़ को नष्ट किया था, (जो कि ऐथेना देवी का माना जाता है)। इसी पवित्रता के सम्बन्ध में कहते हैं कि एक पवित्र कुआ और भी था, जो कि समुद्र देवता ने चट्टान को तोड़ कर बनाया था।

वहाँ पर वह पवित्र जैतून का पेड़ गायब हो गया और वहाँ पवित्र आत्मा आज भी देखी जा सकती है।

संसार के जन्म के साथ यह विचार बड़ा ही साधारण है। जिस पवित्र कविता से बाइबिल आरम्भ होती है, उसमें हम पढ़ते हैं कि पेड़ों की जिन्दगी बागों के बीच में है और पेड़ों के ज्ञान से भलाई-बुराई दोनों हैं। एक नदी पेड़ों में पानी देने के लिये प्रगट हुई है। यहाँ पर हम एक जादू की नदी और दो पेड़ देखते हैं। उनमें से एक, हमको फल खाने से ज्ञान देता है। एस मुलन के पवित्र कुए के बारे में भी हम एक कथा पाते हैं। यह सुन्दर काँटेदार पेड़ से ढका हुआ है, जिसके बारे में कहा जाता है कि यह साधुओं के बीच से निकला है। यह काँटेदार पेड़ नागफनी जैसा होता है। आयरलैंड में इसके बारे में ऐसा कहा जाता है कि साधु सभी साँपों को समुद्र से लाने से पहले इकट्ठे करके ले जाता है। यहाँ पर दो पवित्र कुए हैं, तथा एक स्थान है, जो एसपेट्रिक के बिस्तर के नाम से पुकारा जाता है, इसके साथ-साथ दो पेड़ हैं। ये चिथड़ों, पिनों, मुइयों और बालों की पिनों से ढके हुये हैं।

पानी की पूजा एक पवित्र पूजा मानी जाती है, क्योंकि इसके अन्दर जीवन को पैदा करने की शक्ति होती है। भारत में जलपूजा, कुओं की पूजा बहुत प्रसिद्ध है। बच्चों के जन्म के समय कुओं की पूजा की जाती है। कुआ खोदने से पहिले देवता की पूजा की जाती है। नदी और तालाबों को भी पूजा जाता है। शादी होने के बाद नदी या तालाब को पूजने के लिये जाते हैं। पेड़ लगाने का रिवाज, (कुओं के पास) यहाँ भी प्रचलित है और उन पेड़ों के पास देवताओं की प्रतिमायें स्थापित करदी जाती हैं जो कि कुओं के देवता माने जाते हैं। इस सम्बन्ध के अनेकों अन्ध-विश्वास प्रचलित है। अगर किसी को कोई बीमारी हो जाती है, तो कुए पर भेंट चढ़ाते हैं, और अनेकों ही टोटका, जादू-टोना करते हैं। इस प्रकार हमारे देश में भी ऐसी पूजा की जाती है।

मध्य ग्रीष्म के विश्वास और आचरण

इंग्लैण्ड में वर्ष के सबसे बड़े दिन को, लोगों के समूह तथा दल, पहाड़ियों पर निकलते हुये सूर्य को देखने के लिये एकत्रित होते हैं। यह प्रथा भी भाग्य-प्राप्ति के लिये बहुत अधिक प्रचलित है, विशेषकर अच्छी तन्दुरस्ती के लिये। यह दिन २४ जून के बाद आता है, जबकि सूर्य बिल्कुल सीधा चमकता है। यह दिन काफी प्रसिद्ध हो चुका है जैसे बप्तिस्मा और संत जॉन का जन्म दिन मनाया जाता है। जब दिन बड़े होते हैं तो ईसा का जन्म-दिन मनाया जाता है। इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि—

“ईसा दिन बढ़ाता है और मैं (जॉन) घटाता हूँ।”

कन्जरवेटिव ब्रिटेनी में मध्य ग्रीष्म और संत जॉनईव की प्रथायें आज भी बहुत बड़े रूप में देखी जा सकती हैं। किसान लोग किसी खुले मैदान में चर्च के पास इकट्ठे होते हैं। जब यह कृत्य समाप्त होता है तो, इस उत्सव में हड्डियों की अग्नि किसी पुजारी या बुड़े आदमी द्वारा चमकाई जाती है, और जब लपटें चमकती हैं, तो लोग अपने सिरों से टोपों को उतार लेते हैं तथा सुन्दर गीत के साथ प्रार्थनायें की जाती हैं। पूजा करने वाले दाईं ओर से अग्नि की तीन बार परिक्रमा करते हैं। संगीतज्ञों द्वारा सुन्दर मधुर स्वर में गीत गाये जाते हैं और नाच आरम्भ हो जाता है। लड़के और लड़कियाँ धुएँ में घूमते रहते हैं तथा जो विशेष प्रिय होते हैं, वे लपटों को पार करने की कोशिश करते हैं। अगर इनमें से कोई लपटों में जल जाता है, या गिर जाता है, तो उसके पीछे एक आवाज लगाई जाती है, और उससे अपनी जिन्दगी से च्युत होने के लिये कहा जाता है।

कि अगर कोई बालक २६ दिन के फरबरी वाले साल में जन्म लेता है तो वह बालक शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जायगा तथा इस बालक की माता ऐसे मौके से बची नहीं रहेगी। ऐसा माना जाता है कि इस वर्ष बुरी आत्मायें अपनी विशेष शक्तियाँ प्राप्त कर लेती हैं, खासतौर से २६ फरबरी को उनकी शक्ति बहुत ही अधिक हो जाती है। इस दिन को असाधु और अरक्षित दिन कहा जाता है। बुरी आत्माओं की आँखों से बचाने को विशेष बाधायें खड़ी की जाती हैं। स्कॉटलैंड के हाइलैंड बच्चे को बुरी आत्माओं से बचाने के लिये पानी में डुबकी देते हैं और उस पानी में सोने और चाँदी के सिक्के पटक दिये जाते हैं। बुरी आत्माओं की शक्ति से बचाने के लिये कुछ राख जमीन में गाड़ दी जाती है। गर्भधारण करने वाली स्त्रियों के द्वारा ऐसी बातों में बहुत अधिक विश्वास किया जाता है, यद्यपि वे कारणों से अनभिज्ञ रहती हैं और वे सोचती हैं कि अगर वे ऐसा न करेंगी तो स्वप्न में उनको बच्चे के प्रति बुरी बातें दिखाई देंगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि काउवेड प्रथा के प्राचीन विश्वास आज भी वैसे ही माने जाते हैं जैसे कि प्राचीन युग में माने जाते थे।

दुल्हन-रहित विवाहोत्सव

आजकल आपसी समझौते के द्वारा शादियाँ साधारणतः होती हैं ! कभी स्वाँग द्वारा दुल्हनों की चोरी की प्रथा वर्तमान थी। प्राचीन काल में जबकि स्त्री को तलाश करने के लिये बड़ी मानव शक्ति की आवश्यकता पड़ती थी, तब इस प्रथा का प्रचलन था। आजकल विवाह के अवसर पर भिन्न-भिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न रिवाज और दावतों तथा उत्सवों की भिन्न-भिन्न किस्में देखने में आती हैं; मगर प्राचीन युग में विवाह एक उत्सव-रहित कार्य था। कुछ बाद के समय में उत्सवों का विकास प्राकृतिक और धार्मिक प्रभाव के कारण हुआ। दुल्हन का घूँघट सभ्य लोगों में आज भी पाया जाता है और पूर्वी शादियों में तो यह बहुत ही प्रमुख स्थान रखता है। अन्य स्थानों पर भी इसका बड़ा महत्त्व है। दुल्हन को दूल्हे के सामने न पड़ने देने का रिवाज जैसा पहले था, आज भी वैसा ही है। हिन्दू और मुसलमानों में यह रिवाज पदे के कारण बहुत ही दृढ़ है।

न्यूज़िलैंड में दुल्हन पति से अलग झोंपड़ी में पाँच दिन तक रहती है। दक्षिणी-अफ्रीका की कुछ जातियों में भी शादियों में यह आवश्यक रिवाज है कि दुल्हन को एक अलग झोंपड़ी में बन्द रखा जाये और वहाँ से कुछ दिन बाद दूसरी झोंपड़ी में ले जाया जाये। यह सारी क्रियाएँ उसे पति को सौंपने से पहले कर ली जाती हैं। बेडियन जातियों में शादियों के उत्सव पर दुल्हन को छिपाया और चुराया जाता है। लड़की शादी के दिन की पहली रात को पहाड़ियों पर भाग जाती है और उसका दूल्हा उसकी खोज में निकलता है। जब वह उसे तलाश कर ले तो उसे रात्रि को उसके साथ पहाड़ियों पर रहना

और अधिकार रखने वाला प्राणी था। औरतें आमतौर पर सम्पत्ति मानी जाती थीं या एक प्रकार का बोझा समझी जाती थीं। धीरे-धीरे जब मानव ने एक स्थान पर बस कर रहने का निश्चय कर लिया तो स्त्री की प्रमुखता भी बढ़ गई। पुरुष जो कि एक शिकारी था, अग्नि कुण्ड की ओर आकर्षित हुआ, जहाँ कि खाना आसानी से पकाया जाता था और धार्मिकता के बढ़ने के साथ-साथ स्त्री की स्थिति माता के रूप में जानी गई। स्त्री को चुराना, छल से उसे भोगना, भारत में पैशाच विवाह के अन्तर्गत आता है और उसे छीन ले जाना राक्षस विवाह के अन्तर्गत ! कुछ सम्बन्धों में माता के अधिकार बढ़ते हुए दिखाई दिए और बहुत-सी जातियों में आज भी पिता के अधिकारों को नहीं जाना जाता। उन जातियों में मातृसत्ता आज भी पाई जाती है। इतिहास में स्त्री की उन्नति करने तथा उसे समानता की स्थिति में लाने में यह देखा गया है कि यह भावना शारीरिक और मानसिक सुधार के कारण जारी है। जब लोगों का मानसिक विचार स्त्री की स्थिति को सुधारने की ओर गया तो पुरुष ने उसे समाज में समान अधिकार प्रदान किये।

शादियों में काम आने वाले अनेकों ही रिवाज आज काफी बढ़े हुए दिखाई देते हैं। यह एक बहुत ही प्रसिद्ध और सर्वमान्य रिवाज हो गया है कि शादी का प्रस्ताव और उसका प्रबन्ध, दूल्हा, दुल्हन द्वारा नहीं किये जाते, बल्कि उनके मित्र, रिश्तेदार या माँ-बाप द्वारा किये जाते हैं। मिस्र में शादी दूल्हे और दुल्हन के प्रतिनिधियों द्वारा तय की जाती है। दोनों-अभिभावक मिले हुए हाथ एक कपड़े में ढँके हुए रखते हैं। केरेन्स में एक दूसरे को एक प्याला पीने को देते हैं, दोनों उसमें से पीते हैं और शादी पक्की हो जाती है। फारस में भी शादी प्रतिनिधियों के द्वारा होती है। वहाँ दूल्हा अपनी दुल्हन को तब तक नहीं देखता जब तक कि शादी न हो जाये। लंका में जन्मपत्रियाँ बनती हैं और वह ज्योतिषी के पास दूल्हे के भाई द्वारा ले जायी जाती हैं और दोनों जन्मपत्रियों को मिलाया जाता है। अगर दोनों की जन्मपत्रियाँ मिलती हैं, तो शादी करदी जाती है।

दक्षिणी केलेब्स में दूल्हा और दुल्हन अपना प्रतिनिधि रखते हैं और दुल्हन शादी में प्रगट नहीं होती, उसके प्रतिनिधि द्वारा प्रतिनिधित्व किया जाता है। स्त्री इसके बीच में एक अंधेरे कमरे में छिपा दी जाती है। दूल्हा उत्सव होने के बाद अपनी तलवार को दुल्हन की ओर करके उसे भेंट कर देता है और घर चला जाता है। तीन दिन वह अपनी तलवार का अधिकार

जताने के लिए वापिस आता है। कुमिस लोगों में आम के पेड़ की शादी का रिवाज बड़ा ही अद्भुत है। पहले दूल्हे की शादी की जाती है और बाद में वह पेड़ को चूमता है। दुल्हन भी इसी क्रम से व्याह दी जाती है। इसके बाद वह अपने घर डलिया के अन्दर रखकर लाई जाती है।

मलय देशों में शादी की दो किस्में पाई जाती हैं। लेकिन यह स्मरणीय है कि ये रिवाज और उत्सव इस्लाम के प्रभाव में आ चुके हैं। मुस्लिम धर्म प्रत्येक दावत पर अपना प्रमुख प्रभाव रखता है। दक्षिणी पश्चिमी हिस्सों में तथा समुद्र के किनारे के पश्चिमी भागों में मातृसत्ता ही पाई जाती है। कुटुम्ब में माता और बालकों के अतिरिक्त कोई नहीं होता। सुमात्रा के मिनंगकाबूय के उच्च पर्वतीय स्थानों में मातृसत्ता ही मानी जाती है और वहाँ शादियों के उत्सवों या दोनों दलों के अधिकार मिलते-जुलते पाये जाते हैं। इस बड़े द्वीप के जाने और अनजाने हिस्से में प्राचीन मलाय लोगों में अपने पुरुषों की सत्ता को, जो कि विक्योरियस बफेलो के नाम से जानी जाती है, शुद्ध मातृसत्ता का आधार मानते चले आ रहे हैं। यहाँ राज्य मातृसत्ता के समाज पर ही चलता है। पिता की कमी महसूस की जाती है। पति को केवल अपनी स्त्री से शाम को ही मिलने की आज्ञा है। उसका स्वागत किया जाता है। लेकिन वह अपनी माता के घर ही जीवन-भर रहता है और माता के कुटुम्ब के लिये कार्य करता है, जबकि उसकी औरत अपनी माता के घर रहती है और माता का भाई ही पिता के कर्त्तव्यों का पालन बच्चे की शादी करते समय करता है। पेदंग हाईलैंड में इनका प्राचीन केन्द्र है जहाँ कुटुम्ब के घरों को भैस के सींगों से बनाया जाता है। उनको बनाने में बड़ी चतुराई से काम लिया जाता है तथा उन्हें बड़े सुन्दर ढँग से काढ़ा जाता है और रँग से सजाया जाता है। इन्हीं घरों में माता और दादी के पुरखे रहते हैं और कभी-कभी इन घरों में एक सबसे बूढ़ी औरत जो कि दादी होती है, वही वास्तव में घर की मुखिया मानी जाती है।

यह आसानी से महसूस किया जा सकता है कि परिस्थितियों में कानून और उत्सव अलग-अलग रास्ता बताते हैं। शादी जिसमें एक औरत प्रमुख होती है, बिना उसकी मदद के की जाती है। यहाँ पर दोनों कुटुम्बों के मुखिया या प्रतिनिधि द्वारा कुछ बातें पहले की जाती हैं जो कि प्रस्तावित पति से सम्बन्धित होती हैं। इससे पति को एक परीक्षा पास करनी पड़ती है जिससे कि वह लड़की द्वारा चुने जाने योग्य बन सके। इतना होने के बाद दुल्हन का कुटुम्ब

उनकी संतुष्टि का प्रबन्ध करता है। जब मनुष्य अपनी शादी की इच्छा प्रकट करता है तो वह अपने माँ बाप को सूचित करता है तथा जो लड़की उसने चुनी है उसे बताता है। लड़की उसके अपने गाँव की न होकर किसी दूसरे गाँव की होनी चाहिये। इसके बाद मामा मिलता है और एक भीड़ को आमंत्रित करता है या जाति के मुखिया को बुलाता है जब कि विशेष उत्सव किए जाते हैं तथा अन्य पहले की बातें तय की जाती हैं। पेगुल्स की जगह एक चौड़े घेरे के अन्दर पत्थर के ऊपर बनाई जाती है और उसके चारों ओर खिलाड़ी पहलवान और कहानी कहने वाले छाये रहते हैं। यहाँ सगाई की प्रथा की जाती है, जिसमें दुल्हन नहीं होती, फिर भी उसकी राय पूछी जाती है, लेकिन प्रेमी उसके लिए अनेकों प्रकार की भेंट प्रदान करता है। इस बीच लड़की बड़े कष्ट सहन करती है और इस व्रत को पूरा करने के लिए बड़ी निगरानी के बीच रहती है। पति-पत्नि आपस में पत्र-व्यवहार नहीं कर सकते।

शादी के उत्सव पर दोनों माँ-बापों के घर सजाये जाते हैं और इसी समय दूल्हे के घर पर एक विशेष मञ्च का निर्माण किया जाता है, जिसे दूल्हा अपनी दुल्हन से मिलने से पूर्व बड़ी चतुराई के साथ सजाता है। दावतें होने के चार दिन बाद दुल्हन उसके गहनों और कपड़ों से सजाई जाती है और वह दूल्हे के आने की बाट जोहती है। यह मञ्च लकड़ी के खम्भों पर बनाया जाता है जिनकी संख्या दल की श्रेणी को बताती है। औरत को ले जाते हुए जल्सा शुरू होता है। दूल्हा अपने मित्रों के कंधों पर ले जाया जाता है। दुल्हन के घर पहुँचने पर वहाँ घर में प्रवेश करने से पहिले पुजारी की बाट देखी जाती है। वास्तविक उत्सव में कुरान की आयतों का उच्चारण किया जाता है और यह सब दुल्हन की अनुपस्थिति में पुजारी और दूल्हे के बीच होता है। पति को शीघ्र ही दुल्हन के कमरे में ले जाया जाता है तथा उसे दुल्हन के बायें हाथ की ओर बैठा दिया जाता है। दूल्हा और दुल्हन दोनों ही इस मौके पर बहुत सुन्दर ढंग से सजाये जाते हैं। दोनों तरफ के गहने शुद्ध सोने के होते हैं और पूरे इलाके से इस उत्सव पर प्रयुक्त करने के लिए ये गहने अपने मित्रों से मँगाये जाते हैं। प्रत्येक बात तय होने के बाद पति अपनी माता के पास वापिस जाता है। अगर शादी में बच्चे दिये जाते हैं तो वह अपनी स्त्री के घर में अधिक अधिकार नहीं रखता।

आसाम में खासी लोगों में जहाँ मातृभाषा के कानून माने जाते हैं शादी के रिवाज कुछ भिन्न पाये जाते हैं। सबसे अद्भुत बात यह होती है कि पति

अपनी सास के घर रहने जाता है तथा साथ ही अपनी पत्नि को रखता है। जब तक पत्नि अपनी माँ के पास रहती है तो उसकी सारी कमाई उसके माँ-बाप द्वारा ले ली जाती है। कुछ मामलों में पति अपनी पत्नि के घर अँधेरा होने पर जाता है और अपने पुरुषों की सम्पत्ति को माता के घर खर्च करता है। मातृसत्ता में पिता यहाँ कुछ ही महत्त्व रखता है, यद्यपि कुटुम्ब का स्वामी माता का बड़ा भाई ही माना जाता है। जब कोई लड़का १७ वर्ष से २५ वर्ष का होता है तो वह जिस लड़की से शादी करना चाहता है उस लड़की का नाम उसे अपने माँ बाप से कहना पड़ता है जो लड़की के पिता से आवश्यक बातें निश्चित करते हैं। एक सुन्दर दिवस शादी के लिये चुन लिया जाता है। इस दिवस का निश्चय एक अंडे को फोड़ कर किया जाता है। इस निश्चित दिवस पर दोनों पक्ष स्वयं को सजाते हैं। दूल्हा दुल्हन के घर जाता है और अपने को उस पर आश्रित कर देता है तथा उसके साथ अपना स्थान ग्रहण करता है। बाद में दोनों शादी की शर्तों को उच्चारित करते हैं। दो-तीन दिन बाद दुल्हन दूल्हे की माता के घर जाती है। इसके बाद वे दोनों अपनी इच्छानुकूल अपने घर पर एक दूसरे से मिलते हैं।

काशगर पहाड़ियों की घाटियों में शादी की रस्में कुछ भिन्न ही प्रकार की पाई जाती हैं जो कि मैदानी टर्कों के लोगों के बिल्कुल विपरीत हैं। पहाड़ी किरगीजों में लड़की पारितोषक के सदृश है। वहाँ पति अपनी स्त्री की बड़ी कीमत अदा करता है और वह धन बड़ी सावधानी के साथ ले जाया जाता है। जब सारा धन भेड़ और याक पशु के रूप में दे दिया जाता है तो बेटी वाला अपने पड़ोसियों को दावत के लिये आमंत्रित करता है और शादी की घोषणा करता है। लेकिन दूल्हा और दुल्हन इस उत्सव में शामिल नहीं हो सकते। वे दोनों अपने घरों के तम्बुओं में अकेले ही रहते हैं। यह दावत घोषणा करना ही होता है। इसके अतिरिक्त और कोई उत्सव नहीं मनाया जाता। दूल्हे को अपनी स्त्री सीधी अपने तम्बू में नहीं ले जानी चाहिए। उसे दो महीने से लेकर पाँच महीने तक उस लड़की के माँ-बाप के साथ रखना चाहिये। इस अर्से के बीच वह अपने आदमियों में अपने नये तम्बू के लिए तैयारियाँ करने में लगी रहती है तथा तम्बू भी तैयार करती है। जब नया तम्बू तैयार हो जाता है तो दूल्हा उसे ले जाता है और दुल्हन उसे अपने स्थान पर ले जाती है। स्त्री के माँ-बाप कुछ तम्बू बनाने में सहयोग देते हैं।

समूचे पूर्वी संसार में शादी के रिवाज एकसे मिले जुले पाये जाते हैं।

इन रिवाजों का विकास धार्मिक प्रभावों के कारण भिन्न-भिन्न पाया जाता है । संसार में एक साथ रहने वाले लोगों में सगाई और शादी का रिवाज भिन्न-भिन्न विचारों से भिन्न-भिन्न पाया जाता है । प्रत्येक देश में शादी के रिवाजों में धर्म ने बड़ा प्रभाव डाला है ।

भारत में भी दूल्हे की अनुपस्थिति में शादी होती थी । राजपूत लोग फेंटा, कटार भेज देते थे, जिनके साथ लड़की के फेरे डाल दिये जाते थे ।

विवाह की किस्में

असभ्य तथा जंगली लोगों के लिये शादी हम लोगों की अपेक्षा एक बिल्कुल अलग अर्थ रखती है। दो व्यक्तियों में प्रसन्नता-वश एक आपसी ससन्नता स्थापित होता है। यह समझौता अपने आपसी आराम और दूसरे की मदद के लिये होता है। इससे वह दो सँकसों में टँबू तोड़ने की सोचता है। असभ्य लोगों में विश्वास है कि स्त्री एक जादूपरक प्रभाव से घिरी रहती है। ये प्रभाव उसको दूषित बनाते रहते हैं। इसीलिये पुरुष को उसकी रक्षा करनी चाहिये और इन प्रभावों से उसे बचाना चाहिये। ऐसा विश्वास कर वे शादी करते हैं। मगर उनमें कुछ ऐसे भी हैं जो शादी को पुरुष के लिये एक प्राकृतिक आवश्यकता समझते हैं। उनकी निगाहों में स्त्री विभिन्न नियमों द्वारा घिरी रहती है, जिनको कि पुरुष जानता है और प्रयोग में लाता है। वहाँ पुरुष अपने लिये स्त्री साथी की आवश्यकता अपनी सहायता के लिये महसूस करता है, जैसा कि आज का सभ्य व्यक्ति भी करता है, लेकिन उसका प्रशिक्षण उसको इस विश्वास की ओर ले जाता है कि एक वह ऐसे प्राणी के साथ संगठन कर रहा है, जो उससे बिल्कुल अलग है, जिसको वह बिल्कुल दूसरी ही किस्म का सदस्य समझता है। आज के सभ्य समाज की अपेक्षा असभ्य पुरुष स्त्री की आवश्यकता अधिक महसूस करता है। असभ्य लोगों में शादी सम्बन्धी बिल्कुल अलग विचार पाये जाते हैं और उनका इस सम्बन्ध में केवल अपना ही विचार काम करता है। इस प्रश्न पर वैज्ञानिक लेखकों ने “खरीद कर शादी करना” “गिरफ्तार करके शादी करना” और अन्य प्रकार की शादियों का जिक्र किया है। गिरफ्तारी के द्वारा या पकड़ कर शादी करना काफी समय तक सामाजिक इतिहासज्ञों का प्रिय विवेच्य विषय रहा, लेकिन अब यह विचार एक सँध-भावना

में बदल गया है तथा इसका विकास चुराकर लाने के विचार से कतई भिन्न है। पकड़ कर शादी करना अपने लिये सहायक चुराने के नियम से अलग नियम है। असम्भ्य लोगों में शादी के रिवाजों में उदासीनता नहीं बर्ती जाती। सैक्स टैबू दूर करने के लिये दुल्हन के हिस्से में विशेष स्तर के कार्य किये जाते हैं। न्यूगिनिया, न्यूगिनी के रोरों लोगों में दूल्हे के मित्रों का एक दल दुल्हन के घर जाता है और दुल्हन को एक पालकी में बिठाकर ले आता है।

अगर लड़की की कीमत भी दी जाती है तो भी पूर्वी अफ्रीका के वाकम्बा लोगों में लड़की को ले जाने में बल प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है। उत्तरी एशिया की सेमोयड कालमुख लोगों में भी यही प्रथा पाई जाती है तथा एक शताब्दी पूर्व वेल्स में भी यह प्रथा प्रचलित थी। दूल्हा घोड़े की पीठ पर बैठकर आता है और दुल्हन की माँग करता है। दुल्हन के घर वाले उससे मना कर देते हैं और हाथा-पाई करते हैं तथा लड़की अपने बाप के पीछे घोड़े पर चढ़ा दी जाती है, प्रेमी उसकी ओर बढ़ता है और उसके साथी उसे पकड़ लेते हैं तथा लड़की को उठाकर ले जाते हैं।

ग्रीनलैंड में दो बूढ़ी औरतें लड़की के घर शादी के मामले में जाती हैं तथा प्रस्तावों को सुनती हैं। उस समय नियमानुकूल लड़की अपनी झोंपड़ी की ओर दौड़ती है, बालों को खींचती है और स्वयं को किसी सूखे स्थान पर छिपा लेती है। औरतें उसको तलाश करती हैं। जोर लगाकर खींचते हुए उसे वे उसके प्रेमी की झोंपड़ी की ओर लाती हैं जहाँ वह कुछ दिनों के लिये बड़ी बुरी दशा में रहती है और खाना खाने के लिये तब तक मना करती रहती है जब तक कि उसका पति उससे स्वयं खाने के लिये न कहे। सेनी की बोडियन औरतों में ऐसे मौकों पर ओजस्वी लड़कियाँ काफी झगड़ा करती हैं तथा ऐसी लड़कियों का सदैव सम्मान किया जाता है। मेगियन जाति में लड़की की सगाई होने के बाद पहाड़ियों की ओर उसे भागने के लिये उकसाया जाता है। यहाँ तक कि उसकी ओर से शादी के बाद भी छुपने की कोशिश की जाती है, यह सारे विवाह राक्षस प्रथा के ही अवशेष जैसे लगते हैं।

शायद सबसे प्राचीन रिवाज आस्ट्रेलिया की जातियों में पाया जाता है। जहाँ पर पुरुष विशेष हिंसात्मक प्रवृत्ति के साथ स्त्री को अपनी झोंपड़ी की ओर खींचता है। गिरफ्तारी के ढँग की शादियाँ आस्ट्रेलिया के काले लोगों में पाई जाती हैं और इसे किसी भी तरह से शादी का ढँग नहीं कहा जा सकता, सिर्फ औरत प्राप्त करने का ढँग-मात्र जरूर है या एक रूप से बिना विवाह के

अधिकारों के स्त्री रूपी गुलाम प्राप्त करना है। क्रोले ने बताया है कि यह किसी कबीले से त्यागा नहीं जा सकता, लेकिन जाति की स्त्रियाँ विशेष परिस्थिति में एकत्रित होती हैं और दूल्हे के रास्ते में विघ्न पैदा करती हैं। गिरफ्तार करना या पकड़ कर ले जाना नियम नहीं कहा जा सकता, ऐसा सिर्फ लड़ाई की परिस्थिति में होता है।

पकड़ करके शादी करने के जिस रिवाज को आज हम प्राचीन उदाहरणों में देखते हैं, तर्क के द्वारा ऐसे व्यवहार अब सिर्फ गुप्त रूप से भाग जाने के अन्तर्गत ही सिद्ध होते हैं। चोरी की हुई औरतों के सम्बन्ध में वेस्टर मार्क कहता है कि यह रिवाज हमको एक झगड़े की ओर ले जाता है, इसीलिये जाति आमतौर से इसके विरुद्ध रहती है। कन्यूवियल कैप्चर जैसीरस शादी की किस्म स्याम के केरेन्स लोगों में पाई जाती है। यहाँ पुरुष अपनी दुल्हन को प्राप्त करने के लिये चुने हुये प्रसिद्ध व्यक्ति साथ लेकर लड़ता है और विजयी होने पर स्त्री को अपने माँ-बाप की झोंपड़ी में ले जाता है। इसमें प्रेमी के बल की शर्त लगी रहती है, उसे यह सिद्ध करना पड़ता है कि वह शक्तिशाली है तथा जीवन में विजय प्राप्त कर सकेगा। वैसे गिरफ्तारी एक उत्सव में की जाती है। इसका प्रबन्ध पहले ही कर लिया जाता है। पकड़ कर या गिरफ्तार करके शादी करने का सिद्धान्त जाति की बाहर की लड़की से शादी करने से सम्बन्धित है। यह वह कानून है जो पुरुष को अपनी जाति से बाहर शादी करने के लिये उकसाता है।

कोलम्बिया के मोस्क्यूरो भारतीयों में शादी का प्रबन्ध किया जाता है और बहुत सी भेटें एकत्रित की जाती हैं। रिवाज के मुताबिक पुरुष को लड़की को पकड़ कर अपने साथ ले जाने के लिये बाध्य किया जाता है। उस लड़के के रिस्तेदारों द्वारा उसे बचाने की कोशिश की जाती है और कभी-कभी तो बड़े बुरे ही परिणाम निकलते हैं। ब्राजील में यूप्स नदी के किनारे रहने वाले भारतीयों में एक ऐसी प्रथा पाई जाती है जो कि टैबू से सम्बन्ध रखती है। वे लोग औरत को बल प्रयोग द्वारा ले जाते हैं और वे शादी के सम्बन्ध में और कोई रिवाज नहीं करते। जहाँ शादी के प्रबन्ध पाये जाते हैं वहाँ यह विचार काम करता है कि उनका सैक्स टैबू कमजोर हो गया है। पोलिनेशिया के कुछ भागों में फिजी और समोआ में यही रिवाज पाया जाता है। खोज करने पर यह मिलता है कि यह रिवाज आज भी रूस और फिनलैंड में पाया जाता है। जब दूल्हा दुल्हन की निश्चित कीमत चुकाने में असमर्थ होता है, तो वह दुल्हन को

भगा कर ले जाता है। रूस में पकड़ कर ले जाने वाली शादी के उत्सव आज तक फैले हुये हैं।

आजकल इस प्रकार की शादियों को ठीक नहीं कहा जाता। आजकल यह रिवाज अधिकतर असभ्य लोगों में पाया जाता है। वे लोग अपनी औरत को कुछ न कुछ धन अवश्य चुकाते हैं। यह असुर प्रथा का बिन्ह है। नारी इसमें भी सामग्री होती थी। वार्ड एबर क्रोम्बी ने वर्णन किया है कि पकड़ कर ले जाने की शादियों में दुल्हन को पकड़ा जाता है और उत्सव मनाया जाता है तथा उसको कुछ कार्य अदा करना पड़ता है। ये परिस्थितियाँ हमको यह स्पष्ट बतलाती हैं कि कहीं-कहीं पकड़ना दोनों तरफों के समझौते द्वारा होता है।

खरीद की औरत के सम्बन्ध में एक दूसरे के अदल-बदल की प्रणाली काम करती है तथा एक दूसरा आपस में प्रतिज्ञा करता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मिथुन में सैक्स-टैबू तोड़ा जाता है। असभ्य लोगों में खरीदने और बेचने का जो महत्त्व होता है, वह सभ्य समाज में नहीं होता। दक्षिणी अफ्रीका के काफिरों में यह देखा जाता है कि वे दुल्हन प्राप्त करने के बदले में मवेशी देते हैं और बाकी सब निश्चय स्त्री के घर वालों या पुरुष के रिश्तेदारों द्वारा होते हैं। लेकिन सगाई की भेंट सिर्फ माला होती है। भेंट देने का इस प्रथा का विकास कुछ बाद में हुआ। लड़की भी आदमी को माला पहनाती है और दोनों एक दूसरे को कुछ न कुछ अवश्य प्रदान करते हैं। ऐसा ही रिवाज प्राचीन योरोप में पाया जाता था। वहाँ स्त्री पुरुष अपनी अँगूठी एक दूसरे को प्रदान करते थे। आज के सभ्य पुरुषों में पत्नी के लिये कीमत अदा करना अच्छा नहीं माना जाता। जब हम लोग उन लोगों की आर्थिक हालत से तुलना करते हैं, तो देखते हैं कि वे इसमें काफी धन नष्ट कर देते हैं लेकिन यह सब अपनी जाति के लिये और मन-पसंद दुल्हन पाने ही के लिये किया जाता है। ब्रिटिश कोलम्बिया और बेकोबर द्वीप के निवासियों की कीमत भारतीयों द्वारा तय की जाती है, जो कि २० पौंड से लेकर ४० पौंड तक होती है और केलिफोर्निया के इण्डियनों में १० से १२ पेन्स होती है तथा यह एक आकर्षक सुन्दर स्त्री के लिये अच्छी कीमत समझी जाती है। न्यूमेक्सिको के नवोहा लोगों में कीमत देना अच्छा नहीं समझा जाता, जब तक कि लड़की बहुत ही चतुर, सुन्दर और कलात्मक न हो। वहाँ केवल ऐसी ही लड़की की कीमत दी जाती है। दक्षिणी अफ्रीका के नीग्रो लोगों में मवेशी ही सिक्के का कार्य करते हैं, जैसाकि

असभ्य रोमन लोगों में था, वहाँ मवेशी ही धन माना जाता था और मवेशी शब्द ही सिक्के के रूप में प्रयुक्त किया जाता था। काफिर लोग भी अपनी स्त्री के लिये ५ से लेकर १० तक गायें देते हैं। दामर जैसी गरीब जातियों में एक गाय ही औरत खरीदने के लिये काफी मानी जाती है। यद्यपि युगुंडा में सूइयाँ और कपड़े भी बड़ी स्वतन्त्रता के साथ स्वीकार किये जाते हैं। प्राचीन भारत में भी गाय को धन मानते थे, उसे गोधन कहते थे। गावों में अब भी मवेशी को 'पूँछ-धन' कहते हैं।

उत्तरी एशिया में औरतों के लिये बड़ी कीमत अदा की जाती है। तीन हजार रूबल तक बक्सीर लोगों में दिये जाते हैं। टार्टरी में रहने वाले माँ-बाप दुख के समय पर बहुत कम कीमत में ही अपनी लड़की को बेच देते हैं। ये लोग कुछ पौंड मक्खन में ही अपनी लड़की को बेच देते हैं। भारत की अनेक जातियों में लड़की बेचने की प्रथा है। अब वह छोड़ी जा रही है। कोली, माली इत्यादि राजस्थान में पहले लड़की बेच भी देते थे। एक पति के मरने पर यदि स्त्री दूसरे के यहाँ 'बैठ' जाती है, तो उस 'धरेज' में नये पुरुष को पत्नी की पहली सुसराल वालों को 'झगड़ा चुकाना' पड़ता है, अर्थात् तय की हुई रकम देनी पड़ती है। यह प्रथा मीणा और अन्य जातियों में पाई जाती है।

सेमोयडों और ऑस्टिकों में दुल्हन की कीमत रेण्डियर नामक पशु द्वारा अदा की जानी है। कुछ निम्न जातियाँ अपनी लड़की को एक या दो डलिया चावलों या कुछ रुपयों में ही बेच देते हैं। इस प्रकार दुल्हन के बदले में कुछ लेने का रिवाज बहुत ही विशेष ढंग से पाया जाता है, और औरतों को बेचने में या अदल-बदल करने में व्यापार किया जाता है। शादी की खरीद के सम्बन्ध में एक जैजुइट मिशनरी ने जिक्र किया है कि वह एक इण्डियन हुरोन औरत से अमेरिका में मिला जिसे कि वह स्वयं जानता था। यह एक जाति से दूसरी जाति तक अदल-बदल के रिवाज के द्वारा ही एशिया से अमेरिका जा पहुँची थी।

पौलिनेशिया के केन लोगों में सूहर और बन्दूक ही अदल बदल का मुख्य जरिया है। वे लोग औरत के बदले में सूहर और बन्दूक ही देते हैं। कभी-कभी यह कीमत किस्तों में अदा की जाती है जैसा कि मध्य अफ्रीका के अन्येयों लोगों में पाया जाता है। जापान में भेंट देने का रिवाज शायद कभी रहा जरूर होगा पर निश्चित पता नहीं चलता।

सेवा करके दुल्हन पाने की प्रथा भी जिसमें कीमत देने की जगह पुरुष

दुल्हन के पिता की सेवा करता है, कुछ हिस्सों में प्रचलित है। यह सेमेटिक जाति के लोगों में तथा अमेरिका की असभ्य जातियों में एक आम रिवाज था। ऐसा रिवाज अफ्रीका और एशिया में ही पाया जाता है। यह उन्हीं लोगों द्वारा काम में लाया जाता है जो दुल्हन की कीमत अदा नहीं कर सकते। लेकिन कुछ क्षेत्रों में यह प्रथा माननीय भी है चाहे प्रेमी धनवान हो या गरीब जैसा कि कमचेदल जातियों में पाया जाता है। यह रिवाज टैराडल प्यूगो निवासी बुशमैन और फेगुअनों में पाया जाता है।

बहिन के बदले में बहिन तथा लड़की के बदले में लड़की की प्रथा शायद प्राचीन लोगों में स्त्री खरीदने के रूप में पाई जाती है और यही सुमात्रा और आस्ट्रेलिया के काले लोगों में पाई जाती है। बिना लाभ जाने ही स्त्री खरीदने की प्रथा में औरत पूरी कीमत घरवालों को दिलवाये बिना अपने माँ-बाप की छाया को त्याग नहीं सकती अर्थात् दूल्हे वाले लोग जब तक पूरी कीमत नहीं दे देते तब तक स्त्री अपने माँ-बाप के घर के पास के पेड़ के नीचे निवास करती है। मध्य अफ्रीका की जातियों में गरीब आदमी यदि अपनी सारे मवेशी अपनी पत्नी के बदले में नहीं दे पाता तो किस्तीं द्वारा अदा कर सकता है, लेकिन इस बीच में जो बच्चे पैदा होंगे, वे लड़की के बाप की सम्पत्ति माने जाएँगे, यद्यपि वे पूरी कीमत अदा करने पर मुक्त कर दिये जाते हैं।

शादी के काबिल लड़की की खरीद का रिवाज बहुत प्राचीन समय से चला आ रहा है। असभ्य जातियों में लड़की के बाप के लिये प्रेमी अनेकों भेंट प्रदान करता है ताकि वह उसके पक्ष में हो जाये। यह भेंट दुल्हन की कीमत के रूप में नहीं होती। जापान के आयनू लोगों में औरत को खरीदा नहीं जाता; बल्कि वे लोग तम्बाकू और अन्य तरल पदार्थों की भेंट लड़की के माँ-बाप को प्रदान करते हैं और कोई निश्चित कीमत तय नहीं की जाती। दक्षिणी अमरीका की कुछ जातियों में भी भेंट देने का रिवाज प्रचलित है। ये भेंटें पति द्वारा दी जाती हैं। अलास्का के यूकोनिखोतान लोगों में स्त्री खरीदी नहीं जाती। अण्डमन द्वीप के पहाड़ी निवासी तथा गुफाओं में रहने वाले दुल्हन के लिये किसी भी प्रकार की अदायगी नहीं करते। इसका कारण यह हो सकता है कि उनकी संस्कृति अभी तक शादियों की अदल-बदल की अवस्था तक नहीं पहुँची है।

खरीद कर शादी करने तथा भेंट देकर शादी करने में शायद यह इच्छा काम करती है कि लड़की को माँ-बाप के बोझ से बचाया जाये, इसलिये चिली के आरुकैनियन और न्यूगिनी के लोगों में यह रिवाज पाया जाता है।

एस्कमो लोग अपने यहाँ एक स्त्री एजेन्ट रखते हैं। जापान में शादियों का प्रबन्ध माँ बाप के द्वारा बिचौलिया की सहायता से जो कि सम्बन्ध जोड़ने का ही पेशा करता है, जिसे निकोडी कहते हैं, किया जाता है। रिश्तेदारों के द्वारा प्रबन्ध किये जाने में वे लोग अपनी बेइज्जती समझते हैं तथा ऐसा करना अनुचित माना जाता है। नीचे किस्म की जातियों में बिना किसी की सहायता से होने वाला सम्बन्ध यागो नाम से पुकारा जाता है, जिसका कि अचानक मिलना या निश्चित स्थान पर मिलना आदि अर्थ लगाये जाते हैं। दलाल का पेशा करने वाले व्यक्ति दोनों दलों के गुण व अवगुणों को अच्छी तरह जानते हैं। वे स्त्री और पुरुष दोनों की आदतें, दोनों के गुणों तथा अन्य शारीरिक बातों को सामने लाते हैं जिससे कि अच्छे परिणाम निकलें। वे दंपति में वार्तालाप कराते हैं, और अगर बीच में असंतुष्टि आ जाती है, तो उनका व्यापार आगे नहीं चलता। उत्तर भारत में यह काम पहले नाई करता था। दक्षिण में प्रायः पुरोहित और बिचौलिये करते हैं।

बीच के व्यक्ति के द्वारा शादी करना सभ्य और असभ्य दोनों प्रकार के लोगों में पाया जाता है। यह मुसलमान लोगों में तो एक साधारण बात है। टर्की और फारस में जब कोई लड़की शादी लायक उम्र की होती है तो यहूदन एजेन्टव उसके देखने के लिये उचित पार्टी जाती है और लड़की की सुन्दरता का जिक्र बड़ी चतुराई के साथ करती है ताकि प्रेमी में उसके प्रति दिलचस्पी हो जाये।

इस प्रकार की शादी का रिवाज मानव के निम्न विकास से लेकर आज जब कि वह उच्च श्रेणी पर पहुँच चुका है, पाया जाता है। शिकारी अवस्था में मनुष्य स्त्री की कम आवश्यकता महसूस करता था। वह केवल उसे कुछ श्रम बँटाने के लिये लाता था। अधिक पत्नियों से शादी करना तथा औरतों को अधिक संख्या में रखना उसके बाद के युग में अधिक पाया जाता था। आज भी इसका मुख्य घर अफ्रीका है। यद्यपि यह प्रथा भारत और एशिया के अन्य देशों में भी पाई जाती है, लेकिन मुसलमानों ने स्त्रियों की संख्या सीमित करली है और सभ्य लोगों में यह प्रथा एक बुरी प्रथा मानी जाती है। जहाँ अधिक पत्नियों से शादी करने की प्रथा कानून द्वारा या रिवाज द्वारा पाई जाती है। वहाँ लोग इसे खूब प्रयोग में लाते हैं। केवल आर्थिक स्थिति ही लोगों को ऐसा न करने को बाध्य करती है।

एक से अधिक जीवित पति रखने वाली स्त्री, वह शादी जिसमें एक स्त्री एक से अधिक पति रखती है, यह प्रथा तिब्बत में पाई जाती है।

एलूशियन द्वीप तथा कुछ ओरिनिको जातियाँ और बान्तू की पहाड़ी जातियों में यह रिवाज आमतौर पर पाया जाता है। भारत के नीलगिरि पहाड़ के तोड़ लोग भी बहुपति वाली प्रथा को मानते हैं तथा दक्षिण की कुछ जातियों में भी ऐसा मिलता है। अधिक पति वाली शादी की प्रथा में स्त्री अपने कुटुम्ब के भाइयों के साथ शादी कर लेती है। यह प्रथा वहीं पाई जाती है जहाँ स्त्रियों की कमी होती है, तथा दूसरी जाति की स्त्रियाँ अपने अन्दर नहीं लेते। तिब्बत में यह बात कुछ सन्देहास्पद है। जौनसार बाबर हिमालय प्रदेश में पति के सब भाई स्त्री के पति माने जाते हैं। 'बहुपति प्रथा' का उल्लेख महाभारत में द्रौपदी और कुन्ती के साथ हुआ है। कुन्ती हिमालय में शंतिश्रृंग पर्वत के उत्तर में रही थी। उसी की आज्ञा से द्रौपदी के लिये बहुपति प्रथा लागू हुई थी। ध्यान रहे हिमालय प्रदेश की जातियों में भिन्न रिवाज मिलते हैं। यक्षों में स्त्रियाँ एक व्यक्ति की पत्नी बन कर भी दूसरे पुरुष से यौन-सम्बन्ध रख सकती थीं। हिमालय में आज भी याखा नामक जाति है। राक्षसों में स्त्री पतिव्रत से रहती थी। कुछ राक्षस जातियों में अस्थायी विवाह होते थे। कामरूप की मातृसत्ता में स्त्री स्वतन्त्र थी। बहुपति प्रथा भी वहाँ थी, जो आज भी मौजूद है।

पूर्वी लोगों की शादियाँ

पूर्वी लोगों की शादियाँ पश्चिमी लोगों से कतई भिन्न हैं। बजाय इसके कि दम्पति को प्रेम करने के लिये उत्साहित किया जाये, वहाँ माँ बाप द्वारा शादी का प्रबन्ध किया जाता है। यौन-सम्बन्ध की विशेषता पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। पूर्वी लोगों की शादियों में पुरुष को जितना महत्त्व दिया जाता है उतना स्त्री को नहीं। यहाँ पुरुष स्त्री की बजाय अच्छा होना चाहिये, यहाँ स्त्री एक नीचे काम करने वाले नौकर के समान होती है। वह पति की हर प्रकार से सेवा करती है। कुछ मामलों में कानून तटस्थ भी है, वह जोड़े को विछिन्न भी कर देता है किन्तु तभी यदि कानून पर असर पड़ता है। धर्म द्वारा अलग ही खेल खेला जाता है। पूर्वी शादियों में धार्मिक विशेषता का होना कोई आवश्यक नहीं है। घरेलू धार्मिक बातें अवश्य की जाती हैं जो कि व्यक्तिगत रूप से सम्बन्ध रखती हैं।

दक्षिण भारत में कोई व्यक्ति अविवाहित मर जाता था तो उसे जलाने या गाड़ने के पूर्व शादी की जाती थी ताकि उसके कुआँरेपन का दोष उससे दूर हो जाये। उसकी गर्दन में एक माला डाल दी जाती थी और यह माना जाता था कि उसको एक दुल्हन से सम्बन्धित कर दिया गया है। कोरिया में भी शादी की प्रथा उतना ही महत्त्व रखती है जितना कि दक्षिण भारत में। वहाँ कोई भी व्यक्ति जब तक विवाहित न हो जाये तब तक कोई सामाजिक महत्त्व नहीं रखता। अगर वह अविवाहित रहता है तो हर तरह से अयोग्य है तथा जिसकी शादी हो चुकी है, चाहे वह उम्र में छोटा है, उससे अविवाहित व्यक्ति बड़ा होकर भी निम्न है, तथा वह कोई सामाजिक महत्त्व नहीं रखता। वह

प्रतिबन्ध भी लगाता है। समाज में किसी बात को उचित समझा जाता है, अर्थात् किसी को अनुचित भी समझा जाता है। उचित और अनुचित की भावना में प्रतिबन्ध निहित होता है। अतः प्रतिबन्धात्मक नियमन और साधारण नियमन में जो भेद है वही मोर अर्थात् रूढ़ि और लोकाचार का भेद कहला सकता है। जब लोकाचार में प्रतिबन्धात्मकता आ जाती है, तब वह रूढ़ि बन जाता है। किसी प्रकार के वस्त्र पहनना तो लोकाचार है, परन्तु आवश्यक रूप से कुछ वस्त्र पहनना एक रूढ़ि है। जिसको नितांत आवश्यक कहा जा सकता है, वह रूढ़ि है। समाज में प्रयुक्त वे नियमन जो कि दबाव डालते हैं, उन्हें रूढ़ि कहा जा सकता है। इनका समूह, दल या जाति पर चेतन या अचेतन प्रभाव पड़ता ही रहता है। जिन कार्यों पर प्रतिबंध लगा रहता है वे निषिद्ध अर्थात् टैबू कहलाते हैं। जातीय जीवन जहाँ अपनी सीमा-रेखा बना नेता है, वहाँ रूढ़ि आ जाती है। निंदा और प्रशंसा समाज में इन्हीं के मानदण्ड पर मिलती हैं। रूढ़ि किसी योजना द्वारा वहीं निर्धारित की जाती है। वह तो सामाजिक जीवन में आ जाती है। इसलिये एक से अधिक समाजों का तुलनात्मक अध्ययन करना अधिक लाभदायक होता है। एक समाज में एक ही बात मान्य होती है। दूसरे में अमान्य। माता और पुत्र के यौन-सम्बन्ध को शायद सर्वत्र ही अमान्य माना जाता है।

प्रत्येक मानव-दल अपनी रूढ़ि को उचित मानता है। दल के अतीत का जीवन उसमें निहित रहता है। पुरानी बातें तो भुला दी जाती हैं, परन्तु उनका प्रयोग चालू रहता है।

मैकाइवर ने समाज के इन नियमों का बड़ा अच्छा विवेचन किया है। किन्तु इन नियमों के पीछे वास्तव में किसी युग-विशेष की सामाजिक व्यवस्था होती है। केवल आर्थिक आधार पर जोर देकर मार्क्स ने अपनी व्याख्या को प्रस्तुत किया था।

मनुष्य के विकास में उसका युग-परक चिन्तन बहुत महत्त्व रखता है। वही संस्था के आचार को बार-बार बदलता रहता है।

सामाजिक जीवन में स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध हमें प्रत्येक युग में बदलता हुआ दिखाई देता है।

मैकाइवर के मतानुसार परिवार को समाज में एक मूलभूत समुदाय (primary group) माना जा सकता है। परिवार वास्तव में बालकों को

पाल कर बड़ा करने के लिये है। परिवार में रक्त-सम्बन्ध आवश्यक है। इसमें सैक्स-सम्बन्ध होना अत्यंत आवश्यक है। बच्चों का प्रजनन और पालन इसमें निहित है। इस केन्द्रीय सम्बन्ध के चारों ओर अन्य सम्बन्धी भी रह सकते हैं। परन्तु पाँच बातें आवश्यक हैं—(१) स्त्री, पुरुष में सैक्स सम्बन्ध होना चाहिये। (२) किसी नियमानुसार यह सम्बन्ध व्यवस्थापित होना चाहिये, ताकि अन्य लोगों में सामान्य और स्वीकृत रहे। (३) परिवार नाम होना चाहिये, ताकि बच्चों और वंशजों के साथ वह जोड़ा जा सके और उनका अलगपन बना रह सके। (४) शिशु-प्रजनन और पालन के हेतु कोई आर्थिक आधार उस समुदाय के लिये होना आवश्यक है। (५) एक स्थान ऐसा होना चाहिये, जिसमें समुदाय अपना निवास कर सके, भले ही उक्त समुदाय-मात्र के ही लिये वह न हो। स्त्री, पुरुष का सैक्स-सम्बन्ध कुछ दिन के लिये भी हो सकता है, और अधिक दिन के लिये भी।

यद्यपि मैकाइवर ने अनेक प्रथाओं का सार निकाला है। फिर भी एक प्रथा भारत में ऐसी थी कि पति-पत्नी कुछ दिन के लिये मिलते थे। जब स्त्री गर्भवती हो जाती थी, तब पति से अलग हो जाती थी। उसके बाद स्त्री का पति से सम्बन्ध टूट जाता था। सन्तान को किसी कुल-नाम की विरासत नहीं मिलती थी। बिना कुल-नाम (nomenclature) के भी संतान का नाम रहता था। अधिक से अधिक माता के द्वारा उसे याद करते थे। बच्चे का लालन-पालन या तो स्त्री करती थी, या पुरुष को करना पड़ता था। पति-पत्नी साथ नहीं रहते थे और आर्थिक आधार की इकाई भी नहीं रहती थी। यह अप्सरा अर्थात् गंधर्व-समाज के नियम थे। यह व्यवस्था तब आई थी जब पुरानी मातृसत्ता तो टूट गई थी, किंतु पितृसत्ता पूरी तरह से स्त्री को दबा नहीं पाई थी। इस पद्धति पर मैकाइवर की परिवार की परिभाषा पूर्णतया लागू नहीं होती।

मैकाइवर ने परिवार के प्रारम्भ के बारे में भी बहुत गंभीर विवेचन किया है। कहा है कि आदिम समाजों की जाँच के बाद भी यही दिखता है कि परिवार सदैव रहा, चाहे वह किसी भी ढंग का क्यों न हो। किसी न किसी प्रकार का दाम्पत्य यौन-सम्बन्ध अवश्य रहता है, और उस पर किसी न किसी प्रकार की सामाजिक मर्यादा भी अवश्य ही होती है। पूर्णतया ऐसी व्यवस्था अनुपस्थित हो, ऐसा आदिम समाज नहीं मिलता। यह भी कुछ लोग मानते हैं कि आदिम रूप में मनुष्यों में यौन-सम्बन्ध पूर्णतया स्वतन्त्र थे। किंतु मैकाइवर ने मोरगैन और ब्रिफोल्ड के इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया है। लिन्टन

और मैलिनोवस्की और सिवार्ड ने आदिम जातियों में भी यौन-मर्यादा की उपस्थिति का प्रतिपादन किया है और अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। मनुष्येतर योनियों में भी इन लोगों ने दाम्पत्य-भाव का पता लगाने की चेष्टा की है। परन्तु बन्दरों के समाज को देखने पर पता लगता है कि बानर-बानरी का यौन-सम्बन्ध संतान के जन्म लेने तक होता है तदुपरांत वह नहीं रहता। मानव-जाति में भी संभवतः पहले ऐसा ही हुआ होगा। समुदाय का जीवन एक प्रगति था। उसमें भी दाम्पत्य-भाव प्रारम्भ में पशुओं जैसा ही रहा होगा। महाभारत में भीष्म ने बताया है कि संतानोपादन चार स्टेजों में रहा है। संकल्प, संस्पर्श, मैथुन और द्वन्द्व की अवस्थाओं में से यह सम्बन्ध गुजरा है। संकल्प में इच्छा से ही बच्चे होते थे। स्पष्ट ही इस समाज में मर्यादा और प्रतिबन्ध का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। संस्पर्श को सगोत्र विवाह कह सकते हैं। यह दूसरी अवस्था है जिसमें मातृसत्ता के उदय की झलक मिलती है। मैथुन में जोड़ा बनता था। यहाँ आकर हमें पितृसत्ता का प्रारम्भ मिलता है। द्वन्द्व में स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध सभ्यता के प्रारम्भ युग का मिलता है और आज भी सभ्य समाजों में विवाह संस्था के बीच में यही विद्यमान है। अतः हम कह सकते हैं कि ईसा से भी ५०० वर्ष पूर्व का साक्ष्य हमारे लिये आधुनिक पाश्चात्य विचारकों की खोजों से कहीं अधिक मूल्य रखता है। पूरा यूथ यदि संकल्प-विवाह में रत है तो मैकाइवर की न तो परिवार की परिभाषा लागू होती है, न हमें दाम्पत्य यौन-सम्बन्ध की इकाई किसी संस्था के रूप में ही दृष्टिगोचर होती है। त्रोब्रियाण्ड द्वीपी तथा मध्यम आस्ट्रेलियाई निवासियों के समाज में भी मैकाइवर ने बहिर्नो-भाइयों तथा पति-पत्नियों का भेद निकाला है। परन्तु अभी हाल में ही मध्य आस्ट्रेलिया में कुछ नई खोजें हुई हैं। वहाँ संसार की शायद सबसे पुरानी जाति मिली है। वहाँ कोई नहीं गया था, क्योंकि वह स्थान दुर्गम था। अंत में एडीलेड विश्वविद्यालय के मानवशास्त्री वहाँ गये। उनकी रिपोर्ट बताती है कि उस जाति के लगभग ३०० व्यक्ति बचे हैं। यह बिल्कुल नंगे रहते हैं। जंगली जानवरों को मार कर खाते हैं, तथा पशुओं की खाल ओढ़ना भी नहीं जानते। रेगिस्तान में गर्मी, सर्दी सहने की इन्हें आदत हो गई है। इनका रंग बेहद काला होता है। इनमें आपस में कुछ जादूपरक रस्में तो प्रचलित हैं, परन्तु विवाह या दाम्पत्य का कुछ भी सम्बन्ध अज्ञात है। ये लोग संतानोत्पादन का कारण नहीं जानते। ये समझते हैं कि बच्चे दैवी होते हैं और एक खास तरह के पत्थरों से पैदा होकर स्त्री के पेट में छिप जाते हैं और अंत में पैदा होते हैं। यह जाति अनुमानतः बीस हजार वर्ष पुरानी है। पत्थर के पाँच

हथियारों का ही प्रयोग करना यह जाति जानती है। इनमें पानी बरसाने के लिये जादू होता है और उस जादू में स्त्रियाँ भाग नहीं ले सकतीं। इसका कारण संभवतः यही है कि प्रेतों से लड़ना पुरुषों का काम है, स्त्रियों का नहीं।

इस चित्र से ज्ञात होता है कि यह प्राचीनतम समाज अभी तक बहुत ही आदिम अवस्था में है।

अतः लिन्टन आदि का मत आदिम समाजों की स्थितियाँ नहीं बताता। वह कुछ परवर्ती समाजों को बताता है, जिसमें दाम्पत्य भाव स्पष्ट होने लगता है। निस्सन्देह आदिम रूप में मनुष्य संतानोत्पादन के बारे में कुछ भी नहीं जानता था।

पितृसत्ता के उदय ने भी पुरुषों को यह भ्रम दे दिया था कि असल में पुरुष के 'वीर्य' से ही संतान होती है। इस धारणा का फल यह हुआ कि यह माना जाने लगा कि किसी भी प्रकार स्त्री में यदि वीर्य पहुँच गया तो संतान अवश्य ही होगी। महाभारत में लिखा है कि—अहो कैसा आश्चर्य है कि स्त्री के पेट में जाकर सबकुछ पच जाता है, परन्तु वीर्य नहीं पचता। इसीलिये अपने यहाँ अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं कि कर्ण कान से पैदा हुआ, और दौने का वीर्य अमुक रानी ने खा लिया तो उसके बच्चा हुआ। यह सब कहानियाँ मानव-शरीर के बारे में पूरी बात न जानने का परिणाम है। आज भी हम मानव-शरीर के विषय में जो नहीं जानते, उसके बारे में कल्पनाएँ करने लगते हैं। पहले लोग यही समझते थे कि बच्चा स्त्री के पेट में पड़ा रहता है, वहाँ मल-मूत्र होते हैं। इसीलिये गर्भ में रहता नरक-निवास के समान माना गया। संसार का पहला व्यक्ति जिसने शरीर की चीराफाड़ी करके बताया था कि स्त्री-शरीर में एक झिल्ली में बच्चा अलग से रहता है, वह सुश्रुत वैद्य था। अतः आदिम जातियों के विश्वासों को देखते समय उनका वैज्ञानिक ज्ञान भी देखना आवश्यक है। दाम्पत्य-भावना तो उस समाज में आती है, जहाँ समुदाय में इकाइयाँ पूर्णतया विकसित हो चुकती हैं और घर बनने लगते हैं। घर का निर्माण, पुरानी जातियों का विकास देखने पर लगता है कि वास्तव में स्त्री ने प्रारम्भ किया। वह माता थी, उसी के आधार पर सम्बन्ध बनते थे।

मैकाइवर ने लिखा है कि बहुत सी पितृसत्ताक जातियाँ मातृसत्ताक हो गईं और मातृसत्ताक पितृसत्ताक हो गईं। कुछ जातियों में कुछ दिन मातृसत्ताक व्यवस्था चलती है, कुछ दिन पितृसत्ताक। परन्तु यह तो परवर्ती अवस्थाएँ हैं। माता-पुत्र-सम्बन्ध (ईडीपस कम्प्लेक्स), पिता-पुत्री-सम्बन्ध

(ब्रह्मा सरस्वती), तथा भाई-बहिन सम्बन्ध, (यम-यमी संवाद), आदि बाद में वर्जित हुए हैं। 'संकल्प' की अवस्था में तो किसी प्रकार का ज्ञान ही नहीं था। पितृसत्ता के प्रारम्भ में स्त्री केवल संतानोत्पादन के लिये थी। (मनु इड़ा सम्बन्ध में पिता-पुत्री थे) (ययाति-पुत्री माधवी के चार पुत्र हो चुके थे, तब पिता ने उसका विवाह करने की चेष्टा की थी) महाभारतानुसार कार्तिकेय ने देवसेना से विवाह किया था, जो उसकी मौसी थी। सगोत्र विवाह मिस्र तथा भारतीय शाक्यों में प्रचलित थे। श्वेतकेतु के समय में दाम्पत्य था, परिवार था, परन्तु स्त्री-पुरुष का यौन-सम्बन्ध गायों-साँड़ों जैसा था। अतः हम विकास-क्रम से कह सकते हैं कि—

- (१) आदिम समुदाय में परिवार नहीं था,
- (२) दाम्पत्य नहीं था,
- (३) सम्बन्धों का ज्ञान नहीं था,
- (४) आर्थिक लालन-पालन के लिये इकाइयाँ नहीं थीं,
- (५) और यौन-मर्यादा भी नहीं थी।

क्रमशः ही इनका उदय हुआ और विकास सर्वत्र एक पैटर्न पर नहीं हुआ। जातियों के मिलन से बीच की कई स्टेज कई जातियों में मिलती ही नहीं। विकास की एक विशेष मंजिल के बाद ही मैकाइवर की परिभाषा लागू हो सकती है। भारतीय शास्त्र इतना प्राचीन है कि उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। यूरोपीय तथा पाश्चात्य विद्वानों को आदिम जातियाँ देखकर अपने निष्कर्ष निकालने के समय हमारी परम्पराओं को भी देखना चाहिये। वर्तमान काल में पुरानी से पुरानी जाति भी अपने कितने स्वरूप बदल चुकी होगी, इस बात को याद रखना आवश्यक है। हम स्पष्ट देखते हैं कि अभी भी कुछ समाजों में यह तक अज्ञात है कि स्त्री किस प्रकार बालक को जन्म देती है। कई जातियाँ यह भी नहीं जानती कि पिता अर्थात् पुरुष का भी संतानोत्पादन में स्थान है। ब्रिफ़ोल्ड ने इसके उदाहरण दिये हैं। सतीत्व आदि की भावना नितान्त परवर्ती है।

ब्रिफ़ोल्ड का मत है कि परिवार का उदय स्त्री की आवश्यकता के कारण हुआ, क्योंकि वह नर के यौन-आनन्द की जगह संतानोत्पादन की सुरक्षा चाहती थी। इसीलिये पहले मातृसत्ता का उदय हुआ, किन्तु क्रमशः जब खेती का विकास हुआ और पुरुष का आर्थिक रूप से प्राधान्य बढ़ा, पितृसत्ता का उदय हुआ।

मैकाइवर ने इसे स्वीकार नहीं किया है; क्योंकि ऐसा सर्वत्र नहीं मिलता। मध्य ऑस्ट्रेलिया की कुछ जातियाँ तथा फिलिपाइन नीग्रो जातियाँ अपनी आदिम अवस्था में भी पितृसत्ताक हैं, जबकि अमरीकी इरॉक्वोइस तथा प्यूबलो जातियाँ काफी विकसित और सभ्य होने पर भी मातृसत्ता को ही मानती हैं। रिबर्स और लोवी के मतानुसार मातृसत्ताक व्यवस्था में भी स्त्री का सामाजिक दर्जा ऊँचा ही हो, ऐसा नहीं पाया जाता। (जैसे भारत में यक्षों और गंधर्वों में मातृसत्ता का रूप मिल कर भी पुरुष-प्राधान्य दिखाई देता है)।

मैकाइवर ने वैस्टर मार्क के पितृसत्ताक तथा ब्रिफौल्ट के मातृसत्ताक सिद्धान्तों को अस्वीकार तो नहीं किया है, किन्तु उन्हें अन्तिम निर्णय के रूप में स्वीकार नहीं किया है। लिन्टन के मतानुसार न तो कोई ऐसी स्टेज थी जब परिवार नहीं था, न कोई ऐसी स्टेज मिलती है जब परिवार का उदय हुआ हो। हर जगह परिस्थिति-भेद के अनुसार मानव-जीवन ने किसी न किसी प्रकार के परिवार को स्वीकार किया है। इसलिये मैकाइवर ने इस विकास को कई कारणों का फल बताया है। कुछ लोगों के मतानुसार पुरुष का संतानोत्पादन में भाग न जानने के बाद भी पितृसत्ता मिलती है, और कहीं-कहीं इसे जानने पर भी मातृसत्ता के दर्शन होते हैं।

मैकाइवर के मतानुसार 'काम-भावना' के लिये 'परिवार-भाव' का उदय हुआ और उसने विकास किया। फ्रायड के मतानुसार 'काम-भावना' पर सभ्यता के विकास ने प्रतिबन्ध लगाये हैं, जिससे विकृतियों ने जन्म लिया है। पहले 'काम' के विषय में मनुष्य स्वतन्त्र था।

मानव-सृष्टि के आदिकाल से ही मनुष्य को एक विस्मय ने पकड़ रखा है। हम कह सकते हैं कि इन सारे विद्वानों ने सत्य के अनेक अंशों को देखा है। हम इन्हें क्रम से यों रख सकते हैं, ताकि हमें एक चित्र मिल सके—

(१) भीष्म का मत सबसे पुराना है कि पहले संकल्प से संतान होती थी। इसमें बहिर्नो-पत्नियों, या भाइयों-पतियों, माताओं-पिताओं—किसी भी सम्बन्ध का ज्ञान नहीं था।

(२) सिवार्ड का परीक्षण पशु-समुदायों का अध्ययन प्रगट करता है कि उनमें दाम्पत्य होता है। किन्तु मनुष्य का निकटस्थ बानर इसका अपवाद है।

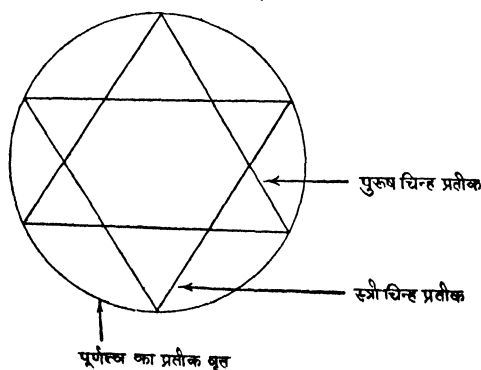
(३) महाभारत का साक्ष्य कहता है कि पहले मातृसत्ता थी। फिर पितृसत्ता में भी वह प्रश्रय पाती रही, कालान्तर में सम्बन्ध अलग-अलग हुए, मर्यादायें बढ़ीं, दाम्पत्य स्थिर हुआ, सतीत्व का उदय हुआ और सभ्यता ने स्त्री-पुरुष को द्वन्द की अवस्था में रखा।

(४) ब्रिफौल्ट के मतानुसार परिवार का उदय स्त्री ने किया और खेती के विकास ने पितृसत्ता को जन्म दिया।

(५) आस्ट्रेलिया में नई खोजों ने यद्यपि मैलिनोवस्की के 'दिव्यात्माओं' द्वारा संतानोत्पादन के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है, क्योंकि वहाँ माता और पिता का संतानोत्पादन-कार्य में भाग अज्ञात है, परन्तु यह भी बताया है कि पहले माता में संतानोत्पादन 'दैवी कार्य' माना जाता था। विकास के पुराने क्रम में पुरुष यहाँ स्त्री को प्रमुखता देता था। इस समाज में 'संकल्प' का आभास मिलता है।

(६) पितृसत्ता में स्त्री का दर्जा घटा। लिंग-पूजा का उदय हुआ।

यद्यपि विकास का एक क्रम नहीं दिखाई देता, परन्तु हमें कुछ आधार दिखाई देते हैं। पितृसत्ता में नारी का दर्जा तुलनात्मक रूप से घटता हुआ दिखता है। मातृसत्ता में स्त्री के अधिकार न होना और पितृसत्ता में होना विकास की परवर्ती अवस्थायें हैं। ब्रिफौल्ट का यह कहना कि खेती से पुरुषों ने अधिकार प्राप्त किया, यह भी आंशिक सत्य है। ऐसे अनेक उदाहरण पाये जाते हैं कि स्त्री ने ही खेती प्रारम्भ की। यह ठीक भी लगता है। जब घुमन्तू जीवन छोड़ा गया तब ही घर बनने प्रारम्भ हुए। उस अवस्था में स्त्री ने ही अपने अधिकारों का प्रयोग किया। संसार की प्राचीनतम जातियों में त्रिकोण के रूप में स्त्री-योनि की ही पूजा की जाती है। यह भारतीय तन्त्रों



में भी विद्यमान है। परवर्ती काल में लिंग-पूजा ने दूसरे प्रकार के त्रिकोण को जन्म दिया जिसका सिर ऊपर होता है। कालान्तर में यह माना गया कि योनि और लिंग के मिलन से संतानोत्पादन होता है। तन्त्र में यह दो त्रिकोणों के मिलन के रूप में दिखाया जाता है—

इसी को शिव-लिंग में देखा जा सकता है, जिसमें जलहरी वास्तव में योनि है। पितृसत्ता के बावजूद शक्ति-पूजा स्त्री-पूजा का ही चिन्ह है और 'अदिति' को आदि माता मानना भी स्त्री के प्रभुत्व का ही परिणाम है।

भारतीय सृष्टि-कथाओं में अण्डे से भी विकास बताया गया है, पुरुष से भी, स्त्री से भी। पौराणिक कथाओं में सबकुछ मिला दिया गया है, जो बाद की जातीय-अन्तर्भुक्ति (racial assimilation) का चिन्ह है। ब्रह्मा से प्रारम्भ करके भी मातृगण उल्लेख पाते हैं और 'मिथुन सृष्टि' के बाद ही हमें पितृगण मिलते हैं।

विकास का क्रम सर्वत्र एक-सा नहीं रहा है। हम बता चुके हैं कि वैविध्य (variations) विभिन्न कारणों से होते हैं और उनकी समरस (harmonious) उन्नति (progress) नहीं हो पाती।

मनुष्य-समाज ने किसी पूर्वनियोजित क्रम (determinism) के अनुसार विकास नहीं किया है, ऐसा प्रतीत होता है। यदि पूर्वनियोजित क्रम है भी तो वह परमात्मा की योजना का होगा, परन्तु हम उसे नहीं जानते। वैज्ञानिक अब दिशा-काल को सदैव वर्तमान मानते हैं। यहाँ यह विषय हमारे वृत्त के बाहर चला जाता है। हमें तो केवल यह कहना है कि मनुष्य के समाजों की उन्नति या विकास, किसी पूर्व निर्धारित विचारधारा के अनुसार नहीं हुआ है। जीवन-संघर्ष के क्रम में उसने अनेक प्रयोग किये हैं। मोटे तौर पर जो बातें दिखाई देती हैं, जिन्हें हम प्रायः पाते हैं, उनके आधार पर ही कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं, किन्तु उनको ही प्रत्येक स्थिति और अवस्था में ज्यों का त्यों लागू नहीं किया जा सकता।

समाजशास्त्र के विद्यार्थी को एक बार एक निष्कर्ष के आधार पर कोई धारणा-विशेष बना लेने पर ही अपने शोध-कार्य को समाप्त नहीं कर देना चाहिये, बल्कि नये-नये तथ्य एकत्र करते रहना चाहिये, हो सकता है कुछ तथ्य उस धारणा के पक्ष में हों, कुछ विपक्ष में। अपना मत बदल डालने के भय से ही तथ्यों को झुंठलाना किसी भी अवस्था में उचित नहीं कहला

सकता । इसीलिये व्याख्या से भी अधिक महत्त्व तथ्यों को संकलित करने में है, जिनके आधार पर नये-नये निष्कर्ष निकाले जा सकें ।

रिवाज, लोकाचार और रूढ़ि का अध्ययन करना केवल कौतूहल और मनोरंजनार्थ नहीं होना चाहिये, बल्कि इसका उद्देश्य है अपने समाज को समझना, अपनी मान्यताओं को जानना, परखना और 'उचित' (right) के लिये अपने मस्तिष्क को अधिक से अधिक व्यापक और सार्वभौम मानवीय भावनाओं का समादर करने के योग्य बनाना । प्रत्येक विज्ञान का अन्ततोगत्वा यही ध्येय है ।

वसन्त ऋतु के रिवाज

आधुनिक युग के मानव ने अपने मौसमों को भी एक सुन्दर ढंग से व्यतीत करने की चेष्टा की है। विलेट ने मौसमों को एक तरीके से विभक्त कर दिया है, जिसके अनुकूल २२ जून के ६ बजे से गर्मी का मौसम प्रारम्भ होता है।

इसी बँटवारे के अनुकूल २१ मार्च के २ बजे से वसन्त ऋतु शुरू होती है। इस मौसम का प्रत्येक दिन खुशियों से भरा हुआ रहता है। वसन्त ऋतु की शुरूआत से ही नवीन वर्ष का प्रारम्भ माना जाता है। वित्तीय वर्ष की समाप्ति भी मार्च के माह के अन्त में होती है न कि ३१ दिसम्बर को। यूरोप की प्राचीन जातियों का नवीन वर्ष आज भी मार्च से प्रारम्भ होता है।

पश्चिमी दुनिया में महायुद्ध ने एक बहुत बड़ा भाग अदा किया है। वहाँ पर प्राचीन रिवाजें इतनी गहराई के साथ जम गयीं हैं जो कि आज तक वहाँ मौजूद हैं। इन सभी रिवाजों का विकास एक साधारण तरीके से हुआ है। असभ्य अवस्था के दिनों में संसार का मनुष्य अपनी आर्थिक परिस्थितियों से काफी प्रभावित रहा है। शिकारी-अवस्था में यदि उसको कोई जानवर नहीं मिलता तो वह मर जाता। कृषि-अवस्था में यदि खेती न हुई तो वह परेशान रहता। वह पूर्णरूपेण प्राकृतिक शक्तियों पर आश्रित था। इन शक्तियों को प्राप्त करने तथा बनाये रखने के लिये उसने जानवरों को अपने साथ रखा, और अनाज का ढेर अपने साथ रखा, दूसरे व्यक्तियों ने भी इसी प्रकार सभी सामान को अपने साथ एक वसन्त ऋतु से दूसरी वसन्त तक रखा।

इस आचार का विकास इतना साधारण था कि यह बहुत शीघ्र फैल गया। वह प्राणी जिसने कुछ पैदा करने में अपने को व्यस्त किया, वह मानव

माना जाने लगा। वह मरेगा तथा क्षीण होगा और उसकी अवतार की धारणा बुरे परिणामों से नष्ट हो जायगी। फ्रेजर के अनुकूल इस प्रकार का एक जिक्र रोम में नेमी झील के उत्तरी किनारे पर मिलता है। प्राचीन रोम में अनेकों ही धार्मिक रिवाज जीवित थे। रोम में नेमी झील के किनारे पर पवित्र स्त्री के पुण्य स्थान बने हुये हैं। इन पवित्र स्थानों के पुजारी को 'जंगल' के राजा' के नाम से जाना जाता था।

ईसाईयत भी इस धार्मिकता को नष्ट नहीं कर सकी। बोहेमियाँ में जंगली लोग अपने को पेड़ों की छाल से सजाते हैं और एक प्रमुख सजे हुये व्यक्ति को बड़ी भीड़ के साथ निकालते हुये सँकरी गली-सी बनाते हुये ले जाते हैं। इसी गली के बीच एक रस्सी खींची जाती है, जिसके ऊपर वह सजा हुआ व्यक्ति निकलता है। जैसे ही वह व्यक्ति गिरता है, भीड़ उस पर आक्रमण कर देती है। वह अपने कपड़ों के नीचे खून के भरे हुए कुंकुमे रखता है, उनको उस समय फोड़ दिया जाता है। खून का जमीन पर फैलना ही उस दिन की धार्मिकता को पूर्ण करता है। इसी दिन एक भूसे का आदमी बनाया जाता है, जो कि भयानक-सा प्रतीत होता है। इसको तालाब तक ले जाया जाता है और उसमें इसे फेंक दिया जाता है। यह रिवाज 'कार्निवल का उत्सर्ग' के नाम से जाना जाता है।

आस्ट्रेलिया में वसन्त के शुरू में एक उत्सव मनाया जाता है, जिसमें मानव वसन्त का स्वागत करता है। वे लोग एक अजीब-सी वेष-भूषा धारण करते हैं। एक व्यक्ति लम्बा-सा चोगा पहिनता है तथा उस चोगे के नीचे लम्बे-लम्बे पत्ते लटके रहते हैं, वह हाथ में एक लम्बा डंडा लिये हुये होता है, सिर पर एक अजीब-सा टोपा पहिन लेता है। यह व्यक्ति सारे गाँव में चक्कर लगाता है। इन्हीं दिनों आस्ट्रेलिया में लोग एक लाइन में खड़े होकर नाचते हैं तथा गलियों में घूमते हैं। एक लड़की बहुत प्रसन्न अवस्था में इन लोगों के समक्ष घूमती जाती है।

इसी तरह का एक रिवाज बोहेमिया के पिल्सन जिले में पाया जाता है। केटोलेनिया में अब तक एक चिता-सी सजाई जाती है और उसके पीछे-पीछे बहुत बड़ा जुलूस चलता है। इस जुलूस की भीड़ में अनेकों ही व्यक्ति अपने को जंगली वेश-भूषा से ढके हुये रहते हैं, जो कि राक्षस जैसे दिखाई देते हैं। बहुत से अपने को अपनी दैवी पोशाक में ढँके रहते हैं। 'भस्म बुधवार' के दिवस एक पुतला बनाया जाता है तथा एक जुलूस उसके साथ चलता है,

उसको मृत्यु की सजा दी जाती है। इस क्रिया को करने के बाद लोग नदी या समुद्र में पत्थर फेंकते हैं। आर्डेन्स के अन्दर भी 'भस्म बुधवार' के दिन इस प्रकार का उत्सव मनाया जाता है और वहाँ पर कभी-कभी पुतले के स्थान पर एक जवान आदमी भाग लेता है। यह आदत एक बार एक व्यक्ति की अचानक मौत हो जाने के कारण रोक दी गयी। पाप-स्वीकृति सुनने के मंगलवार को एक भूसे का आदमी बनाया जाता है, जो कि 'भूसे का भालू' के नाम से पुकारा जाता है। ट्रान्साइवेनिया में भी यह उत्सव मनाया जाता है।

'कार्निवल-उत्सर्ग' का उत्सव अन्य स्थानों पर 'मृत्यु-वहन्' के नाम से जाना जाता है। मौत जाती है और वसन्त आती है। पोलैण्ड में यह पुतला गोइक (goik) के नाम से जाना जाता है। इसे घोड़े की पीठ पर बैठा कर पानी के किनारे पर ले जाया जाता है और उसमें इसको फेंक दिया जाता है। साइलेशिया में यह पुतला 'मार्याना' के नाम से जाना जाता है। यह जहाँ पर अन्तिम मौत हुई होती है उस घर में बनाया जाता है तथा इसे जला कर कीचड़ में डुबो देते हैं।

जर्मनी के मोरेविया के गांवों में भूसे के आदमी को एक लट्टे पर खुले मैदान में ले जाया जाता है, इसके साथ एक जुलूस गाता हुआ चलता है, ये लोग इस प्रकार के गीत गाते हैं कि मानो मौत को भगा रहे हैं और प्रिय गर्मी को अपने घरों में ला रहे हैं। गर्मी के साथ-साथ फूल और मई को बुला रहे हैं। अपने निश्चित स्थान पर पहुँचने के बाद ये लोग पुतले के चारों ओर घेरा बना कर नाच करते हैं और अचानक ही इसकी ओर दौड़ते हैं तथा इसको टुकड़ों-टुकड़ों में अपने हाथों से तोड़ देते हैं। अन्त में ये टुकड़े एक जगह पर फैंक-फैंक कर इकट्ठे किये जाते हैं, वह लट्ठा तोड़ दिया जाता है तथा सब में आग लगा दी जाती है। लूसेटिया के कुछ हिस्सों में 'मृत्यु-वहन्' के जुलूस में सिर्फ औरतें ही भाग लेती हैं, उनके मध्य में कोई पुरुष नहीं जाता ! बाद में पुतले को टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाता है, वे साथ में एक कमीज ले जाती हैं और उसको इकट्ठा करके एक पेड़ से लटका दिया जाता है, जिसको वे काटती हैं।

वसन्त ऋतु के इन उत्सवों में मोरेविया और ट्रान्ससाइवेनिया में मौत वास्तव में जिन्दगी का एक सिद्धान्त है।

वसन्त ऋतु के मौसम सम्बन्धी विश्व के रिवाजों में हम यह पाते हैं कि मौत देने वाली सर्दी को मौत दे रहे हैं और जीवन देने वाली वसन्त ऋतु

को जगा रहे हैं। उत्तरी अमरीका के एस्किमो लोगों में यह रिवाज, जादू के उत्सव के सदृश रखे जाते हैं। भारत के काँगड़ा प्रदेश में जवान लड़कियों में एक रिवाज देखने को मिलता है जो कि यूरोप के रिवाज से बहुत निकट सम्बन्ध रखता है। यह रेली का मेला के नाम से जाना जाता है। रेली का मतलब है, शिव और पार्वती की एक छोटी-सी सजी हुई मूर्ति। यह उत्सव जवान लड़कियों के अन्दर मार्च और अप्रैल के बीच के दिनों तक चलता है। एक निश्चित दिन को सभी लड़कियाँ छोटी-छोटी डालियों में दूब और फूल लाती हैं, और एक स्थान पर उस सब को इकट्ठा कर लेती है। इस दूब और फूल के ढेर के चारों ओर एकत्रित होकर वे गीत गाती हैं। इस प्रकार का उत्सव दस दिन तक, तब तक चलता रहता है जब तक कि घास और फूलों का ढेर एक विशेष ऊँचाई तक न पहुँच जाये। तब वे जंगल से दो डालियाँ काटती हैं और उनको ढेर के चारों ओर लगा देती हैं। यह पिरैमिड के समान लगता है। इन डालियों की ऊपर की शाखाओं पर वे दो मिट्टी की मूर्तियाँ लगा देती हैं जो कि शिव और पार्वती की होती हैं। बाद में लड़कियाँ उनको दो भागों में बाँट देती हैं। ये दो दल शिव और पार्वती के होते हैं। उत्सव की प्रत्येक बात को करती हुई वे काल्पनिक शादी करती हैं और आनन्द मनाती हैं, तथा संक्रान्ति के दिन वे सभी नदी के किनारे पर इकट्ठी होती हैं और उन प्रतिमाओं को एक गहरे पानी में फेंक देती हैं। बाद में वे सब इकट्ठी होकर रोती हैं जैसे मानों वे किसी की दाह-क्रिया कर रही हों। इस उत्सव का प्रमुख उद्देश्य यह होता है कि वे अपने लिये जीवन में एक अच्छा पति प्राप्त करें।

भारतियों का यह रिवाज यूरोप के लोगों से बिल्कुल मिलता-जुलता है। यूरोप में भी लोग पुतले को पानी में फेंकते हैं और शोक मनाते हैं। यूरोप में यह रिवाज औरतों द्वारा किया जाता है तथा भारत में भी यह रिवाज औरतों द्वारा किया जाता है।

वर्षा करने के लिये, (जो कि आस्ट्रेलिया के रेगिस्तान को सुन्दर भूमि बना सकती है) वे लोग एक सुन्दर उत्सव बड़ी इच्छा के साथ मनाते हैं। यह उत्सव 'बाल' के पुजारी के द्वारा मनाया जाता है। प्रथम वे लोग एक विशेष प्रकार की झोंपड़ी बनाते हैं और दो आदमियों की भुजायें बड़ी तेजी के साथ उससे बाँध दी जाती हैं। फिर उनको एक तेज हथियार के द्वारा काटा जाता है और जब तक खून स्वतन्त्र रूप से न बहने लग जाये तब

तक काटते रहते हैं। खून के वेग के बहने का अर्थ यह लगाया जाता है कि बादल उठते चले आ रहे हैं, जो कि वर्षा करेंगे। रूस में ऐसे रिवाज सोवियत सरकार ने रोक दिये हैं।

वसन्त ऋतु के उत्सवों में एक प्रसिद्ध और सुन्दर उत्सव उदयपुर में गुड़ियों का मनाया जाता है। सारी रियासत के अन्दर तथा सारे रुढ़िवादी भारत में यह रिवाज यूरोपियन धार्मिक रिवाजों से मिलता-जुलता है। इस दिन सारी औरतें जो कि साल भर तक घरों में पर्दों में बन्द रहती हैं, वे स्वतंत्र रूप से प्रातः से लेकर रात्रि तक सुन्दर पिछौला (पेशोला) झील के किनारे पर इकट्ठी होती हैं। इस झील का पानी महाराणा के द्वारा बनाये हुये महलों को सुन्दर बना देता है। पानी में उनकी चमक एक अनोखी सुन्दरता उत्पन्न कर देती है। करीब-करीब सभी औरतें एक-एक गुड़िया अपने साथ ले जाती हैं। महाराणा उस झील के किनारे, हाथी पर बैठकर, जहाँ औरतें अपनी गुड़िया इकट्ठी करती हैं, जाते हैं।

न्यूगिनी में दो बैलों का बलिदान फसल अच्छी हो, इसलिए किया जाता है। गाँव की सभी औरतें उन जानवरों के सामने बैठ जाती हैं और कहती हैं कि 'वृषभ रोयेगा, वह रोयेगा।' कभी-कभी एक औरत उन जानवरों का चक्कर लगाती है। उस औरत की आँखों में आँसू आये रहते हैं। और वह उन पर शराब डालती रहती है। जब उन बैलों की आँखों में से आँसू निकलते हैं तो वहाँ पर बैठे हुये पुरुष नाचते हैं और गाते हैं कि 'वृषभ रोता है, वृषभ रोता है।' तब दो आदमी दोनों बैलों की पूँछों को पकड़ते हैं और उन्हें एक-एक चोट में काट देते हैं। इसके बाद वे बैल मर जाते हैं तथा उनका गोشت मुखियाओं द्वारा खाया जाता है।

चीन में भी वसन्त के उत्सवों में यह 'वृषभ-दिवस' मनाया जाता है। ३ या ४ फरवरी के दिन, जिस दिन से चीन में नवीन वर्ष शुरू होता है, उस दिन गवर्नर या शहर का मुखिया शहर के पूर्वी द्वार की ओर जाता है और देवता के प्रति बलिदान करता है। इस बलिदान में मानव-शरीर पर बैल का सिर जैसा फोटो लगा रहता है। इस मौके पर खेती के यन्त्रों द्वारा गायों के और भैसों के अनेकों ही पुतले पूर्वी द्वार पर बना कर लगा दिये जाते हैं। ये तस्वीरें अनेकों ही तरह के कागजों की बनाई जाती हैं। इन कागजों का सुझाव अन्धे व्यक्ति द्वारा दिया जाता है। इन कागजों के रङ्ग ही नवीन वर्ष के आने के द्योतक होते हैं। इन कागजों में अगर लाल कागज काम में

लिया गया है तो इसका अर्थ यह लगाया जाता है कि सालभर तक अग्नि लगने की सम्भावना रहेगी और यदि सफेद हो तो अधिक वर्षा होगी तथा बाढ़ें आयेंगी। ऐसी ही अनेकों धारणायें अलग-अलग रंगों के साथ की जाती हैं। आदेशक तदुपरान्त बेल के चारों ओर धीरे-धीरे घूमता है तथा उसको मजबूत छड़ी से प्रत्येक कदम पर बुरी तरह मारता है। इसको ५ प्रकार के अन्न से भर दिया जाता है। जब यह पुतला डण्डे से तोड़ा जाता है तो यह अन्न निकल पड़ता है। तब यह कागज का पुतला अग्नि में जलाया जाता है और इस जलते हुये कागज को लेने के लिये लोग एक दूसरे पर झपटते हैं; क्योंकि ऐसा विश्वास किया जाता है कि जो कोई भी इसको प्राप्त करेगा वह सालभर तक भाग्यवान बना रहेगा। फिर एक जीवित भैंस मारी जाती है तथा इसका गोشت आदेशकों में बाँट दिया जाता है। एक कारण के अनुसार यह पुतला मिट्टी का बनाया जाता है और बाद में गवर्नर द्वारा पीटा जाता है तथा लोग इसकी ओर पत्थर फैंकते हैं, जब तक कि यह टूट न जाये। इससे वे लोग यह आशा करते हैं कि हमारे यहाँ अधिक अन्न पैदा होगा।

ईसाई लोगों में चर्च के द्वारा प्रत्येक रिवाज अपना बहुत गहरा रूप धारण कर लेता है। इन रिवाजों का रूप ऐसा बन गया है कि जिनको पहिचाना तक नहीं जा सकता। लोगों ने अपनी अज्ञानता के कारण सबको ईश्वरीय माना है। इन रिवाजों में पाप की स्वीकृति के मङ्गलवार के दिन मालपुआ खाने का रिवाज बहुत प्राचीन है; क्योंकि शेक्सपियर ने भी बतलाया है कि 'Fit as a Paucake for shrove Tuesday.' वेस्टमिन्स्टर स्कूल में एक बहुत जन-प्रसिद्ध रिवाज है, जो है मालपुओं का फैंकना। दिन के ग्यारह बजे प्रातः स्कूल के लड़के रसोइये का पीछा करते हुये निकलते हैं, जो कि अपने साथ में एक कढ़ाई, जिसमें एक पुआ रखा रहता है, रखता है। उस पुये को लेने के लिये २० बालक छांट लिये जाते हैं। वे लोग उस पुये को लेने के लिये झपटते हैं और जो लड़का उस पुये का सबसे बड़ा टुकड़ा प्राप्त करता है उसको १ गिनी इनाम दी जाती है।

पाप दूर करने के रिवाजों में इंग्लैंड, नार्थम्बरलैण्ड और स्कॉटलैंड में फुटबाल का खेल आज भी खेला जाता है। फ्रेंकमार्शल ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ रिगवी फुटबॉल' में इस खेल का पूरा वर्णन किया है। इस प्रकार का खेल रोमन-समय में भी ब्रिटेन में खेला जाता था।

ईसामसीह के स्मरणार्थ दिवस के प्रसिद्ध रिवाज

प्रत्येक रिवाज अपनी प्रसिद्धि के लिए अपना महत्त्व रखता है। उत्सवों और दावतों की प्रसिद्धि के अन्दर कोई न कोई घटना अवश्य निहित रहती है। वर्ष में आने वाले त्योहारों में कोई भी त्योहार कल्पना को इतना छूने वाला नहीं होता, जितना कि ईसूमसीह का स्मरण का दिन। इसका मुख्य कारण यही है कि इस दिन अनेकों ही रिवाज और उत्सव शान्ति के साथ चर्च में मनाये जाते हैं।

इन में से बहुत सी बातें जैसा कि एक व्यक्ति उम्मीद कर सकेगा, दान से विकसित हुई हैं। सूली पर चढ़ाये जाने वाले मनुष्यों को धन्यवाद देने के लिये, लोगो ने गरीबों के सम्बन्ध में सोचा। उदाहरणतः सेंट बार्थोलोम्यू स्मिथफील्ड में (जो कि इंग्लैंड का बहुत प्रसिद्ध और बड़ा चर्च है) इच्छा की शर्तों जो कि शताब्दियों पूर्व बनायी गयी थीं, वे आज भी निभाई जाती हैं। ६ पैसे की कीमत की एक गरम टिकिया गुम्बद के ऊपर ले जाई जाती है और वहाँ पर अनेकों ही गरीब स्त्री-पुरुषों को निमन्त्रण दिया जाता है कि वे उसे चुनें। दुर्भाग्य से जब ६ पैसे वाली टिकिया का खरीदा जाना बन्द हो गया तो इसे सम्मिलित भोजन आदि के द्वारा मनाया जाने लगा और आजकल भी इसे इसी रूप में मनाया जाता है।

यहाँ पर एक दूसरा उदाहरण ईसामसीह की उदारता का है जो कि प्राचीन युग से ही सुरक्षित रक्खा गया है। कैंट में आज भी इतवार की शाम को एक छोटी रोटी दो औरतों के चित्रों में, (जो कि पास-पास बैठी होती हैं), बाँटी जाती है। यह जमीन के किराये में से चुकायी जाती है, जो कि जमीन की रोटी के नाम से जानी जाती है। बिना किसी कारण को

तरुणों जैसी पोशाक धारण करता है और अपने लम्बे बालों को बीच में से दो भाग करके अर्थात् बीच में माँग निकाल कर पीछे की ओर ले जाता है। ऐसा वह २० वर्ष की अवस्था तक करता है। अगर वह कभी विवाहित हो जाता है तो वह काला टोप और लम्बा कोट धारण करता है तथा अपने बालों को ऊपर की ओर ले जाते हुये गाँठ-नुमा बाँधता है। इतना होने पर वह अपने नाम के सामने श्रीमान जोड़ता है। कोरियाई लोगों में शादियाँ एक दीक्षा देकर की जाती हैं।

कोरिया में ऊँची जाति के लोगों की लड़कियाँ जब वे सात वर्ष की अवस्था पर पहुँचती हैं, तो घर में बन्द रहती हैं। अगर कोई लड़की २० साल की उम्र तक विवाहित नहीं होती तो वह अपमान कराने वाली समझी जाती है। पति के चुनाव में लड़की की कोई राय नहीं चलती। लड़की अपने लिये अगर वह बहुत कम उम्र की है तो चुनाव कर सकती है। उसका सिर्फ़ यही अधिकार है कि वह १६ वर्ष की अवस्था से पहिले ही विवाह कर सकती है। वहाँ कोई सगाई का उत्सव नहीं मनाया जाता तथा न किसी प्रकार का कोई दहेज दिया जाता है और न किसी प्रकार की कीमत ही अदा की जाती है। दूल्हे के बाप की राय ही अधिक महत्त्व रखती है और वह होने वाली दुल्हन के लिये एक रेशम भेंट में भेजता है। शादी के पहले हिस्से में वह प्राचीन रिवाज जिसमें कि पकड़कर लाकर शादी की जाती थी मनाया जाता है। एक दल जो कि अपने हाथों में लकड़ी तथा लालटेन लिये लड़की के घर के पास होता है, उसके हाथों वह रेशम भेंट में भेजा जाता है। दल के सुसज्जित लोग तथा लड़की वाले एक दूसरे से मिलते हैं और दुल्हन को भेंट करते हैं। शादी होने से पूर्व रात्रि को धार्मिक रिवाज किये जाते हैं और दूल्हा और दुल्हन दोनों के घरों में पुरखों की पूजा की जाती है तथा पुरखों को दम्पति की सूचना दी जाती है। दूसरे दिन सुबह दूल्हा और उसके सहयोगी जिनमें दूल्हे के एक हाथ में एक लाल रँग का कलहँस और दूसरे हाथ में सफेद रँग की छत्री होती है। दुल्हन के बाप के घर की ओर जाते हैं वहाँ वह कलहँस दुल्हन के लिये भेंट किया जाता है। इस यात्रा में ही जवान व्यक्ति अपने भविष्य में होने वाली स्त्री को देखता है और उससे शादी हो जाती है। स्त्री शादी की पालकी में बैठा कर बरामदे में लाई जाती है तथा इस बीच में आवश्यकता होने पर भी कोई बात नहीं की जाती। चुप्पी साधने का टैबू दुल्हन द्वारा

पूर्ण रूप से मनाया जाता है। वह अपने प्रेमी को भी नहीं देख सकती। उसकी आँखें कई चीजें मिलाकर ढक दी जाती हैं और उसकी शक्ल भी ढक दी जाती है।

शादी का उत्सव संक्षिप्त कार्यों के साथ किया जाता है। इसमें दूल्हा चार बार झुकता है और दुल्हन दो बार नीचे को झुकती है, तब दूल्हे के लिये एक शराब का प्याला पेश किया जाता है और उसके होठों से लगा दिया जाता है। इसके बाद दुल्हन भी एक घूँट उसी प्याले में से लेती है। फिर मिठाई की दावत की जाती है। दूल्हा अपनी शादी में आये हुये अतिथियों सहित एक अलग कमरे में बैठ कर भोजन करता है। इसी समय दुल्हन एक जनाने हिस्से में भोजन करती है। दूसरे दिन दुल्हन उसी ढकी हुई हालत में दूल्हे के पिता के घर भेज दी जाती है तथा साथ में वह अपने सास-श्वसुर को भेंट करदी जाती है। इसके बाद वह अपने पिता के घर वापिस आती है। यहाँ उसकी आँखों का ढकना खोल दिया जाता है और उसकी पाउडर व अन्य चीजों से सफाई की जाती है। शाम को उसका पति पहुँचता है और दूसरी प्रातः को अपने पिता के घर वापिस आ जाता है। इस प्रकार का आना जाना तीन दिन तक लगातार चलता रहता है। इसके बाद दुल्हन अपने भविष्य में होने वाले घर लाई जाती है। बहुत समय तक जवान स्त्री अपने श्वसुर से नहीं बोलती और न उसकी उपस्थिति में आँखें ही उठाती है अर्थात् उसकी ओर नहीं देखती। जब तक उसके ये दिन समाप्त नहीं हो जाते, उसके बराबरी के दिन नहीं आते। गरीब लोगों में शादी होने के बाद ही स्त्रियाँ कार्य करना प्रारम्भ कर देती है। यह काम रोटी कमाने के रूप में होता है। भारत की तरह बहू के घर में बने रहने की तरह नहीं होता।

जापान में यूरोपियन रिवाज के मुताबिक मन्दिर में शादियाँ की जाती हैं। दोनों दलों के अतिथि सूर्य के पवित्र मन्दिर में एकत्रित होते हैं। पुजारी अपनी सफेद पोशाक में रहता है। उस मन्दिर के मध्य में एक गुम्बद बना होता है। स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे की उल्टी ओर से घूमते हैं और अपने को स्त्री पुरुष के रूप में स्वीकार करते हैं। मन्दिर में यह उत्सव वास्तव में एक धार्मिक महत्व रखता है।

कोरिया में जो लोग जोड़ा तय कराने वाले होते हैं, दोनों तरफ के माँ-बाप से मिलते हैं। तब एक प्रकार का साक्षात्कार जो कि मी-मी कहलाता है किया जाता है और दम्पति घर के अन्दर परिचित कराया जाता है तथा

यह कार्य किसी थियेटर में या किसी बाग में या पिकनिक में किया जाता है। सिद्धान्तः जवान आदमी अपनी दुल्हन को पसन्द करता है या नामंजूर कर देता है। लेकिन स्त्री अपनी राय नहीं रखती। स्त्री की राय का कोई महत्त्व नहीं होता। माँ-बाप प्रस्तावित मामलों के संगठन को तय करते हैं और तब सगाई की रस्स अदा की जाती है, जो कि वहाँ पर यूँ कहलाती है तथा भेंटें अदल-बदल की जाती हैं। अच्छे भाग्य की घोषणा करने वाले के पास तब गमन किया जाता है और शादी के लिये कोई सुन्दर सा दिन तय कर लिया जाता है।

शादी के तीन दिन पूर्व दुल्हन के घर वाले उसके भविष्य में होने वाले घर के लिये वह सभी सामान जो एक कुटुम्ब के लिये आवश्यक होता है, भेजते हैं। साथ में सिल्क, लिनन, बिस्तर, लिखने के लिये मेज, रसोई में काम आने वाले बर्तन और अन्य सामान भी देते हैं। हृदय विचलित करने वाले.....को उपस्थित करते हुये दुल्हन के माँ-बाप उसे विदा करते हैं। सफेद कपड़ों से उसे सजाया जाता है, उसके बाल अच्छे फैशन के अनुकूल बँधे हुए होते हैं। वह अपने माँ-बाप के सामने झुकती है और बुरी तरह से आँसू बहाती है। जापानी लोगों के लिये सफेद रंग दुःखप्रद होता है। यही लड़की का माँ-बाप के पास से अन्तिम बिछुड़ना होता है। उसका पिता एक छोटी-सी तलवार उसे अपनी रक्षा करने के लिये देता है। जब वह घर छोड़ देती है तो सारा घर भी रोता है। कभी-कभी घर के बाहर अग्नि भी जलाई जाती है। यह पवित्रता का उत्सव है जो कि मृतक को ले जाने के बाद भी किया जाता है।

दुल्हन दूल्हे के माँ-बाप के घर में प्रवेश करती है या आज के फैशन के अनुकूल शिन्टो मन्दिर में उसे ले जाते हैं जहाँ साधारण-सी शादी का उत्सव किया जाता है। पुराने ढंग की शादी के घरों में दुल्हन की सेविका नहीं होती। घर को बड़ी चतुराई के साथ सजाया जाता है। घर में लाल और सफेद फूल लगे रहते हैं। लाल का अर्थ पुरुष से और सफेद का अर्थ स्त्री से माना जाता है। शादी में बैंगनी रंग के फूल नहीं होने चाहियें या झुकने वाले पेड़ों की टहनियाँ भी नहीं होनी चाहियें। अगर दुल्हन दूल्हे के कुटुम्ब में रखी जाती है तो एक सफेद लकीर सुन्दर डिजायन से खींची जाती है और अगर दूल्हा दुल्हन के घर में रखा जाता है तो एक लाल रंग की लकीर खींची जाती है। अच्छे-अच्छे फल उनकी इच्छाओं के चिन्ह माने जाते हैं तथा इनका अच्छा प्रभाव माना जाता है।

घर के अन्दर या मन्दिर के अन्दर वास्तविक शादी का उत्सव चावल की बनी हुई मदिरा पीने से या अन्य प्रकार की मदिरा पीने से होता है। तरह-तरह की किस्मों के तीन प्याले होते हैं। दूल्हे और दुल्हन प्रत्येक तीन-तीन घूँट एक दूसरे को अदलते-बदलते पिलाते हैं और कुल मिलाकर ९ घूँट होनी चाहिए। इस प्रकार के आचमन में दुल्हन का आचमन पहले होता है। इसके बाद वह चली जाती है और अपने को रंगीन पोशाक में सजाती है। दूल्हा भी अपनी पोशाक बदलता है। वह रात्रि को यूरोपियनों में पहिने जाने वाले लोगों सूट जैसा वस्त्र पहिनता है। तब शादी की दावत होती है। इसके बाद शादी कराने वाला तथा उसकी स्त्री उस जवान दंपति से दुल्हन के कमरे में बातें करते हैं, जहाँ दूसरी बार शराब पीने का उत्सव मनाया जाता है। इस मौके पर पुरुष पहले पीता है क्योंकि वह यह प्रदर्शित करता है कि अब वह मालिक हो गया है। दंपति दुल्हन के माँ-बाप के घर की एक यात्रा करता है। या तो यह शादी के बाद के दिन ही या आजकल के फैशन के अनुसार हनीमून अर्थात् मधुयामनि के बाद की जाती है। इसको तो दुल्हन के माँ-बाप कोई विशेषता नहीं देते बल्कि वह व्यक्ति उसके लड़के के समान उनके साथ घर में निवास करता है लड़की की इस प्रकार से होने वाली विदा हमें भारत में भी दिखाई देती है।

चीन में भी शादी के प्रबन्ध माँ-बाप द्वारा किये जाते थे। वहाँ भी सगाई की प्रथा थी। अगर कोई ऐसा मौका पड़ जाता कि सम्बन्ध स्थापित करने वाली पार्टी में से कोई एक निश्चित दिन से पूर्व मर जाता तो एक हँसाने वाला उत्सव, जैसा कि दक्षिण भारत में होता है, किया जाता था।

अगर जवान व्यक्ति मर जाता तो लड़की की शादी उसके भूत के साथ कर दी जाती। इसके बाद वह एक विधवा समझी जाती और वह अपने पति के घर की सदस्य हो जाती। इसका अर्थ यह है कि वह अपनी सास की गुलाम से कुछ ही अधिक होती। ऐसी दुख की दशा में लड़कियों द्वारा आत्महत्या एक साधारण बात थी।

कोरिया और जापान में भी शादी के लिये सगाई की प्रथा मानी जाती है और यह दोनों देशों में करीब-करीब एक-सी है। दुल्हन शादी के मौके पर एक तस्वीर की भाँति सजाई जाती है, जिसमें वह मूंगा-मोती तथा हीरा-जवाहरात धारण किये हुये होती है तथा वह एक लम्बा दुल्हन का घूँघट धारण करती है और अपने साथ में अच्छा भाग्य लाने वाले फूल लाती है। वहाँ पर

कोई भी सेविका नहीं होती, सिर्फ एक, बुढ़ी औरत होती है जोकि उसके लिये पथ-प्रदर्शन का काम करती है। अगर दुल्हन बहुत ऊँचे श्रेणी के लोगों की होती है तो दूल्हे के माता-पिता द्वारा एक कुर्सी सजाई जाती है और उसे घर में ले जाया जाता है। यह कुर्सी जादूपरक प्रभाव से भरी हुई मानी जाती है ताकि दुष्ट आत्मायें दुल्हन पर कोई प्रभाव न डाल सकें। यह कुर्सी दूल्हे के द्वारा अतिथियों सहित जो कि इसे अपने कंधों पर लिये हुये होते हैं, भेजी जाती है और वहाँ पर रिवाज किये जाते हैं।

तब वह घर के अन्दर पहुँचती है जिसमें शादी का उत्सव मनाया जाता है। दूल्हे के माँ-बाप के सामने जोकि पास ही बैठे रहते हैं, उत्सव की भेंटें उसे प्रदान की जाती हैं। अगर दादी और बाबा जीवित हों तो उनका आदर किया जाता है और अगर वे मर जाते हैं तो दुल्हन बाद में रखी हुई वस्तु के सामने झुकती है और प्रणाम प्रदान करती है। जापान और कोरिया में वास्तविक उत्सव एक बर्तन में से शराब पीने का होता है। पहले दुल्हन आचमन करती है तथा बाद में उसे पति के लिये दे देती है। शराब पीने के लिये धार्मिक जोर भी दिया जाता है। शादियों के उत्सव में ताबीज और तरह-तरह के रंग भी महत्व रखते हैं। शादी में आकाश और पृथ्वी को स्त्री-पुरुष के रूप में माना जाता है। वहाँ पर याँग-पुरुष तथा यिन स्त्री मानी जाती है। उपनिषदों में भी छावा पृथ्वी को पुरुष और स्त्री में माना गया है। फिलीपाइन द्वीपों में शादी की तरह की प्रथाएँ पाई जाती हैं। बागोबोस लोगों में शादी के उत्सव पर एक तश्तरी में से चावल खाये जाते हैं और बाद में आत्माओं को भेंट दी जाती है। दूल्हे के माता-पिता शादी का प्रबन्ध करते हैं। वे दुल्हन के लिये भेंट खरीदते हैं और शादी होने के कुछ समय बाद पति अपने श्वसुर की सेवा करता है। फिलीपाइन के अन्य लोग कुछ प्राचीन दिखाई देते हैं लेकिन दुल्हन खरीदने की प्रथा मानते हैं और कुछ खान पान करके शादी के उत्सव को संक्षेप के साथ मनाते हैं। शादी के उत्सव बहुत ही साधारण हैं लेकिन कुछ विशेषताएँ भी हैं। जब दुल्हन हार के रूप में ताबीज और कानों में बाले पहिनती है।

जावा के लोगों में शादी के उत्सवों में मुसलमानी प्रभाव देखा जाता है, जिनका वहाँ की बातों से मेल हो गया है। माता-पिता ही शादी का प्रबन्ध करते हैं और दुल्हन खरीदने का सिद्धान्त जीवित है; क्योंकि वहाँ लड़की के माँ-बाप तथा दुल्हन को भी दी जाती है। शादी होने से पहले दंपति साथ-साथ बैठ जाते हैं और वहाँ धार्मिक बातों को बड़ी सावधानी के साथ बर्ता जाता है।

इसमें धार्मिक महत्त्व बहुत अधिक जुड़ा रहता है। दूसरे दिन दूल्हा उत्सव के रूप में अपनी शक्ल को रंगता है और शादी करने मस्जिद की ओर जाता है, लेकिन दुल्हन उसमें शामिल नहीं होती, उसका पिता ही वहाँ पर प्रतिनिधित्व करता है। इसके बाद दूल्हा दुल्हन के घर जाता है और वहाँ जवान स्त्रियाँ उसके पैरों को धोने की क्रिया करती है। यह रिवाज बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। तब वह दंपति दूल्हे के माँ-बाप के घर भेज दिया जाता है। वहाँ एक दावत होती है। दूसरे दिन वे लोग दुल्हन के माँ-बाप के घर जाते हैं और वहाँ एक दूसरी दावत की जाती है। तीसरे दिन वह नवीन दंपति अपने घर चला जाता है। फारमूसा में शादी का उत्सव मध्यस्थ व्यक्ति द्वारा तय किया जाता है। आपस के खाने-पीने के साथ ही वह पूर्ण हो जाता है। दुल्हन जब तक कि उसके एक बच्चा पैदा नहीं हो जाता, तब तक अपने माँ-बाप के घर पर ही रहती है। इसके बाद वह अपने पति के घर चली जाती है। अगर कोई बच्चा पैदा नहीं होता तो विवाह स्वयं ही टूट जाता है।

स्याम में भी शादियाँ बहुत ही साधारण रूप से होती हैं। शादी के अतिथि दुल्हन के माँ-बाप के घर एकत्रित होते हैं। खाने-पीने के दौरान वह दंपति घर में प्रवेश करते हैं। वे दोनों ही एक बौद्ध भिक्षु के सामने झुकते हैं और वह उन्हें पवित्र मन्त्रों द्वारा लगा देता है। इसके बाद अतिथि उन पर चावल डालते हैं और खोखले छिलकों में से पवित्र जल फैंकते हैं। दुल्हन इसके बाद अपने कमरे में भेज दी जाती है लेकिन उसका पति वही जादूगरों, गायकों और नाचने वालों के बीच रह जाता है। ये लोग उसके सामने अच्छे-अच्छे खेल करते हैं और सुन्दर गीत गाते हैं। दूसरे दिन एक दावत होती है और जब अंधेरा होता है तो दूल्हा दुल्हन दोनों उत्सव मनाने के लिये दुल्हन के कमरे में भेज दिये जाते हैं। वे लोग उसी कमरे में जब तक एक बच्चा पैदा नहीं हो जाता तब तक रहते हैं। इसके बाद वे लोग अपने घर चले जाते हैं।

भारत में शादी में धार्मिक महत्त्व काफी होता है। यहाँ धार्मिक नियमों के अनुसार ही शादी की जाती है। हिन्दुओं में शादी माता-पिता द्वारा की जाती है और उत्सव होने से पहले दोनों तरफ के निकट सम्बन्धी एक दूसरे के घर जाते हैं और धार्मिक क्रियाएँ करते हैं। शादी के दिन की सुबह को दूल्हा स्नान द्वारा स्वच्छ किया जाता है। अगर वह उच्च श्रेणी से सम्बन्ध रखता है तो उसे पालकी में बिठाकर चारों तरफ के पर्दे बन्द करके जिससे कि बुरी आत्माएँ निगाह न डालें दुल्हन के घर भेज दिया जाता है। इस समय

वह विवाह का मुकुट (मौर) तथा अपनी शानदार पोशाक पहने हुये होता है। इसमें जुलूस चलता है जिसमें हाथी और घोड़े सजे हुये होते हैं तथा कुछ अपनी वर्दी पहने हुये तथा हथियारों से सजे हुये लोग भी होते हैं। छोटे आदमियों का जुलूस भी कम नहीं होता। उसमें अनेकों वाद्य-यन्त्र और ढोल तथा अन्य यन्त्र रहते हैं। जब दूल्हा दुल्हन के घर पहुँचता है तो उस पर चावल छिड़के जाते हैं। आम की पत्तियों के ताबीज से अक्षत रखे जाते हैं। दूल्हे के दाँई कलाई और दुल्हन की बाँई कलाई पर कंगन बाँधे जाते हैं। जब दुल्हन दूल्हे के पास पहुँचती है तो वह अपनी माँ के पास घुटनों के बीच में बैठती है, जोकि उसके सामने झुकती है। तब नाखूनों के रंगने की क्रिया दंपति द्वारा पूर्ण की जाती है। शादी छप्पड़ (मढ्या) के नीचे की जाती है तथा एक पंडित धार्मिक मन्त्र उच्चारित करता रहता है और अनेकों ही धार्मिक क्रियाएँ करता रहता है। दुल्हन कुछ समय के लिये अपने पिता के घुटनो पर बैठती है। जब ब्राह्मण दोनों के कपड़ों को कसकर बांधता है तो वे दोनों जुड़ जाते हैं। तब वे अग्नि देवता के सामने दाँई ओर से चलते हैं। यह अग्नि पवित्र होती है। साथ में चावल छिड़के जाते हैं। एक महत्त्वपूर्ण चीज यह होती है कि दूल्हा दुल्हन के माथे पर लाल तिलक करता है। पूजा के अन्य कार्य भी किये जाते हैं। इनको करने के बाद दूल्हा वापिस अपने घर को चला जाता है। यहाँ यह जोड़ा कुछ दिन तक अलग रहता है, तथा इसके बाद वहाँ दोनों को उत्सव के साथ स्नान कराया जाता है और शादी के ताबीज खोल कर अगर दुल्हन अपनी उम्र पर होती है तो उसे पालकी के अन्दर वर के घर भेज दिया जाता है, जहाँ वह बड़े स्वागत के साथ स्वीकार की जाती है। मुसलमानों की शादियों के सम्बन्ध में एक उपवास या रात्रि जागरण किया जाता है, जैसा कि जावा में भी होता है और वहाँ मस्जिद में उत्सव होता है। जहाँ पर ये रिवाजें मिल-मिला गई हैं, वहाँ ये बड़े ही दिलचस्प रूप से पाई जाती है, जैसा कि कोरिया में देखा जाता है। एक दूसरे को न देखने का टैबू वहाँ पाया जाता है। जब बधू अपने वर को देखती है तो वह स्वयं अपनी आँखें ढक लेती है या उसकी आँखें ढक दी जाती हैं और यह भी एक टैबू है कि उसके पैर जमीन पर घिसटते हुए रहें। वह अपने पिता या रिस्तेदारों द्वारा कन्धे पर ले जाई जाती है। कुछ दिन तक तो वह अपने पति के घर रहती है। कुछ दिन बाद वह अपने पति के साथ अपने माँ बाप के यहाँ लौटती है जहाँ यह जोड़ा कुछ समय के लिये रहता है और शादी के उत्सव को पूर्ण करता है।

लंका के सिनहेल्स लोगों में शादी का उत्सव साधारण ढंग से मनाया जाता है, जिसमें स्त्री पुरुष दोनों एक दूसरे के साथ चावल खाते हैं और फिर उनकी छोटी उँगलियाँ मन्त्र कहते समय बाँध दी जाती हैं। ये मन्त्र वधू के घर के सदस्यों द्वारा कहे जाते हैं। बर्मा में शादी के अवसर पर एक ज्योतिषी द्वारा दंपति का पथ प्रदर्शित किया जाता है। पहले वे दोनों अपने हाथ से तालियाँ बजाते हैं, तब वे एक ही साथ बैठकर चावल खाते हैं, इसके बाद उनके हाथ सूत के डोरों द्वारा बाँध दिये जाते हैं और वे झुकते हैं तथा पवित्र जल छिड़का जाता है। बौद्ध मन्त्रों का पहले और बाद में उच्चारण किया जाता है और इसे धार्मिक मान्यता दी जाती है; लेकिन ये सारे कार्य गवाहों के समक्ष ही किये जाते हैं जोकि इनके सम्बन्ध को मजबूती के साथ जोड़ देते हैं।

यूरोप के राष्ट्रीय नृत्य

नृत्य मानव-प्रकृति की एक आवश्यकता कही जाती है। रस्किन ने बच्चे के नाच की तुलना एक लंगड़े के उछलने या हरिनी के बच्चे के खेल से की है। मैक्सवीयर बोम ने सबसे पहले नाचने वाले की कल्पना ग्रीक अंगूरी चादरा बेचने वालों से की है क्योंकि वे इसलिये उछलते थे कि पृथ्वी बहुत उदार थी और इसलिये भी कि वे इसकी उदारता का स्वतन्त्रता के साथ उपयोग करते थे। बालक स्वभावतः ही नाचते हैं। नृत्य असंभव जातियों में बहुत होता है। वे नृत्य में कठोर नियमों का पालन करते हैं। नाच प्राचीन गीतों के साथ किये जाते हैं। आज भी लड़ाई के नृत्य, प्रेम के नृत्य, शादी के नृत्य तथा दावतों के नृत्य जीवित हैं। खुशी के लिये नाचना मानव की प्रकृति है। प्लेटो ने कहा है कि नाचना मानव के लिये निष्कृष्ट कार्य है। इसीलिये उसने अपने आदर्श जन-राज्य में से नाच को कतई समाप्त कर दिया था। प्यूरिटन लोग इसको अच्छा नहीं मानते। नाच-घर वहाँ इतना ही महत्त्व रखते हैं जितना कि जुआ और नरक। सभी देशों के नाच बिल्कुल भिन्न-भिन्न होते हैं। नृत्य मानो जीवन है। यह उतना ही स्वास्थ्य-प्रद है जितना कि फूल और पेड़। सिसरो ने नाराज होकर कहा है कि रोम में कोई भी समझदार व्यक्ति तब तक नहीं नाचता जब तक कि वह अस्थायी रूप से पागल न हो गया हो। किसानों में नृत्य बड़े ही आनन्ददायक और सुन्दर होते हैं। इनमें से बहुत से प्राचीन समय से ही विकसित हुये हैं।

यह बहुत ही साधारण है कि नाचने वाले हाथों को मिला लेते हैं और एक घेरा बना लेते हैं, कुछ उछाल लेते हुये वे लोग घूमते हैं और अपने कदमों को मिलाते रहते हैं। यहाँ पर हम बहुत से यूरोपियन नृत्यों का वर्णन करेंगे

जोकि राष्ट्रीय महत्त्व रखते हैं। रोमानियन और बलगेरियन नृत्य होते हैं। वहाँ नाच के लिये एक पाइपर संगीत छोड़ता जाता है। जवान व्यक्ति परस्पर हाथ मिलाकर एक घेरा बना लेते हैं, वे एक खास तरीके से कुछ कदम उठाते हैं और अपने पैर का चिन्ह बनाते हैं। तब वे पंजे के ऊपर ही झूमना शुरू कर देते हैं।

सारंगी बजाने वाला अपनी सारंगी बजाता है। सारंगी के तार शक्ति के साथ तीन बार टकराते हैं, इसी समय जवान व्यक्ति उछलता है तथा उस लड़की की ओर देखता रहता है जोकि नर्तकों के बीच शामिल होने के लिये आती है, लड़कियाँ हिचकिचाती हैं और वे आगे को दौड़ जाती हैं तथा पुरुषों के चारों ओर घेरा बना लेती हैं। तब तारों द्वारा श्रम-श्रम की ध्वनि की जाती है और दोनों घेरे तोड़ दिये जाते हैं। साथी चुन लिये जाते हैं तथा नाच ठीक ढंग से शुरू हो जाता है। हर एक जोड़े की शक्ल आमने सामने होती है और दोनों एक दूसरे की आँखों की ओर देखते रहते हैं।

साइबेरिया में कोलो (घेरा) अधिक महत्त्व रखता है। इसमें स्त्री और पुरुष साधारण ढंग पर अपने हाथों को पकड़े रहते हैं। कभी-कभी पुरुष अपनी साथिन को उसकी कमर के निचले भाग से पकड़ता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पुरुष अपने हाथों को अपनी साथिन के हाथों के बीच में होकर पीछे की ओर ले जाता है और ताली बजाता है। नाचने वाली स्त्रियाँ कि विशेष मौकों पर बहुत सुन्दर चोली तथा नकली हीरे मोती और कागज फूल पहिनती हैं। इस नाच के बारे में वे लोग निम्नलिखित कहानी कहते हैं—

सविया के एक मुखिया ने टर्की के विरुद्ध एक बार विद्रोह कर दिया। तब देश का शासक गिरफ्तार कर लिया गया और उसको मार दिया गया। टर्की के गवर्नर ने उसको गाड़ने की आज्ञा दी, लेकिन गवर्नर की स्त्री को यह अच्छा न लगा और उसने सोचा कि यह शमिन्दगी की बात होगी और उसने गवर्नर की बहुत ही अनुनय-विनय की। पहले उसकी छाती पर आग जलाई गई, वह इस बीच में बिल्कुल शान्त रही, तब उसके ऊपर एक शॉप रखा गया, उसकी अँगलियों के नीचे और अँगूठे के नाखून के नीचे पिन लगा दिये गये। वह बिल्कुल नहीं टमकी। तब एक बुड्डी औरत ने कहा कि सबसे सुन्दर लड़की को कोलो में साथियों सहित नाचने दो। अगर वह नहीं मरा है तो यह लड़की उसको अपनी शक्ति द्वारा हँसायेगी। नाच प्रारम्भ

हो गया। वह हँसा और लड़की ने उसे देखा। वह उस पर द्रवित हो गई। और अपनी शक्ल से रुमाल उसने हटा दिया, इसलिये उसने शान्ति के साथ अपनी आत्मा को त्यागा और उसे समुद्र में फेंक दिया गया। वह तैरता हुआ किनारे पर आया और उसने गवर्नर के घर को तोड़ दिया तथा गवर्नर को मार दिया और टर्फी के झगड़ालुओं को भी मार दिया तथा उस सुन्दर लड़की को अपने साथ ले गया। उसने उसे अपनी स्त्री बना लिया।

फ्रान्स के दक्षिणी पश्चिमी किनारे पर दूसरी किस्म का घेरा प्रसिद्ध है। इसमें एक मुखिया होता है। वही नाचने वालों को एक ढंग से खड़ा करता है तथा अन्य नाचने वालों को भी आगे बढ़ाता है। नाचने वाले दौड़ते हैं, कूदते हैं, विपत्तियों को पार करते हैं और मुड़ते हैं। उन्हें अपने हाथ की तालियाँ नहीं बजानी चाहिएँ या जो उनका मुखिया करता है उसकी नकल में असफल नहीं होना चाहिये। यह बात बालकनों में भी देखी जाती है। इटली के सोरडिनो किसान रोन्डो नृत्य करते हैं। जवान लोग और लड़कियाँ दो लाइन लगाते हैं तथा हाथों को पकड़ते हैं। तब लाइनें प्रत्येक के आखीर में जाकर मिल जाती हैं और एक घेरा बन जाता है।

नाचने वाले एक दूसरे की तरफ बढ़ते हैं और अलग हो जाते हैं। गाने वालों का समूह कुछ गाता रहता है। इसी विषय पर एम० गेस्टन विलर ने लिखा है कि यह नृत्य एक आश्चर्यजनक कल्पना जैसा प्रतीत होता है।

फ्रान्स में गाँवों में शादी होने के बाद एक नाच होता है। कभी-कभी पुरानी शादियाँ घेरे के अन्दर देखी जा सकती हैं। वर और वधू को संकेत करते हुये पुराने गीत भी गाये जाते हैं। इसे एक बच्चे के खेल के समान भी खेलते हैं। मध्य भाग में बोरी और दक्षिण में फ्रन्डोल नृत्य अधिक प्रसिद्ध हैं। अन्य जिलों में किसानी नृत्य भी पाये जाते हैं। फ्रन्डोल में नाचने वाले एक रुमाल द्वारा जुड़े हुये होते हैं। वे एक बड़ी कड़ी-सी बनाते हैं। वे एक दूसरे की भुजाओं के नीचे घूमते हैं और तब 'मेरे मुखिया का पीछा करो' कहते हैं, जैसा कि गैस कबरेन्डो में होता है। अचानक ही एक जोड़ा रुक जाता है और अपनी भुजाओं को उठाता है, हाथों को उठाता है और एक मेहराब बनाता है। सभी लोग इसके नीचे होकर गुजरते हैं। अन्त में अन्तिम जोड़ा रुक जाता है और शेष सभी उसके चारों ओर घिर जाते हैं। तब वे अपनी लाइन तोड़ देते हैं और यह सबसे अच्छा मजाक माना जाता है। बोरी एक बेढंगेपन का कार्य है। अगर यह घर के भीतर नाचा जाता है तो नाचने

वाला भारी लकड़ी के जूते पहिन्ता है, जिसकी आवाज बड़ी भद्दी ही होती है। लेकिन किसान लोग इसको काफी सुन्दर बना देते हैं, क्योंकि वे लोग घास के ऊपर नाचते हैं। एम० वुलियर ने इस प्रकार के नाच को गड़रियों द्वारा नाचे जाते शाम को देखा, जब वे संगीत में तन्मय थे। इसका प्रभाव बड़ा आनन्ददायक था।

गाबोट और मिन्यूच नाच फ्रान्स में राष्ट्रीय नहीं हैं, बल्कि कोर्ट डान्स है, जोकि आजकल नाचे जाते हैं। ये नाच कभी भी नहीं नाचे जाते थे। कमरे के अन्दर ऐसा नाच होता है।

फ्रान्स के ग्रामीण नाच ब्रेन्डल में देखे जा सकते हैं (ब्रेन्डल शब्द इंग्लैंड में ब्राउल के नाम से जाना जाता था, लेकिन फ्रान्स में इसको ब्रेन्डल उच्चारण करते हैं।) देश के प्रत्येक भाग में अपनी-अपनी किस्म का ब्रेन्डल नाच होता है। अक्सर करके बुढ़े आदमियों के लिये यह क्रम प्रारम्भ हुआ था। इसके बाद यह संघ विवाहित के लिये बहुत प्रिय माना गया। सभी लोग अपने-अपने हाथ पकड़ते हैं और एक घेरे में इकट्ठे हो जाते हैं। कभी-कभी ब्रिटेनी के एक हिस्से में एक जोड़ा एक दूसरे के पीछे खड़ा हो जाता है और दाँई ओर से बाँई ओर तथा बाँई ओर से दाँई ओर को घूमता है। दूसरे हिस्से में जोड़ा हाथों को पकड़ता है और सरकता है। स्त्री का दाँया हाथ पुरुष के दाँये में तथा पुरुष का बाँया हाथ स्त्री के बाँये में होता है। प्रत्येक जोड़ा घूमते समय कुछ न कुछ करता है और अन्य लोग गाने के साथ-साथ हाथों से ताली बजाते हैं। फिस में वैविध्य देखा जा सकता है। फिर एक पैर से ठोकर मारी जाती है, जोकि 'गाय की ठोकर' के नाम से पुकारी जाती है और दूसरे धोबी की स्त्री के कार्य-कलापों की नकल करते हैं। दूसरे नाचने वाले अपने हाथों में प्रकाश लिये होते हैं—जैसाकि जर्मनी के सर एडवर्ड हेनरी अष्टम के नाच में होता है।

एक साधु ने ब्रेनल नृत्य पर एक बड़ी पुस्तक लिखी थी। उसने बताया कि यदि तुम अपने कदमों को ठीक रखे हो तो अपने पैरों की ओर मत देखो। अपने हमाल का प्रयोग अधिक न करो और इस बात का खयाल रखो कि तुम्हें स्वच्छ होना चाहिये। यह देखो कि तुम्हारे मौजे फिसल न रहे हों और तुम्हारे जूते अस्तव्यस्त न हों। अगर यह कठिन लगता है तो किसी साधु से तुम्हें सीखना चाहिये। हमें चर्च के नाच में धार्मिकता का ध्यान रखना चाहिये। धार्मिक नाच ही नाचना चाहिये। साल में कई मौकों पर

बच्चों के नाच होते हैं। लेडी ऑफ दि पिलर की दावत के दिन नाच होते हैं ऐसे नाच क्रिसमस की शाम को ऐरागोन में किये जाते हैं।

आरडेन्स के इटसेच में एक सालाना नाच भी होता है जिसमें एक जुलूस एक साधू की कब्र तक जाता है। ऐसा बहुत शताब्दियों से होता चला आ रहा है और हजारों आइमी इसमें भाग लेते हैं। सेवायल के थेडूल आधे दर्जन बच्चों के दो झुण्डों द्वारा किया जाता है।

स्पेन में भी हमको ग्रामीण नृत्य देखने को मिलते हैं। इसे डानक्विगजोट के लेखक कार्वेन्टीज ने लिखा है कि स्पेन की औरतें नाच के लिये कभी पैदा नहीं हुई थीं। नृत्य की शक्ति के विषय में लेखक ने लिखा है कि इसका प्रभाव आत्मा पर और कानों पर पड़ता है। यह बिजली के उस प्रभाव के समान है जो एक धक्के में सारे हृदय को हिला देता है। स्पेन के नाचों में हवा के अन्दर एक सुन्दर गीत फैलता रहता है जिससे पैर आवाज करते रहते हैं और सिर झूमता रहता है। एक बार स्पेन वालों को जब वे गुलाम थे, नाच से बड़ा दुख हुआ और उन्होंने नृत्य को वर्जित करने का इरादा कर लिया। अगर कोर्ट का कोई सदस्य इस नृत्य को देखता है तो पोप के यहाँ से उसके बारे में डिग्री की घोषणा हो जाती है। इसलिये यह प्रस्तावित किया गया कि नृत्य प्रारम्भ होने से पहले यह बात न्यायाधीशों के सामने प्रकट होनी चाहिये। दो नाचने वाले इसीलिये स्पेन से भेजे जाते थे। पहले कार्डिनल उनको डराता था तो वे लोग हँसते थे। इसी की नकल पर ताल देते हुये इसे संगीत के साथ प्रकट करते हैं। वे लोग शांति के साथ बैठ नहीं सकते, वे कूदते नाचते हैं। इसके बाद फ्रन्डेगो नाच होता है जिसका वर्णन करना ही असम्भव है। नाचने वाले जिनमें एक स्त्री तथा एक पुरुष होता है बड़ी नम्रता के साथ नाच प्रारम्भ कर देते हैं। उनका शरीर बहुत ही मृदुल और लचकदार हो जाता है तथा उनकी आँखें बहुत कोमल होती हैं। धीरे-धीरे वे बहुत तेज होते जाते हैं, उनकी आँखें चमकने लगती हैं, उनके कदम भारी होते जाते हैं। वे सदैव गौरव प्रदर्शित करते हैं। वे लोग बड़ी तेजी से खटका मारते हैं और नाच का अन्त एक ऐसे घेरे के अन्दर होता है कि अगर उस समय सम और ताल न हो तो बहुत ही भद्दा दिखाई देने लगे।

बोलरो नृत्य बिल्कुल शांत ढंग का होता है। यह नाच सैंकड़ों ही जोड़ों द्वारा होता है जिसमें अनेक कदम मनोहरता से गिरते हैं। नाचने वालों का प्रदर्शन और ढंग बड़ा लुभावना और सुन्दर होता है।

है। काचु का नाच एक व्यक्ति द्वारा किया जाता है। इसको स्त्री या पुरुष कोई एक ही कर सकता है। यह फ्रन्डेगो नृत्य के समान ही प्रारम्भ होता है, फिर धीरे-धीरे इसमें तेजी आजाती है और केस्टेनेट जोर-जोर से आवाज बढ़ाना प्रारम्भ कर देते हैं। उनका सिर अभिमान से उठ जाता है तथा उनके कंधे, पैर और उँगलियों के साथ उनके सिर हिलते रहते हैं। जोटा नाच कम प्रसन्नता दिखाने वाला होता है। इसमें चर्च का सा गान भरा रहता है और यह दुःख का वर्णन करते समय भी नाचा जाता है। पुरुष और स्त्री अलग-अलग बिना हाथ पकड़े नाचते हैं। वे बहुत धीरे-धीरे चलते हैं। उनके यहाँ घर पर नाचने का यह परम्परात्मक ढंग है, लेकिन इससे अन्य ढंग भी प्रचलित हैं। अगर जवान लोग इस नाच को नाचने की कोशिश करते हैं तो वे इसको बहुत सुन्दर बना देते हैं। जब यह नाचा जाता है तो जोड़े आपस में गाते जाते हैं। कभी-कभी विषय के अनुकूल भी होते हैं और कभी-कभी दुःख-पूर्ण नृत्य भी किये जाते हैं। वे गाते हैं :—

“तुम्हारी बाँह सब्जी-सी प्यारी हैं जो रसोइये द्वारा रसोई की छत से लटकाई जाती है।”

नाच के समय गाना और नाचना बहुत साधारण सी बात है। लोग नाचते भी हैं और गाते भी हैं। इसमें ‘ट्रा - ला - ला’ और ‘डैरी - डाइन - डैरी’ तथा ‘हैनोनी’ कहते हैं। ऐसे बहुत से गीत इंग्लिश में प्रचलित हैं। इस प्रकार की आवाजें गायक नाचने वालों के साथ उठाता रहता है। सेगुडिली नृत्य फ्रेन्च नृत्य ब्रेनल से मिलता-जुलता है। यह स्पेन का सबसे अच्छा राष्ट्रीय नृत्य है। इसमें नाचने वाले और देखने वाले इनमें से अधिकतर प्रेम के गीत गाते हैं जैसे—‘मेरा दिल तुम्हारे दिल में डूबा जा रहा है। तुम इसके पंखों को पकड़ो ताकि यह वहाँ पर ठहर जाये। अब यह अपने लिये घर बना लेगा और वहाँ सदैव के लिये ठहर जायेगा।’ सेगुडिली में एक बात यह होती है कि इसमें अचानक ही कदम रोक दिया जाता है और नाचने वाले जब तक प्रारम्भ नहीं कर देते तब तक बिल्कुल शांत रहते हैं। वे जैसे के तैसे खड़े रहने की कोशिश करते हैं। जब गीत बदला जाता है तब वे एकदम मुड़ते हैं और सीधे हो जाते हैं। उनकी भुजाएँ ऊपर को उठती हैं, एक पैर जमीन पर होता है, जोकि सीधा खड़ा हुआ कुछ झुकाव खाते हुये होता है। उस समय कोई भी अंग नहीं हिलता—यह इस नृत्य का एक आदर्श है और आश्चर्यजनक है कि अक्सर नाचने वाले उसके बहुत निकट पहुँच जाते हैं। कदम वास्तव में

बहुत साधारण होते हैं। स्त्री और पुरुष एक दूसरे का पीछा करते हैं और एक दूसरे की जगह बदलते हैं। यहीं अचानक रोक होती है और बराबर में अचानक मुड़ना होता है जिसमें एक दम हिलने-डुलने को रोक दिया जाता है। यहीं से गुडिली को दिलचस्प बना दिया जाता है।

इटली के राष्ट्रीय नाचों में ट्रान्तेला बहुत अधिक प्रसिद्ध है। यह नाच विशेषकर दक्षिण में नेपल्स में होता है। इसका नाम जहरीली मकड़ी 'टे रे न तुला' से सम्बन्धित है। जब वह काटती है तो उसका जहर नाच के द्वारा ही दूर किया जाता है। ऐसा इनका विश्वास होता है। नाच इतना अधिक होता है कि जहर पसीने के द्वारा बाहर निकल जाता है। दूसरी कहानी यह भी है कि इसका जहर नाच-जैसी स्थिति पैदा करता है। वह शरीर के अन्दर नृत्य करता है अर्थात् खून की गति के साथ चलता है। यद्यपि इसको संदेहास्पद कह सकते हैं। लेकिन इसकी प्रसिद्धि को देख कर सदेह करना व्यर्थ हो जाता है। यह नृत्य ढपली बजाते हुये किया जाता है जोकि आमतौर पर स्त्री और पुरुष बजाते हैं। कभी-कभी अकेली स्त्री भी नृत्य करती है। इसमें आशा, निराशा, द्वेष, भक्ति आदि के भाव अच्छे ढंग से व्यक्त किये जाते हैं। पहले मनुष्य स्त्री के ऊपर विजय प्राप्त करता है, औरत उसके सामने झुकती है। लेकिन अन्त में पुरुष उसके सामने झुकता है और वह उसे अपने पवित्र प्रभाव द्वारा बाँध लेती है।

सिसिल के दक्षिण में लोक-नृत्य बड़ी चतुराई से किये जाते हैं। सिसिल यना में एक व्यक्ति स्त्री से पूछ कर नाच शुरू करता है। उस समय वह बहुत नम्रता दिखाता है। वे दोनों एक रूमाल के किनारों को पकड़ लेते हैं। जब वे नाच प्रारम्भ कर देते हैं तो पुरुष झुकता है और अपनी साथिन को छोड़ देता है। जब तक वह अपने पसंद के आदमी को देखती है, वह धीरे-धीरे चक्कर लगाती रहती है। वह उसको नाचने को आमन्त्रित करती है। इसी बीच में उसका पिछला साथी दूसरी स्त्री के साथ चक्कर लेता है, इसीलिये शाम को जब तक नृत्य बन्द नहीं हो जाता तब तक ऐसा ही चलता रहता है। इस नाच में शादी-शुदाओं के नृत्य भी एक दूसरे के साथ चलते रहते हैं। मेसिना में नृत्य रंगेरा कहलाता है जिसमें दो स्त्री और दो पुरुष घेरे में घूमते हैं। प्रत्येक गीत गाते हुये घूमता है।

नृत्यों में हंगरी में गायन अधिक होता है। वहाँ गायन ही ऐसा है जिसमें नृत्य की आवश्यकता होती है। हंगरी में नृत्य काफी देखा जासकता है। हंगरी

का सबसे अधिक प्रसिद्ध नाच स्टारदास कहलाता है। यह नृत्य वहाँ बहुत प्रसिद्ध है। उस नृत्य में दोनों सहयोगी सीधे कदमों से चलते हैं, फिर पुरुष स्त्री को अपनी जगह ले लेता है तथा उसके हाथों और आँखों को लय गाने पर रख देता है अर्थात् हाथों को वह पकड़ लेता है और आँखों से आँखें मिलाता रहता है। वे संगीत के साथ कुछ कदम चलाते हैं। जब संगीत जल्दी होने लगता है तो उनके कदम तेज हो जाते हैं। तेजी के साथ चलते हुये वे घूमते हैं और बेला की आवाज दूनी तेज होती जाती है। जब नाच अपनी हद पर पहुँच जाता है तो बड़े जोश के साथ उसका अन्त होता है। चेकोस्लाविया में ग्रामीण नृत्य बड़ा आनन्ददायक होता है। औरतें अपनी उन पोशाकों में होती हैं जिन्हें वे स्वयं बनाती हैं। उनको बनाने में वे १०-१२ साल लगाती हैं। इस पर सुई से चतुराई से नक्काशियाँ करती हैं। पुरुष सुई से फूल मँड़ी कमीज धारण करता है। मखमल का चाँदी के बटनों वाला कमर तक का कोट पहिनता है। लम्बा कोट और घुटनों तक जाँधिया और सुन्दर रूमाल जोकि पेट की लटके रहते हैं, धारण करता है। जिन नृत्यों में वे भाग लेते हैं, वे नृत्य अपनी स्वयं की शान रखते हैं। बोहेमिया में पोलका नाम का नृत्य होता है। इस नाम का मतलब है कि आधी बाहों वाला और यह माना जाता है कि इसको एक किसान की लड़की ने प्रारम्भ किया था। यह एक तलवार का नाच है। यह निश्चित परम्परा के अनुकूल आज भी किया जाता है। यद्यपि यह एक 'कजल' नाच कहा जाता है।

दूसरी किस्म का तलवार नाच इस प्रकार किया जाता है कि दो लड़कियाँ एक दूसरे को काटती हुई खड़ी होती हैं और उनके बीच में से कदम रखे जाते हैं। यह नृत्य बासव्यू देश में, फ्रांस और स्पेन में प्रसिद्ध है। यही नहीं बल्कि वहाँ अनेको ही किस्मों के नृत्य आज भी देखे जा सकते हैं और ये तमाम नृत्य बहुत प्राचीन हैं। नाचने के लिये बास्क्यू इतने प्रसिद्ध हैं कि लोगों में यह कहा जाता है जब तक एक बच्चा पिटना सीखता है तो इन हिस्सों में असल में वह नाचता है। बवेरिया के बच्चों के बारे में भी यही कहा जाता है। जर्मन रेख (राज्य) किसानों के नृत्यों के लिये बहुत प्रसिद्ध है। वे लोग बहुत कठोर हैं, लेकिन नाचने का रिवाज और उनकी प्रसन्नता उन्हें कोमलता की ओर झुका देती है। वहाँ पुरुष की जाँघों तथा उसके लकड़ी के जूतों की आवाज लगातार होती रहती है। कदम बड़ी सावधानी से उठाया जाता है तथा इस नृत्य की पूर्णता पर पहुँचने के लिये बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती है। सभी

इस दिन की अग्नि के लिये ईंधन लड़के एकत्रित करते हैं, जो घर-घर घूम कर इकट्ठा किया जाता है।

इसमें ईंधन देकर अपने को भाग्यशाली माना जाता है। आजकल यह उत्सव जवान आदमियों द्वारा ही मनाया जाता है। वे अग्नि के चारों ओर उछलते हैं, नाचते हैं और जुलूस में पुजारियों सहित भाग लेते हैं। मध्य ग्रीष्म के अग्नि-उत्सव के धुएँ को अच्छी फसल के लिये उत्तम माना जाता है। आनन्द मनाने वाले लोग अग्नि के मध्य फूलों की मालायें फँकते हैं और कुछ लोग अपने प्राचीन रिवाज को कायम रखने के लिये चक्कर लगाते हैं। पिछली शताब्दी में तो इस पवित्र अग्नि से सारा फ्रान्स चमकने-सा लगता था।

ब्रिटेन में इस पवित्र अग्नि से सम्बन्धित कुछ प्राचीन रिवाज अभी भी जीवित हैं। आजकल भी प्रत्येक वर्ष, २४ जून की, शाम को यह पवित्र अग्नि परियों की पहाड़ी के अर्नशी पर चमकती है।

ऐडिनबर्ग की मध्य ग्रीष्म की इस पवित्र अग्नि के सम्बन्ध की रीतियाँ विक्टोरिया-दिवस की शाम को मनाई जाने लगी हैं, तथा अधिकारियों ने प्रत्येक गली में इस अग्नि को जलाने की आज्ञा दे दी है। फ्रान्स में भी यह रिवाज आज भी देखा जा सकता है। वहाँ पर ईंधन इकट्ठा करने के लिये नवयुवक घर-घर घूमते हैं।

आजकल यह पवित्र अग्नि कुछ ग्रामीण हिस्सों में लड़कों द्वारा तैयार की जाती है। कोई भी लड़की, जो कि इस अग्नि को तेजी के साथ तीन बार पार कर जाती है, उसके बारे में जल्दी शादी होने की आशा तथा अच्छे भाग्य की पहिचान मानी जाती है। घर के पालतू पशुओं को भी इसके धुएँ और राख में होकर ले जाया जाता है तथा समझा जाता है कि उनकी बीमारी शीघ्र दूर हो जायेगी।

सम्पूर्ण स्पेन, स्केण्डिनेविया और जर्मनी में यह रिवाज कुछ अनियमितता से मनाया जाता है। कहीं-कहीं पर यह रिवाज आज भी मनाया जा रहा है।

उत्तरी अफ्रीका के मुसलमान भी यूरोपियनों की भाँति इस रिवाज को मनाते हैं। जहाँ कहीं मध्य ग्रीष्म की पवित्र अग्नि नहीं जलाई जाती, वहाँ पर मध्य ग्रीष्म के दूसरे विश्वास प्रचलित हैं। इनमें से एक यह है कि एस जॉन की

शाम को अपना ध्येय निश्चित करने के लिये कुछ दैवी उत्सव मनाये जाते हैं। २४ जून के बाद कुक्कू की आवाज सुनना अभाग्यशाली माना जाता है, क्योंकि यह चिड़िया दूसरी दुनिया से सम्बन्ध रखती है।

मध्य ग्रीष्म की साँझ को दैवी प्रेम का आचरण ग्रामीण हिस्सों में आज भी प्रसिद्ध है, विशेषकर जवान औरतों में। एक रिवाज रोटी के उत्सव से सम्बन्धित है, जो कि बाद में टुकड़ों में तोड़ दी जाती है। जब ये टुकड़े जवान औरतों को दिये जाते हैं, तो वे अपने भविष्य के बारे में शान्तिपूर्वक सोचती हैं। वे अपने बिस्तरों के पास वापिस जाती हैं, और उस टुकड़े को उसके नीचे रख देती हैं। इस सम्बन्ध में उनमें कुछ ऐसा विश्वास प्रचलित है कि रात्रि के मध्य में, भविष्य में होने वाला पति उनको स्वप्न में दिखाई देता है। दूसरा रिवाज यह है कि एक लड़की को पीछे की ओर से चलकर बाग में जाना चाहिये और ओस से भीगे हुए गुलाब चुनने चाहियें। उसे ये फूल मध्य ग्रीष्म के दिन धारण करने चाहियें तथा जो जवान व्यक्ति उससे उन्हें देने के लिये कहे तो समझना चाहिए कि वही भविष्य में उसका पति निश्चित रूप से होगा (अगर वह ऐसी इच्छा रखती है तो)। कुछ ग्रामीण हिस्सों में, गर्मियों के बीच होने वाले उत्सव में यदि कोई युवक किसी लड़की से प्रेम-याचना करता है तो वह शादी का प्रस्ताव मान लिया जाता है। अगर उसकी प्रार्थना अस्वीकृत कर दी जाती है, तो यह बात स्पष्ट है कि चाहने वाला व्यक्ति पसन्द नहीं किया गया है।

मध्य ग्रीष्म की शाम को एक रिवाज आज तक मनाया जाता है। वह यह कि लोग महीन बीजों का ढेर इकट्ठा करते हैं, जो कि धन के खजाने को देने की शक्ति रखता है। एक जवान आदमी अपने दायें हाथ में एक तश्तरी रखता है और अँधेरे में महीन बीज वाले पौधे की ओर जाता है। नियमानुसार वह उस पौधे को छूता नहीं है, बल्कि यह कोशिश करता है कि जादू का बीज उस तश्तरी पर गिरे। फ्रान्स, जर्मनी, रूस, इटली और आस्ट्रिया में भी इस बीज से सम्बन्धित बातें मानी जाती हैं। बहुत-सी जगह रात भर जागने की प्रथा भी इस दिन प्रचलित है। लन्दन में रात भर जागने की प्रथा एक साधारण-सा रिवाज है।

इस दिन के जुलूस में बनावटी दुष्टात्माएँ इंग्लैंड में साधारण रूप से बनाई जाती हैं। करीब-करीब सारे यूरोप में यह विश्वास किया जाता है कि इस दिन एकत्रित होना विशेष गुणों से सम्बन्ध रखता है। चीन के निवासी भी

मुगवर्ट की गुड़िया अपने घरों के दरवाजों पर लगाते हैं, जो कि घर में गन्दी हवा के प्रभाव और अभागेपन को घुसने से रोकती है। इस दिन के प्रातः से लेकर दिन छिपने तक यह विश्वास किया जाता है कि आज मानव-जाति के लिये कुछ न कुछ अवश्य हो रहा है।

प्राचीन और नवीन गोष्ठी

भोजन के सम्बन्ध में आधुनिक समाज में लोक-मैत्री बढ़ती हुई चली जा रही है। यह सिर्फ तश्तरियों के सम्बन्ध में ही नहीं है, जिनको बनाने का ढंग, सामान दूर-दूर से आता है, तथा इनको गोष्ठी में पेश करने के लिये बड़ा परिश्रम भी किया जाता है। यह रीतियाँ अपने अपने ढंगों का एक साधारण स्तर पैदा करती हैं, जिनसे जातीय तथा जनसाधारण की विशेषतायें प्रगट होती हैं। यद्यपि नयी रीति मेज पर भोजन लगाने में अपनी विशेष पद्धति रखती है, पर यह धीरे-धीरे तुरानी बातों को हटाती जा रही है और जो कुछ भी प्राचीनता जीवित रह गई है उसमें ही वे देखी जा सकती हैं। वे किन्हीं खास मौकों के लिए सुरक्षित हैं और ऐसे समाजों के बीच पाई जाती है जो अपनी परम्पराओं पर अभिमान करते हैं। ऐसे समाजों में इंग्लैंड के विश्वविद्यालयों के कालेज विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

साधारण मौकों पर धार्मिक कमजोरी समझ में नहीं आती। दूसरों के साथ मिलकर भोजन करना आज भी नवीन समाज में प्रचलित है। भोजन में और दोपहर के बाद के नाश्ते में तथा सुबह के नाश्ते में आज भी यह परम्परा मिलती है। क्लबों के भोजन और स्वतन्त्र भोजन प्राचीन रोम और ग्रीस में अपनी अलग विशेषताएँ रखते हैं। प्राचीन समाज में मृत-भोज और धार्मिक बलिदान की दावतें आज भी वैसी ही मिलती हैं।

मेसीडोनिया और मौरक्को में भोजन के बाद अगर अतिथि का दिल प्रसन्न न हुआ तो अपनी बेइज्जती समझी जाती है। प्राचीन लोग जैसा कि हम रोमन लोगों के बारे में जानते हैं, वे अपने अतिथि को आधिक से अधिक भोजन कराना अच्छा मानते थे। प्लिनी ने अपने भवन का वर्णन करते हुये कहा

है कि लम्बे रास्ते के बीच में अतिथि से बमन करने की उम्मीद की जाती है। रोमन भोजन में ऐसा ही किया जाता है। इस परम्परा को निभाने के लिये वे कभी-कभी अपनी जबान को पंख से सहलाते थे, वमन करते थे और फिर वापिस भोजन की मेज पर जाते थे। प्राचीन मांसाहारी लोगों में हर एक आदमी अपने लिये सीकचों में मांस भूनता था और उसे भाले से अटेरा (चलाना) जाता था। मांस का बर्तन तश्तरियों के रूप में परोसा जाता था। उसमें गोश्त को काटने और टुकड़े करने के लिये एक काँटा रखा जाता था।

पूर्वीय देशों में ओर मुसलमानों में खाना दाँये हाथ से किसी तश्तरी या प्याले में रखकर खाया जाता है। किन्हीं खास मौकों पर उच्च श्रेणी के लोगों में भोजन चौकी पर परोसा जाता है। चौकी की पुरानी लकड़ी पर सीप की नक्काशी होती है। इसके चारों ओर अतिथि एकत्रित हो जाते हैं। वे अपने एक घुटने को ऊँचा उठा कर जमीन पर बैठ जाते हैं। अगर परोसने वाला ऊँची श्रेणी का होता है तो वह भी पास में दीवान पर बैठ जाता है। लेकिन अधिकतर अपने अतिथियों के साथ जमीन पर ही बैठता है। जब भोजन परोसा जाये तो उसे स्वयं पहले खाना आरम्भ कर देना चाहिये। मुस्लिम सिद्धान्त के अनुसार घर की औरतें वहाँ मौजूद नहीं होतीं, यद्यपि यह रिवाज अब टूटता जा रहा है। टर्की में औरतें सामाजिक कार्यों में बहुत भाग लेने लगी है।

प्रत्येक अतिथि को भोजन में एक रोटी का टुकड़ा पेश किया जाता है। जो कुछ पेश किया जाता है उसके लिये एक प्लेट की आवश्यकता होती है, ऐसा इंग्लैंड में टन्यूडरवंश के काल से ही चला आ रहा है। चीन में दो नोंक वाला काँटा प्याले से गोश्त का टुकड़ा उठाने के लिये चतुर लोगों द्वारा एक सुन्दर ढँग से काम में लाया जाता है। यूरोप के लोगों में जो कि भोजन में हाथ लगाना ठीक नहीं समझते तथा जो भोजन में बड़े सावधान हैं, एक अद्भुत बात दिखाई देती है। वहाँ मेजवान स्वयं, अपने उस प्रिय अतिथि के लिये जिसका कि वह आदर करना चाहता है, उसके लिये भोजन अपने हाथ से परोसता है। फारस में वह स्वयं अपने हाथ से उसके मुँह में भोजन रखता है। पूर्वी अफ्रीका में नन्दी के उत्सव पर खूनी भाई-चारा होता है। इस उत्सव में एक अवसर पर एक रोटी को बलिदान की हुई बकरी के खून में भिगोते हैं और एक दूसरे के मुँह में देते हैं। पूर्व में भोजन के लिये मेज, छुरी, काँटे, आदि प्रयोग में नहीं लाये जाते हैं। वहाँ गोश्त बहुत मुलायम बनाया जाता है और सभी उसे मिल-बाँट कर खाते हैं। मिलावट वाली चीजें

हाथों पर बाँटी जाती हैं। फ्रान्स में भी एक प्रथा थी कि सम्पूर्ण गोष्ठी में एक ही चाकू भोजन के शुरू में काम में लाया जाता था। सारा खाना बहुत शीघ्रता से काट दिया जाता था और सभी के सामने शीघ्रता से पेश किया जाता था। खाने के लिये वे सिर्फ एक काँटा ही काम में लेते थे।

उँगलियों से खाने का रिवाज इंग्लैंड में भी प्रयोग में लाया जाता था। हरी सब्जियों तथा अन्य ऐसी ही चीजें खाने के लिये उँगलियों का प्रयोग किया जाता था, लेकिन अब यह प्रथा भद्दी मानी जाने लगी है। भोजन से सम्बन्धित एक दिलचस्प विचार जो कि सुसंस्कृत माना जाता है, वह है कॉकटेल आदत। लड़ाई से पूर्व यह आदत अमेरिका से लेकर सारे यूरोप में पाई जाती थी। और आजकल तो इस आदत का प्रचार बहुत अधिक हो गया है। अपरिटिफ़ की आदत शायद सबसे पहले फ्रांस से आई, वहाँ पर भी यह शायद पूर्व से आई हो।

शराब, भोजन परोसने के मध्य में अतिथियों के लिये पेश की जाती है। पूर्व में एक प्रकार का आसव प्रस्तुत किया जाता है। रूस में मुसलमान लोगों में भोजन से पहले महमान को मछली, सूखा गोश्त तथा सिगरेट आदि पेश करते हैं। वास्तव में आसव एक प्रकार का स्वादिष्ट रस होता है, जो कि अतिथि सत्कार के लिये उत्सवों पर पेश किया जाता है। अलबेनिया में अथिति पिता के घर में प्रवेश पा सकता है और उसे अतिथि-सत्कार में एक प्रकार का रसनुमा आसव और बकरी का दूध स्वीकार करना पड़ता है। कुस्तुन्तुनिया में, जबकि इंग्लिश भोजन समाप्ति के बाद ग्रीक बोलने वाले लोग चाय पीते हैं, तो वहाँ पर आने वाले लोगों के लिये दौसिका और मस्तिक, जोकि एक विशेष प्रकार के द्रव होते हैं, सूखी मछली के साथ पेश किये जाते हैं। अरब लोगों में नमक ही मित्रता का चिन्ह है और वे लोग जब चाय आदि पीते हैं तब ही मित्रता की प्रतिज्ञा करते हैं। प्राचीन रिवाज अधिक आगे बढ़े हुये समाज में आज भी अपनी छाया डाले हुए दिखाई देते हैं।

आत्मीय और जादूई प्रभाव भोजन के विषय में अधिक शक्तिशाली हैं और उनके बारे में यह विश्वास किया जाता है कि वे खाने के ढँग से विशेष रूप से सम्बन्धित हैं। पुराने आदमी दूसरों की उपस्थिति में भोजन करना अच्छा नहीं मानते। ऐसे मौके आ जाते हैं तो प्रथा यह है कि बहुत से व्यक्ति खाते समय पीठ करके खाते हैं। आयरलैंड और स्कॉटलैंड में भी यह प्रथा खास तौर से ऊँची श्रेणी के व्यक्तियों की उपस्थिति में दिखाई देती है।

ऐसा नियम है कि सिर्फ वे ही जो कि एक ही देवता की पूजा करते हैं और भारत में जो एक ही जाति के हैं, एक साथ खाना खा लेते हैं। दुनियाँ के बहुत से भागों में स्त्रियाँ पुरुषों के साथ खाना नहीं खातीं, यद्यपि शादियों के अवसर पर स्त्री-पुरुष का सम्मिलित भोजन एक साधारण बात है। सोलोमन द्वीपों में किसी मृतक के प्रति दिये गये भोजनों में औरतों को बिल्कुल त्याग दिया जाता है और उनको भोजन बनाने के समय पर भी भाग नहीं लेने दिया जाता।

बलिदानों के अवसर पर जब समूह के उत्सव आदि होते हैं तो उनमें उन समूहों के सदस्य ही प्रवेश पा सकते हैं। इसकी रूकावट का कारण स्पष्ट है कि वे बलिदान अपने पूर्वजों के लिये ही किये जाते हैं। इसलिये अन्य लोग इन बलिदानों में भाग नहीं ले सकते। प्राचीन समय में भी अतिथि-सत्कार के अवसर पर यह विचार तथा विश्वास काम करता था। ये अवसर मनोरंजन के साधन नहीं होते थे, लेकिन समूह में प्रवेश ही यहाँ एक प्रमुख बात होती थी। अरब लोगों में आतिथ्य-सत्कार, मेजबान और अतिथि के साथ-साथ नमक खाने पर निर्भर होता है। मेज पर रखे नमक के पात्र के नीचे बैठना मध्य-युगीन विश्वासों से सम्बन्धित है। इसमें जादू और सामाजिक महत्त्व माना जाता है। वे लोग जो कि अतिथि से ऊपर बैठते थे, अपने कुटुम्ब के सदस्य समझे जाते थे, वे जो कि नीचे बैठते थे सेवक समझे जाते थे। इसी प्रकार भोजन के साथ शराब लेने की प्रथा कुछ कॉलेजों और संघों के अन्दर ही परम्परागत रूप से पाई जाती है। यह प्रथा खूनी भाई-चारे के उत्सव पर ही अधिकांश रूप में देखने में आती है। अधिक सभ्य जातियों में कुर्बानी वाली दावतें प्राचीन समूहों की क्रियाओं से ही मिलती-जुलती हैं। इनमें मेज को भी सम्मिलित किया जा सकता है अर्थात् मेज भी बलिदानी मानी जाती है। कभी-कभी यह मेज रेत के टीले के समान होती है। इसके ऊपर ही शिकार को ले जाया जाता है। परस्पर मिलने से पहले प्राचीन रोम-निवासियों के घरों में ईश्वर को भेंट चढ़ाई जाती थी, तथा जब मिल कर सब भोजन करते थे, तो वे अपने पूर्वजों को पुकारते थे।

शिष्टाचार के रिवाज

‘शिष्टाचार ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है’, यह एक पुरानी कहावत है। ससार के भिन्न-भिन्न हिस्सों में शिष्टाचार के बारे में नाना प्रकार की कहावतें पाई जाती हैं। रूमाल का प्रयोग आमतौर से सभ्य समाजों से सम्बन्धित है। लेकिन नीग्रो लोगों में स्त्रियों द्वारा उँगलियाँ काम में लाई जाती हैं। रूमाल फौज के अफसरों के लिये ही सुरक्षित है। शिष्टाचार से सम्बन्धित बहुत से रिवाज इतने प्रसिद्ध हो गये हैं, कि आज उनकी वास्तविकता को समझ-सकना बहुत कठिन हो गया है। आमतौर से आमन्त्रण ‘आओ और हाथ मिलाओ’ कह कर दिया जाता है। हाथ मिलाना खासतौर से मित्रता से सम्बन्धित है, यह मध्य-युगीन वीरों में होता था, कि वे अपनी दुश्मनी को दूर करने के लिये एक दूसरे को अपने हाथ पेश करते थे। इसमें एक और विश्वास है कि दाँया हाथ ही जिन्दगी की रक्षा के लिये उपयुक्त है।

उत्सवों के समय पर बधाई देने के अनेकों ही तरीके प्रयोग में लाये जाते हैं। ‘गुड बाई’ (बिदाई) शब्द बताता है कि ईश्वर तुम्हारे साथ रहेगा। आयरलैंड के किसानों में कहा जाता है—‘तुम्हारी छाया कभी न घटे।’ यह कथन प्राचीन समय के विश्वासों को बताता है। काले-जादू के अभ्यासी लोग एक कमरे में दौड़ने के लिये बाध्य किये जाते थे और जो अपनी छाया को पकड़ने में सफल हो जाता था वह प्रथम दर्जे के जादूगर के रूप में प्रसिद्ध हो जाता था। उनके पीछे दुष्टात्मायें और दौड़ती हैं, ऐसा विश्वास किया जाता था। अलबेनिया के पहाड़ों पर बधाई देने की दूसरी किस्म पाई जाती है। वहाँ आगन्तुक का इन शब्दों द्वारा आदर किया जाता है, ‘मेरे हृदय के अतिथि।’ और अतिथि-सत्कार में जो कुछ भी वे भेंट कर सकते हैं, करते हैं। कुछ

मौनमिथीत अपनी औरतों को 'मेरी स्त्री, मुझे अगर क्षमा करोगी, कह कर ही किसी से परिचित कराते हैं। यह प्रयोग, जिन औरतों की शादी नही हुई है और जो पूर्ण मानी जाती हैं और शादी-शुदा जो पाप से भरी हुई मानी जाती हैं, दोनों के लिये ही काम में आता है। बधाई और बिदाई की बहुत-सी भिन्न-भिन्न किस्में उत्सव के रूप में प्रयुक्त की जाती है। जब अतिथि जाने को होता है तो मेजबान में और अतिथि में एक नाटक-सा प्रारम्भ होता है। जैसे—

अतिथि—'मैं तुम्हें छोड़ कर जा रहा ।''

मेजबान,—'तुम छोड़ कर जा रहे हो ।'

अतिथि—'मैं बिल्कुल सीधी सड़क से जा रहा हूँ ।'

मेजबान—'तुम सीधी सड़क पर जा रहे हो ।'

इसी प्रकार की पुनरावृत्ति कुछ समय तक चलती रहती है। जब तक कि मेजबान यह महसूस नहीं कर लेता कि नम्रता की सारी किस्में पूरी हो गई तब वह कहता है, 'जाओ ।'

प्राचीन समय में बधाई देते समय लोग काफी रोते थे। पिग्मी लोग शादी पर काफी रोते हैं। ग्रायनू स्त्रियाँ अपने दोस्तों की गर्दन से लिपटने में ही आनन्द महसूस करती हैं, और बहुत समय उनकी ओर नहीं देखतीं, पर दर्द से भरी हुई आवाज द्वारा उनको संकेत करती हैं। दक्षिण अमरीका में टूपी भारतीय जो कि चाको के शासन में हैं, इसी परम्परा का प्रयोग करते हैं।

स्वास्थ्य के लिये पीना एक रोमन प्रथा थी और इंगलैंड के सैक्सन भी इस प्रथा के मानने वाले हैं। सुन्दर शराब से भरा प्रिय प्याला अब तक प्रयोग में लाया जाता है। यह एक अतिथि से दूसरे अतिथि तक एक-दूसरे के पास भोजन के समय घुमाया जाता है। यह रिवाज प्राचीन समय से आज तक सुरक्षित है। स्ट्रिप प्याला कवि स्कॉट के शब्दों में अमरत्व देने वाला होता है।

साधारण सुन्दर रात्रि को 'अन्तिम ग्लास' वास्तव में एक महत्त्व रखता है। स्कॉटलैंड में स्ट्रिप-प्याला 'डौव एन्ड डोरिस' के नाम से जाना जाता है। फ्रान्स में कॉफी के प्याले खाली हो जाने पर ब्राण्डी से भर दिये जाते हैं।

समोआ में जवान और सबसे सुन्दर स्त्री कावा की जड़ को चबाती है, जो प्याले के अन्दर रख दी जाती है। उसकी कठोर चीजें हटा दी जाती हैं तथा उसका द्रव पदार्थ बिल्कुल साफ हो जाता है। फिजी द्वीप में ये प्रथायें पुरुषों

द्वारा की जाती हैं और प्याला ले जाने वाला इसे मुखिया को या आगुन्तुक को पेश करता है ।

पीने से सम्बन्धित, आज भी जीवित दूसरी यूरोपियन प्रथा जो कि बाइकिंग तथा नौसों से आई है, उसमें औरतें भोजन के बाद पुरुषों से शराब पीती हैं । यह कहा जाता है कि बाइकिंग लोग हमेशा अपनी पान-गोष्ठी से औरतों को हटा देते थे क्योंकि उन दिनों औरतें ही लड़ाई का कारण समझी जाती थीं ।

मनुष्यों को कौवैन्ट्री भेजने की प्रथा इस वास्तविकता पर आश्रित है कि नागरिक एक समय सिपाहियों से घृणा करते थे । अगर कोई औरत उनसे बोलती हुई देखी जाती तो उसे शीघ्र ही समाज से अलग कर दिया जाता था । आस्ट्रेलिया के मध्य में भी औरतों के बोलने पर प्रतिबन्ध है । इसे तोड़ने की हिम्मत मौत के दण्ड का स्वागत करना है ।

चिबुक के नीचे चुबन की प्रथा अँग्रेजों के समाज में मिलती है । यह उस समय को बताती है जब देश में खुशियाँ मनाई जाती थीं । ब्रिटिश न्यूगिनी की कोइरिया जाति में नमस्कार करके चिबुक को चूमने की प्रथा एक सामाजिक आचरण है ।

यूरोप में चूमने की प्रथा प्रसिद्ध प्रथा थी, जो अब व्यवहार से हटती जा रही है; लेकिन तुर्की में स्त्रियाँ अपने पति की दाढ़ी को चूमकर नमस्कार करती हैं । जापान के शब्दकोश में चुंबन शब्द ही नहीं मिलता । प्यार करने को उस देश में विद्रोह की निशानी माना जाता है ।

पौलिनेशिया में चुंबन करने की जगह एक दूसरे से नाक रगड़ते हैं । न्यूजीलैंड में भी जब लोग परस्पर मिलते हैं तो एक दूसरे से नाक रगड़ते हैं और एक अनोखी ध्वनि का उच्चारण करते हैं जो कि कुत्ते की आवाज के समान होती है । यह प्रथा बहुत ही महत्वपूर्ण है । एस्किमो लोग भी सूरत से सूरत मिलाने तथा हाथ मिलाने की प्रथा को मानते हैं । लैपलैंड में भी परस्पर नाक रगड़ते हैं तथा साथ में उछलते और कूदते भी हैं ।

कुछ स्थानों पर लोग एक दूसरे का हाथ चूमते हैं । हाथ चूमने का कार्य भी बड़ी उत्सुकताओं से पूर्ण होता है । फिजी द्वीप में अतिथि का स्वागत करने के लिये, हाथ चूमने का एक रिवाज था । अन्डमन द्वीप में परस्पर स्वागत करने के लिये हर एक व्यक्ति खाँसता और थूकता है, फिर एक दूसरे से चिपट कर वे परस्पर चुम्बन लेते हैं ।

एक दूसरे को प्यार करना बहुत दूर-दूर तक पाया जाता है। ग्रीक देश में पुजारी लोग जिस किसी का विशेष स्वागत करना चाहते हैं, उसे चूमने से पहले अपनी उँगलियों से जमीन को छूते हैं।

पूर्वी देशों में झुककर नमस्कार करने की प्रथा पाई जाती है। भारत देश में तामिल, (मदरासी) लोग जिसका स्वागत करते हैं, उसके पैरों पर स्वयं झुकते हैं। दक्षिणी भारत की नीलगिरि पर्वत की तोड़ जाति एक अनोखी ही तरह से नमस्कार करती है, जिसे कालमैलै-पद्धति के नाम से पुकारा जाता है। यह स्त्रियों के नमस्कार करने की प्रथा से सम्बन्धित है। वे अपने बड़े रिश्तेदार के पैरों में अपना सिर झुकाते हैं।

जापान के प्राचीन निवासी आयनू लोगों में नमस्कार करने की एक अनोखी प्रथा पाई जाती है। घर में प्रवेश करने से पहले आयनू लोग खाँसते हैं और कुछ क्षण इन्तजार करते हैं और अपनी टाँगों को एक दूसरे के ऊपर रखते हुए मालिक के सामने बैठ जाते हैं, तब वह अपने हाथ बढ़ाता है, जैसे वह प्रार्थना कर रहा हो और उस समय उसका आथित्य करने वाला, मुँह से एक शब्द भी नहीं निकालता। इसके बाद वह नम्रता के साथ उसके हाथों को मिलाकर रगड़ता है और ईश्वर के आशीर्वाद का आवाहन करता है। उसका आथित्य करने वाला और घर वाले भी आतिथि के सामने बैठकर अतिथि की दाढ़ी की ओर देखते हुये आदर के साथ नमस्कार करते हैं। इतना करने के बाद घरेलू बातों की जा सकती हैं। आयनू लोग इस नमस्कार को धार्मिक दृष्टि से देखते हैं। आयनू औरतें नमस्कार करने की अलग रीति रखती हैं। किसी घर में प्रवेश करने के पूर्व उनको अपने सिर के ऊपर रखे वस्त्र को हटा देना पड़ता है। जब वे इस कपड़े को खींचती हैं तो अपने दाँये हाथ की छोटी उँगली को बाँये कन्धे की ओर ऊपर की ओर उठाती हैं और बाँये को दाँये से पार करते हुये अपने एक ओठ को दूसरे पर रखती हैं और उँगली को अपने मुलायम बालों में फेरती हैं। जब वे अपने स्वामी से बोलने की बात देखती हैं या अपने रिश्तेदार के घर से वापिस जाती हैं, तो वे पीछे की ओर चलती हैं। ऐसा करने में वे यह समझती हैं कि वे घर से बाहर जाना नहीं चाहतीं।

सारे संसार में तम्बाकू पीना और उसके साथ-साथ नम्र शब्द उच्चारण करने तथा अन्य बातें करने का एक रिवाज पाया जाता है। अमेरिका के होपी भारतीयों में सिगरेट पीना एक धार्मिक उत्सव के समान है। अगर कोई व्यक्ति किसी समारोह में आमन्त्रित किया जाता है तो पाइप का पीना आदर की

दृष्टि से देखा जाता है। तिब्बत में आथित्य-सत्कार के लिये चाय पेश की जाती है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी पेट्टी में अपना निजी प्याला लटकाये रहता है।

कभी-कभी आचार-व्यवहार की अज्ञानता प्राचीन लोगों के बीच बहुत बुरे परिणाम दिखाती थी। एस्किमो लोगों में एक मौजूदा उदाहरण है कि एक एस्किमो एक गाँव में पहुँचा और उसने एक लड़की से कुछ सहायता करने के लिये कहा तो उस लड़की की माँ ने उस लड़की को, सहायता माँगने पर, शादी के लिये भेंट कर दिया। भारत में बिना मालिक की आज्ञा के ही अतिथि को घर में प्रवेश कर लेने दिया जाता है। एक अँग्रेज जो कि भारत की इस प्रथा से परिचित नहीं था कुछ देर बाट जोहने के बाद घर से गुस्से में लौट गया। सिर्फ अपने आथित्य करने वाले को न देखकर उसने क्रोध किया। लेकिन ऐसी बात यहाँ पर अनादर की दृष्टि से नहीं देखी जाती।

आचरण की पवित्रता के अनेकों ही रिवाज दुनिया में पाये जाते हैं। उत्तरी भारत में नमस्कार करने में लोग एक दूसरे से आदर का शब्द उच्चारित करते हैं। इन शब्दों में अक्सर ईश्वर का नाम लिया जाता है।

इस प्रकार परस्पर अच्छा बर्ताव करने के अनेकों ही रिवाज तथा ढँग संसार में प्रचलित हैं।

रोमनी आचार-व्यवहार और प्रथायें

यूरोप के प्रत्येक देश में रोमनी व्यक्ति व्यापार करते हुये या घूमते हुए पाये जाते हैं जो कि अपनी प्रथाओं तथा भाषा की विशेषताओं के लिये प्रसिद्ध हैं। दरअसल ये लोग भारत के उत्तरी-पश्चिमी भाग से आये हैं। लेकिन ५वीं शताब्दी में जब ये लोग एजीयन प्रदेश में प्रगट हुये—तो, लोगों ने कहा कि ये लोग उत्तरी मिस्र से आये हैं, जिसे ग्रीक लोग 'जिफटोस' कह कर पुकारते हैं। इसी नाम के कारण वे लोग अब तक जिप्सी बने हुये हैं। रोमनी भाषा में रोम (Rom) का अर्थ है पति और रोमनी का अर्थ है स्त्री। रोमनी लोग अपने निवास-स्थान तथा अपनी हृदों से अपरिचित हैं। उनके परम्परात्मक आचरण, उनकी बनावट, काले बाल, भूरी आँखें और शक्ल काले किस्म के यूरोपियनों के अन्दर मिलती है। वास्तव में ये लोग पंजाबी और काश्मीरी हैं, जिन्हें महमूद गज़नवी गुलाम बनाने के लिये, पकड़ कर अपने साथ ले गया था। ये लोग ही यूरोप में भाग निकले थे।

ये सदैव से उद्योगी मनुष्य रहे हैं। व्यापार की दृष्टि से व्यापारी-जीवन में उद्योग के केन्द्रीकरण और यातायात के साधनों ने देशों के जीवन में बड़ा प्रभाव डाला है। जब सस्ते चीनी के बर्तन बहुत अधिक संख्या में नहीं पाये जाते थे, तो रोमनी व्यक्ति उनकी बड़ी माँग पूरा करते थे। छोटे-छोटे हथौड़े जिनसे कि बर्तनों की मरम्मत की जा सके, पानी पीने के प्याले, तेज चाकू-कैंची, बुनी हुई कुर्सियाँ, लकड़ी के चम्मच, कपड़े के थैले, आदि की माँग को ये ही लोग पूरा करते थे। ये मेले तथा अन्य ऐसे ही अवसरों पर घोंड़ों का सौदा करने में बड़े ही चतुर और चालाक सिद्ध होते थे। ये लोग सिर्फ व्यापारिक कार्य में ही चतुर नहीं हैं; बल्कि संगीतज्ञ और सुन्दर नृत्य करने

वाले भी हैं। नृत्य करते समय ये लोग स्वयं को चूड़ियों से सजाते हैं। उनकी औरतें भी भविष्य की बातें बताने में काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी हैं। उन लोगों के लिये खेती का उद्योग ही एक असफल उद्योग रहा है, क्योंकि यह उद्योग उन लोगों की आदतों के अनुकूल नहीं है।

अधिकांश में रोमनी व्यक्ति इधर-उधर घूमते हुये ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं, लेकिन अब बहुत से लोगों ने घर बसा लिये हैं। हालाँकि यह सब उनके पूर्वजों के रिवाज के विपरीत है, मगर अब बहुत कम ही लोग घरों के जीवन से घृणा करते हैं। रोडनी स्मिथ ने बताया है कि उसने अपने भाई के रहने के लिये एक आरामदायक कुटिया बनवाई। लेकिन कुछ दिनों बाद ही उसने उसे एक बाग में, तम्बू में पाया। उसने बताया कि घर बहुत ही ठण्डा है। वास्तविक बात तो यह है कि जिप्सी लोग अपने रहने के लिये खुली और स्वतन्त्र हवा पसन्द करते हैं तथा जाड़ों में एक चार पहिये वाला छकड़ा (जो कि बहुत ही आरामदायक और काफी आनन्द देने वाला होता है) पसन्द करते हैं। कुछ लोग जो जाड़ों में स्वयं को घरों में स्थायी बना लेते हैं, गर्मी के प्रारम्भ में ही सड़कों पर निकल आते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि रोमनी लोग अपने खानाबदोश जीवन से काफी प्रसन्न और सन्तुष्ट रहते हैं। एक गायक ने उनके बारे में कहा है कि—
“यदि तुम कन्जर को गुण्डा कहते हो तो यह अन्याय है, वह कभी भटकता नहीं फिरता, वह तो अपने घर को अपने साथ लेकर चलता है।”

रोमनी बंजारे अपने रिवाज बहुत ही सुन्दरता से निभाते हैं। उनकी शादी की प्रथायें महत्त्वपूर्ण हैं, उनकी सगाई का उत्सव या तो आपसी आकर्षण के कारण होता है या उनके माता-पिता प्रबन्ध करते हैं। इंग्लैंड में रोमनी लोग शादी के बारे में एक विशेष बात यह करते हैं कि जवान लड़की अपनी पसन्द के अनुकूल जवान पुरुष की ओर एक लाल टुकड़ा या पतली रस्सी घुमाती है और एक रोटी एक सिक्के के साथ फेंकती है। पूर्वी यूरोप में लड़की अपनी शादी के फैसले में देर लगाती है तो वह इसके लिये एक रहस्यपूर्ण उत्सव करती है, वह सड़क को पार करती है, और रात को यह उम्मीद करती है कि वह स्वप्न में अपने भावी पति को देखेगी। इस उत्सव के बीच में वह सुई से अपने बाँये हाथ की उँगली को दबाती है, जिससे सड़क पर खून गिरता है। तब बाद में वह जहाँ खून गिरता है उस धूल को इकट्ठा करती है और उसे किसी नदी में फेंक देती है। यह सब क्रिया वह इतनी जल्दी करती है

कि कोई दुष्टात्मा उसके खून के भाग को उसके विरुद्ध ले न जाये। एक जवान व्यक्ति अपने जाकेट की जेबों में दो लाल रूमाल लटकाता है। अगर लड़की उनमें से किसी को स्वीकार कर लेती है तो उन दोनों की सगाई हो जाती है।

सगाई की प्रथा बहुत ही साधारण है। लड़की एक प्याले से शराब पीती है और बाद में उसे अपने प्रिय के हाथ में दे देती है। जब वह भी उसी प्याले में शराब पीता है तो यह कार्य एक-प्रकार का सौदा समझा जाता है। दूसरा बन्धन यह होता है कि वे दोनों साथ-साथ एक चपाती खाते हैं।

स्पेन में सगाई की प्रथा माँ-बाप के समझौते पर तय की जाती है। लड़की करीब १४ वर्ष की होती है और लड़का १४ साल का होता है या इससे कुछ बड़ा। जब तक लड़के लड़की १६ वर्ष के नहीं हो जाते, शादी नहीं की जाती। पीतल का काम करने वाले रोमनी लोगों में एक मैच का प्रबन्ध किया जाता है, जिसका मतलब होता है कि कुछ दहेज देना है। एक जवान लड़की का पिता जब दूल्हे के डेरे पर जाता है, तो वह कहता है 'मैंने एक छोटी गाय को त्याग दिया है।' जब इन दोनों की कीमत तय हो जाती है तो दोनों की शादी की तिथि निश्चित हो जाती है। सिर्फ जवान स्त्री-पुरुष की शादियों में सगाई लम्बी नहीं जाती अर्थात् शादी शीघ्र हो जाती है। शादी होने के बाद प्रेमी-प्रेमिका स्वतन्त्र रूप से साथ-साथ छोड़ दिये जाते हैं। एक बार एक इङ्गलिश रोमनी की स्त्री ने एक विद्यार्थी को सूचित किया कि वह और उसका पति कभी भी एक दूसरे से अलग नहीं हुये थे और उन्होंने जब से उनकी शादी हो चुकी थी कभी भी चुंबन नहीं लिया था।

इन लोगों में शादी के रिवाज प्रत्येक प्रदेश में ही अलग-अलग नहीं पाये जाते, बल्कि प्रत्येक कुटुम्ब में अलग-अलग पाये जाते हैं। जब कोई रोमनी प्रतिनिधि या मुखिया शादी की बातें तय करता है तो वे लोग साक्षियों की उपस्थिति में हाथ उछालते हैं, मिलाते हैं, इस बात को यों भी कह सकते हैं कि दोनों दल एक दूसरे को स्त्री-पुरुष के रूप में घोषित करते हैं। हाथ मिला कर या आलिंगन करके, जिप्सी लोग शादी करते हैं। यह प्रथा स्कॉट-लैण्ड में भी अब तक पाई जाती है। जिप्सी लोगों के पुरखे भी इसी प्रकार की शादियाँ करते थे। यह उत्सव आयरलैण्ड के लोगों से मिलता-जुलता है। वहाँ लोग एक दूसरे के हाथों को मिला कर एक वक्स के ऊपर, जिसमें कि

कुछ टीन के औजार रखे रहते हैं, उछलते हैं। इंग्लैण्ड और वेल्स में दंपति का एक झाड़ू से काम पड़ता है। फूलों के गुच्छे का झाड़ू विशेष रूप से भाग्यशाली माना जाता है। यदि उसमें कोई फली लगी हुई होती है तो वह और भी अच्छी बात मानी जाती है।

पहुँच जातीं, अपना आवरण नहीं हटातीं। वहाँ वे अपने को सुरक्षित समझती हैं। वहीं पर उनका पर्दा मुँह से हटाया जाता है। मैलेनेशिया में दुल्हिन जब घर को ले जाई जाती है तो वह बहुत-सी चटाइयों और पंखों से ढक दी जाती है ताकि उसके ऊपर अचानक ही कोई बुरी दृष्टि न पड़ जाये, जो उसे किसी प्रकार भद्दा न बना दे। मोन्टेनिग्रिन दुल्हिनों में इतना अधिक पर्दा होता है कि कभी-कभी दो दुल्हनें जा रही हों तो आपस में उनके बदल जाने का भय रहता है, जैसा कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के एक उपन्यास में मिलता है तथा कभी-कभी वे दुल्हनें बदल भी जाती है। उनके दूल्हे उन लड़कियों को पहले कभी नहीं देखते। यह कहा जाता है कि दो दल जो दूर से अपनी दुल्हिनों को लाते हैं उनको पहाड़ पर एक रात व्यतीत करनी पड़ती है। वे आपस में एक ही तम्बू में मिलती हैं और दोनों रात को साथ-साथ सोती हैं। प्रातः प्रत्येक दल गलत लड़की को अपने साथ ले जाता है; क्योंकि वे लड़कियाँ पहले कभी भी देखी नहीं जाती। कुछ दिन बाद इस त्रुटि की खोज की जाती है अर्थात् इस प्रकार की गलती का पता कुछ दिन बाद लगता है।

प्राचीन लोगों में शादी के उत्सव पर दुल्हन के लिये पर्दा बहुत आवश्यक हो जाता था। उनमें एक बहुत ही प्रसिद्ध कहावत थी कि आत्मा और जीवन को आकर्षित होने से बचाने के लिये मुँह और नथुने ही काम करते हैं अर्थात् मुँह और नथुनों के द्वारा ही जीवन को बचाया जा सकता है। इसी कारण मूडान में डरफर का सुल्तान सदैव अपने चेहरे को बुरी आत्माओं से बचाने के लिये खास-तौर से अपनी नाक और मुँह को बचाने के लिये ढका रखता था। बोर्नू और बाडिया के सुल्तान पर्दे के पीछे से बोलते हैं जबकि जेबू का राजा जोकि अफ्रीका के पश्चिमी कोने पर है किसी के द्वारा देखा नहीं गया। जो कोई भी बातें होती हैं वे पर्दे के पीछे से की जाती हैं। अरब के स्त्री और पुरुष दोनों ही अपने को बुरी आँखों से बचाने के लिये ढके रहते हैं। बाल्कन द्वीप में लोग कहते हैं कि मेरी आत्मा हमेशा नाक के अन्दर निवास करती है। उनकी बहिनें अगर पर्दा नहीं करती तो आश्चर्य माना जाता है, वे बुरी निगाह से बचाने के लिये अपने मुँह में कुछ टुकड़ा रख लेती हैं ताकि आगन्तुक उनकी ओर आकर्षित न हो सके और उनकी आत्मा को किसी में न डाल सके। कुछ घुमन्तू लोग जोकि सहारा के मध्य में निवास करते हैं अपयश करने के लिए पर्दा प्रयुक्त करते हैं। यद्यपि ब्यूरेग स्त्रियाँ पर्दा धारण नहीं करती और वे अपना प्रत्येक कार्य स्वतंत्रता के साथ

करती हैं, फिर भी पर्दा पुरुषों द्वारा किया जाता है। यह एक पतले कपड़े का शिरोवस्त्र होता है। इसे ये लोग अपने मुँह से इस प्रकार लपेटते हैं कि जिससे उनकी आँखें उनका मुँह और नथुने ढक जाते हैं। सिर्फ एक सकरी दरार-सी ऐसी छोड़ देते हैं जिससे कि आँखों द्वारा देखा जा सके। अगर एक बार पर्दा डाल दिया गया तो वह कभी भी अलग नहीं किया जा सकता है। ट्यूरेग व्यक्ति पर्दे को सोते समय, खाते समय, पीते समय और मरते समय तक धारण किये हुए रहते हैं। इसी को धारण करते हुए वे मृत्यु को प्राप्त होते हैं। अगर ट्यूरेग मानव अपने इस पर्दे को हटाना चाहता है तो बड़ी सावधानी के साथ देखता है और अपने नथुनों और मुँह को बड़ी सावधानी के साथ खुला छोड़ता है तथा ऐसा करना एक और ही महत्त्व रखता है। वास्तव में बुरी ताकतों से जिन्हें सहारा के और सूडान के व्यक्ति सशक्तों के नाम से जानते हैं, बड़ी बहादुरी के साथ रक्षा करते हैं। मनुष्यों के द्वारा एक रहस्यात्मक पर्दा प्रयोग में लाया जाता है। स्त्रियों के लिये ही अधिक स्वतन्त्रता महसूस की जाती है।

पर्दे के महत्त्व के साथ में एक बात यह छिपी रहती है कि उससे आन्तरिक बुराइयाँ छिप जाती है जोकि शरीर पर होती हैं। यह इसका धार्मिक महत्त्व है जो कि आज तक पाया जाता है। यहूदियों का कन्टोपा भी कुछ तरीकों से पर्दे के साथ जुड़ा हुआ है जिसके द्वारा तिजौरी ढकी जाती है। औरतों में पर्दा प्रथा बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है। प्राचीन ईसाई औरतें पर्दा हटाने के लिये चर्च में जाती हैं। इस रिवाज का एक प्रभाव यह है कि जब पुरुष अपने सिर से अपने टोप हटा लेते हैं तो स्त्रियाँ चर्च के अन्दर टोप धारण किये हुए रहती हैं। शताब्दियों से पर्दा स्त्रियों के सिर के ऊपर चला आ रहा है। स्पेन में आज भी काली पोशाक के साथ एक काला फीता जोकि पर्दानुमा होता है पहिना जाता है तथा यह पर्दा ही माना जाता है। यह ईश्वर के मन्दिर के अन्दर ही पहिना जाता है। इसी कारण स्पेन में शादी की पोशाक काली होती है तथा स्पेन में दुल्हन काली पोशाक ही धारण करती है। विधवा के लिये पर्दा अपना एक धार्मिक महत्त्व रखता है। यह मध्यकालीन युग से जब कि विधवा स्त्रियाँ अपने पति की मौत पर अपने को ढक लेती हैं, चला आ रहा है। यद्यपि वे तपस्विनी नहीं हो सकतीं, वे पर्दा ही प्रयोग में लाती हैं।

मुसलमान धर्म, स्त्रियों को पर्दा धारण करने को बाध्य करता है। कुरान में यह बताया गया है कि न तो यह कोई कानून से भरी हुई बात है और न

औरत को श्रेष्ठ ही है कि वह अपने को अन्य लोगों के सामने पति को छोड़कर बिना ढकी रह सके। तुर्किस्तान में सर्त लोगों में बिना पर्दे के स्त्रियाँ गली में बाहर नहीं जा सकतीं। यह पर्दा घोड़े के बालों का बुना जाता है और बुखारा में यह बड़ी मात्रा में बनाया जाता है। एक गहरे नीले और गहरे हरे रंग की पोशाक होती है जोकि खालत कहलाती है, इसकी तनियाँ पीछे की ओर जाकर बाँध दी जाती हैं, इस पर पर्दा डाल दिया जाता है जो कि पीछे की ओर से फँका जाता है। बुखारा की यहूदी स्त्रियाँ भी इस रीति को निभाती हैं और वे अपनी रक्षा के लिए इसे आवश्यक समझती हैं। मुसलमान कानून के अन्तर्गत औरत के लिए पर्दा ऊपर उठाने में मृत्यु समझी जाती है।

मिस्र की स्त्रियाँ भी पर्दा धारण करती हैं। वे सफेद पोशाक से जो कि सिर से लेकर पैर तक पहुँचती है अपने शरीर को ढके रहती हैं। इस पोशाक में सिर्फ आँखें ही खुली रहती है। कभी-कभी मुर्दा जलाने के समय मिस्र की स्त्रियाँ अपने पर्दे को फाड़ देती हैं और अपनी पोशाक को भी नष्ट कर देती हैं। इस रिवाज का जिक्र बाईबल में भी पाया जाता है। गरीब व्यक्तियों में कभी-कभी यह प्रथा आर्थिक स्थिति के कारण तोड़ दी जाती है। फिर भी मिस्री किसानों की औरतें, जब उनकी शक्लें ढकी रहती हैं, प्रसन्न रहती हैं।

फारसी स्त्रियाँ जब बाहर जाती हैं, तो एक काला लम्बा चोगा सिर से लेकर पैर तक धारण करती हैं या एक चादर ओढ़ती हैं जो एक सफेद रेशमी चादर से ढका रहता है। इस देश की स्त्रियाँ बहुत ही रुढ़िवादी हैं, और मृतक तथा बुरी आत्माओं में पक्का विश्वास रखती हैं। वे इन आत्माओं के प्रभाव से बचने के लिये अनेकों ही ताबीज और अन्य चीज धारण किये रहती हैं। लेकिन ये विश्वास पर्दे से बहुत कम सम्बन्धित हैं।

टर्की में यह बहुत आवश्यक है कि स्त्रियाँ पर्दा धारण करें। इस्लाम के कानून के अनुसार एक व्यक्ति चार औरतों से शादी कर सकता है और अनेकों ही वेश्याओं से सम्बन्ध रख सकता है। लेकिन तुर्क लोगों में चाहे वह गरीब है और चाहे वह धनवान है एक स्त्री से अधिक नहीं रख सकता। इसका एक मुख्य कारण यह है कि इतनी औरतों का खर्च चलाना बड़ा कठिन पड़ता है। प्रत्येक तुर्क का घर दो भागों में विभक्त रहता है, एक हरमलिक, दूसरा इसासलामालिक। पहला स्त्रियों के लिये दूसरा पुरुषों के काम आता है। हरम के अन्दर प्रवेश करने के नियम बड़े

कठोर नियम हैं। पति तक के लिए ये नियम बड़े कठोर हैं। अगर वह घर के दरवाजे पर जूते उतरे हुए देखता है तो वह घर में प्रवेश नहीं कर सकता। जब स्त्रियाँ बाहर जाती हैं तो वे पर्देनुमा एक ढीली घुटनों तक पहुँचती पोशाक पहनती हैं। इन पोशाकों और सामानों का बनवाना पुरुष के ऊपर निर्भर रहता है। अगर वह धनवान है तो अच्छी चीजें बनवायेगा और गरीब अपनी औकात के अनुसार बनवायेगा। लेकिन यह पर्दा दो रेशम के टुकड़ों के द्वारा बनाया जाता है, जोकि एक टोपी से जुड़े रहते हैं और यह ही नाक के नीचे के हिस्से तक पहुँचते हैं।

मुसलमान औरते हरमलिक की दीवारों के भीतर ही अपनी जिन्दगी व्यतीत करती हैं। टर्की की औरतें मुसलमान कानून का बड़ी आजादी के साथ उपयोग करती हैं और अपनी स्वयं की सम्पत्ति रखती हैं। तलाक के सम्बन्ध में वे बड़ी स्वतंत्रता रखती हैं। अधिक औरतें यशमाक और फरीज पहिनकर इस सुविधा से लाभ उठाती हैं। यह स्मरणीय बात है कि पूर्व में जहाँ ईसाई, मुसलमान, यहूदी मिलकर रहते हैं, वहाँ अगर कोई औरत बिना पर्दा के रहती है तो वह बेइज्जती की तरफ से सुरक्षित नहीं मानी जाती। लेकिन अंगरखा और पर्दा धारण करने से वे अपने प्राकृतिक आकर्षण को बचा लेती है। इस अंगरखे को धारण करके अपने को सुरक्षित समझती है। बहुत-सी बालकन द्वीप की ईसाई औरतें और एशिया माइनर की औरतें इन्हीं इस्लामिक आदतों को अपने में पाले हुये हैं। अलबेनिया में रोमन कैथोलिक लड़कियाँ बड़ी सावधानी से घरों में छिपाकर रखी जाती है और अगर वे बाहर जाती है तो पर्दा धारण करके जाती हैं। अफगानिस्तान के उन्नतिशील और जवान व्यक्ति ऊपनी औरतों को पर्दे के सम्बन्ध में बड़ी स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं। ऐसा माना जाता है कि यह आन्दोलन प्रगतिशील अमानुल्ला की अवनति के बाद प्रारम्भ हुआ।

टर्की में परिस्थिति कुछ भिन्न ही प्रकार की है। खलीफा की अवनति के साथ एक धार्मिक कारण-वश औरतें घरों में छिपाली जाती थीं। कमाल पाशा ने औरतों के लिये अधिक स्वतंत्रता प्रदान की। उसकी बेटी मनुष्यों की भीड़ में बिना पर्दा के जाती थी। एशियाई टर्की में औरतों के बारे में कुछ तरक्की अवश्य हुई। ये राज्य धीरे-धीरे अधिक सभ्य होते चले जा रहे हैं। शताब्दियों से चली आई आदत और रिवाज एक दिन में समाप्त नहीं हो सकते।

स्वतंत्रता के लिये नवीन लड़ाई (जोकि राष्ट्रीय विचारों से भरी हुई है) ब्रिटिश भारत में हिन्दू और मुसलमान औरतों में आई है जिन्होंने किन्हीं मामलों में पर्दे को बिलकुल त्याग दिया है तथा साथ में घरों की चहार-दीवारी के अन्दर रहना भी त्याग दिया है । आज औरतें 'जनाना' और हरमलिक में नहीं रहतीं । फिर भी अधिकतर संख्या इस बात को स्वीकार नहीं कर रही है और हरम में तथा जनाने में औरतें रहती है । उत्तरी मुसलमानों में, प्रत्येक स्त्री गोशा के नियमों का पालन करती है, गोशा के नियमों को तोड़ना एक अपमान ही नहीं है बल्कि यह तलाक के लिये काफी पश्चात्ताप है । अच्छी स्थिति की मुसलमान औरत का चित्र लिया जा सकता है । वह गोश्य के नियम भंग को स्वीकार करती है, पुरानी परम्परा के अनुसार वह अपने पति द्वारा त्याग करने योग्य मानी जाती है क्योंकि उसका चित्र एक अजनबी आदमी द्वारा ले लिया जाता है । भारत में स्त्रियों के लिये घर के अन्दर रहने के नियम टर्की के लोगों के बजाय बड़ ही कठोर हैं ।

भारत में पर्दे में रहने वाली औरत घर से पैदल बाहर नहीं जा सकती । वह बड़ा भारी पर्दा धारण करती है और वह जिस गाड़ी में बैठकर जाती है वह भी पर्दा द्वारा बड़ी सावधानी से बन्द करदी जाती है । उस गाड़ी के चारों ओर बड़े ही भारी पर्दे लगे रहते हैं । उत्तर भारत के हिन्दुओं की स्त्रियाँ जनाने के अन्दर रहती हैं लेकिन दक्षिणी भारत में चहार-दीवारी के अन्दर बन्द रहना इतना अधिक नहीं माना जाता । हिन्दू स्त्रियाँ आम जनता में खुले रूप से नहीं जातीं । दक्षिण भारत के राजा और राजकुमारों की स्त्रियाँ सामाजिक उत्सव पर पारदर्शी पर्दों के पीछे बैठकर भाग लेती हैं और उनका प्रबन्ध बहुत ही महत्त्वपूर्ण ढंग से किया जाता है । उत्तर में हिन्दू स्त्रियाँ भी इतनी ही धार्मिकता को मानती हैं जितनी उनकी मुसलमान बहिनें ।

पर्दे का रहस्य, शादी की धार्मिकता, बुरी निगाह तथा औरत को एकान्त में रखने से सम्बन्धित है । इसमें कोई संदेह नहीं कि अब तक पूर्वी आँखें पर्दे की आदत का स्वागत करती रही हैं । लेकिन समय के परिवर्तन तथा सभ्यता के विकास से जिन्दगी की एकान्तता और यह आदत निकलती जा रही है । सभ्यता के विकास की आवश्यकता के साथ इस रिवाज में परिवर्तन आता जा रहा है ।

प्राचीन लोगों के लिए भी पर्दों का काफी महत्त्व औरत को बाहरी खतरों से बचाने के लिये रहा है । धार्मिकता की दृष्टि से ईसाई और मुसलमान लोगों में पर्दे का महत्त्व उनके जीवन के विश्वासों से जुड़ा हुआ है ।

हमारे मत में स्त्री पर पर्दा पितृसत्ता के कारण लागू हुआ । भारत में राक्षसों में पर्दा चलता था । वे स्त्री का सामग्रीवत् अपहरण करते थे । पुरुषों में पर्दा प्रारम्भ हुआ जब संभवतः वे मुँह ढककर स्त्रियाँ लूटने लगे थे, ताकि पहचाने न जायें । बाद में पितृसत्ता के विकास से पुरुषों का पर्दा हट गया, परन्तु स्त्रियों पर लागू रहा । प्राचीन आर्यों में पर्दा नहीं के बराबर था । भारतीय अनार्यों से पर्दा आर्यों में घुस गया । राक्षस 'इच्छारूप' कहलाते हैं । कथकलि नृत्य में जैसा मास्क (चेहरा) मुँह पर लगाते हैं, वह राक्षस संस्कृति में प्रचलित था । संभवतः मुख पर 'चेहरा' चढ़ाना भी मुँह छिपाकर आक्रमण करने का ही एक बहाना था । जहाँ मातृसत्ता का जोर अब भी ज्यादा है, वहाँ पर्दा नहीं पाया जाता ।

यौन-जीवन का पृथक्करण

दुनियाँ के पूर्वी हिस्से में जहाँ आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियाँ स्वीकृति प्रदान करती है, वहाँ स्त्रियाँ अपना जीवन एकान्त में रहकर व्यतीत करती हैं तथा जिन सामाजिक कार्यों में मनुष्य भाग ले रहे होते हैं उनमें स्त्रियाँ भाग नहीं ले सकती। घर के अन्दर यह यौन-जीवन की भिन्नता काफी बढ़ जाती है। एक साधारण नियम के अनुसार स्त्रियाँ घर में पति के निवास भाग में प्रवेश नहीं कर सकतीं तथा वह घर की सवेदनाओं में भाग नहीं ले सकती। स्त्री अपने हिस्से में ही अपना कार्य कर सकती है, जिस समय कि उसका पति घर के दूसरे हिस्से में अपने मित्रों का स्वागत कर रहा हो। स्त्रियों के हिस्से में कोई भी पुरुष अतिथि आमंत्रित नहीं किया जा सकता।

यौन-पृथक्करण के कारण पूर्वी लोग अपनी औरतों को पदों के भीतर रखते हैं तथा वे आम जनता में बिना घूँघट के नहीं जा सकतीं। कुछ मुसलमान जातियाँ कहती हैं कि औरतें आत्मा ही नहीं रखतीं, उन्हें इसीलिये प्रत्येक कार्य से अलग रखा जाता है। मगर जिन कारणों से स्त्री और पुरुषों को अलग-अलग रखा जाता है, उनमें एक बहुत बड़ी सीमा तक सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक तथ्यों का समावेश होता है।

हरम की एकान्तता का प्रभाव पूर्वी कहानी कहने वालों के दिमाग पर भी देखा जाता है। पश्चिमी लेखकों के लिए यह बहुत अधिक आश्चर्यजनक है, क्योंकि स्त्री-पुरुष अनेकों ही प्रश्नों में यहाँ एक दूसरे से अलग रहते हैं। कुछ दूसरे रूपों में यह रिवाज संसार के अन्य हिस्सों में भी पाया जाता है। कुछ देशों में कुछ समय के लिये ही, मौसम के लिए ही पृथक्करण पाया जाता है। आरम्भिक और मध्यकालीन चर्च में औरतों की स्थिति पुरुषों के साथ एक

आधीन सेवक के रूप में पाई जाती थी। इसके बाद उनकी स्थिति दिन पर दिन गिरती चली गई।

कुछ मामलों में स्त्री पुरुष का अलग-अलग होना बहुत ही स्पष्ट रूप से पाया जाता है। अधिक स्त्रियों से शादी करने के रिवाजों में प्रत्येक के लिए अलग-अलग सुविधायें नहीं जुटाई जा सकतीं। जूल-कराल में प्रत्येक औरत अपनी अलग झोंपड़ी में रहती है और उसी में अपने परिवार को रखती है। पुरुष अपनी दूसरी झोंपड़ी रखता है। इस प्रकार स्त्री और पुरुष के अलग-अलग रहने का प्रबन्ध अन्य जातियों में भी पाया जाता है। मसाई जाति में वीर पुरुष जब तक उनकी शादी नहीं हो जाती घर के अन्दर अलग-अलग रहते हैं। यह साधारण टैबू माना जाता है कि वे औरत के विरुद्ध रहकर युद्ध की तैयारियाँ स्वतंत्रतापूर्वक करते हैं। लड़ाकू लोग अपनी मर्जी के अनुकूल स्त्रियाँ देखने के लिए जाते हैं। वे इस मामले में सबसे अलग रहते हैं।

स्त्री पुरुषों का अलग-अलग रहना कुछ आवश्यक बातों की बड़ी सख्ती के साथ पूर्ति करता है। इस प्रकार की बातें न्यूगिनी और मैलेनेरिया में पाई जाती हैं। वहाँ पुरुषों के लिये अलग मकान बनाये जाते हैं तथा कुआरे लोगों के लिये अलग क्लब पाये जाते हैं। वहाँ पर सामाजिक कार्यों के लिए ही एकत्रित होते हैं। यही स्थान उन लोगों का एकत्रित होने का होता है तथा वहीं वे लोग रहते हैं, और वहीं वे सोते हैं तथा वहाँ स्त्रियाँ प्रवेश नहीं कर सकतीं। फिजी द्वीप में शादी-शुदा व्यक्ति को स्वतन्त्रता के साथ घर में नहीं सोना चाहिये। वे लोग दो व्यक्तियों वाला मकान तैयार करते हैं। कोरोलिन में एक घर पुरुषों के सोने के लिए और एक घर स्त्रियों के सोने के लिए बनाया जाता है। सैण्डविच द्वीप में स्त्री और पुरुषों के सोने के लिए, खाने के लिए अलग-अलग घर बनाये जाते हैं। जिस आयु पर स्त्री और पुरुष अलग-अलग रहते हैं इस उम्र पर पुरुष क्लबों के अन्दर प्रवेश पाता है। न्यूहेब्रिडीज में सैंक्सों को जन्म से ही अलग कर दिया जाता है और यहाँ पर एक दूसरे का भेद बहुत गहराई के साथ देखा जाता है। यह उस स्तर को दिखाता है जब कि एक ही कुटुम्ब के अन्दर स्त्री पुरुष को अलग किया जाता है। अगर पुरुष अपने पिता के यहाँ खाना खाने के लिए आता है और अगर उसकी बहिन घर के अन्दर है तो वह खाना नहीं खा सकता। अगर उसकी माता उसके लिए खाना लाती है तो वह उस लड़के के हाथ में खाना नहीं देगी, बल्कि उसे जमीन पर उसके पैरों के सामने रख देगी, और वह उसको खाने के लिए कुछ दूरी से

कहेगी। अगर उसकी बहिन उसे रास्ते में मिल जाती है तो उसकी बहिन वहाँ से तुरन्त भाग जायेगी और छिप जायेगी। अगर वह लड़का उसके पैरों के चिह्न जमीन पर देखता है तो वह पीछे की ओर मुड़ जायेगा।

पौलिनेशिया में टैबू इतना सख्त है कि वह स्त्री और पुरुषों के बीच एक बहुत मजबूत खाड़ी पैदा कर देता है। वे कभी भी साथ-साथ भोजन नहीं कर सकते और न अग्नि की तरफ अपने बच्चों के साथ खेल ही सकते हैं। जिस अग्नि पर पुरुष ने खाना पकाया है उस पर स्त्रियाँ खाना नहीं पकातीं। सबसे अधिक दुःख जो कि पुरुष के ऊपर डाला जाता है वह यह है कि क्या वह अपनी माता के लिए पानी ले जाने के लिये बोतल धो सकता है या क्या वह अपनी माता के लिए खाना बना सकता है? इस प्रकार ऐसे अनेक भार पुरुषों पर डाले जाते हैं। जुन्नू स्त्रियाँ अपने पति का नाम नहीं ले सकती। वे उसे पिता या और कुछ मिलता जुलता शब्द कह कर पुकारती हैं। स्त्री-पुरुष का अलग-अलग रहना पूरी जिन्दगी तक रह सकता है। मिस्त्री स्त्री-पुरुष दोनों साथ-साथ जाते हैं तो उनको गुम्बद के अन्दर अलग-अलग दीवाल खड़ी करके अलग कर दिया जाता है। कुछ मुसलमान धर्मशास्त्रियों के अनुसार स्वर्ग में स्त्रियों के लिए कोई स्थान नहीं होता।

स्त्रियाँ पुरुषों के क्लब घरों से, गुप्त समाजों से, नाच तथा अन्य आनन्द के साधनों से अलग रखी जाती हैं। पश्चिमी अफ्रीका में बहुत-सी समाज व्यवस्थायें गुप्त रखी जाती हैं और औरतें इन सबसे वंचित रहती हैं। दूसरी ओर पश्चिमी अफ्रीका में स्त्रियाँ अपना गुप्त समाज रखती हैं जिनमें पुरुष कतई प्रवेश नहीं कर सकते। इस्लाम, भारत, चीन, मैलेनेशिया और आस्ट्रेलिया में स्त्री पुरुषों को अलग रखने में एक बात प्रमुख महत्त्व रखती है। यह बात उनकी निम्न स्थिति की ओर संकेत करती है। कुछ समाजों में स्त्रियों को शिकार खेलने तथा मछली पकड़ने से अलग रखा जाता है और स्त्री पुरुषों की दिलचस्पी के लिये कुछ अलग-अलग प्रबन्ध किये जाते हैं।

जो समाज कम सभ्य हैं, उनके अन्दर स्त्री और पुरुषों के कार्यों में भी बहुत अन्तर है। प्रत्येक सैक्स एक दूसरे के कार्य में तथा पेशे में भाग लेने में अनिच्छा प्रकट करता है। खेती जो खास तौर से स्त्रियों का पेशा है सबसे पुरानी स्टेजों से उन्हीं से सम्बन्ध रखता है और पशुओं की देखभाल का कार्य पुरुषों से सम्बन्ध रखता है। अफ्रीका की बान्तू जाति में कोई भी औरत पुरुषों के पशुओं को छू नहीं सकती और न कोई पुरुष स्त्रियों से सम्बन्ध रखने

वाले औजार को प्रयोग में ला सकता है। वास्तव में खेती औरतों से ही सम्बन्ध रखती है। हमारे मत में स्त्रियों ने जब खेती का युग आया और पुरुष पर धीरे-धीरे सब जिम्मेदारी डाल दी, तब पुरुष ने काम करते-करते सत्ता हथिया ली और मातृसत्ताक युग की स्वामिनी उसके आधीन हो गई। बान्तू स्त्रियाँ बागों में काम करती हैं। पूर्व में स्त्रियाँ खेतों को जोतती हैं। यह रिवाज शायद ईसा से १२०० साल पुराना है। मिट्टी के बर्तनों से (जोकि पैलेस्टाइन में अभी पाये गये हैं) और ग्रीस तथा रोम में गुप्त धार्मिक बातों से पुरुषों को अलग रखा जाता था। पुरुष इन कार्यों में भाग नहीं ले सकते थे। इस प्रकार का भेद स्त्री-पुरुषों में आर्थिक परिस्थिति के कारण भी है और इसमें धार्मिक टैबू भी काम करता है।

कुछ धार्मिक मामले जिसमें पुरुष खास तौर से स्त्रियों से सम्बन्ध रखते हैं बहुत महत्त्व के हैं। आस्ट्रेलिया की कुछ जातियों में भी स्त्री पवित्र बैल के ऊपर निगाह नहीं डाल सकती तथा मारक्यूसेस में जहाँ पवित्र नाच हो रहे होते हैं वहाँ स्त्रियाँ प्रवेश नहीं कर सकतीं तथा स्त्रियों की वहाँ तक कोई पहुँच नहीं सकती। अगर कोई औरत किसी पेड़ की छाया के नीचे अपना पैर रखती है तो उसको मृत्यु का दण्ड दिया जाता है। जिन्दगी के विवादात्मक समयों में स्त्री और पुरुष जो कि नौ-सिखिए होते थे उनको दूसरे सैक्सों के साथ से अलग रखा जाता था। उनके मिलने पर ही रोक नहीं लगाई जाती बल्कि दूसरे सैक्सों को देखने पर भी रोक लगाई जाती थी। इसलिए वे झाड़ियों के अन्दर ले जाई जाती थीं। उनको वहाँ पर जब तक उनकी शिक्षा का तथा अन्य तैयारियों का समय रहता है रखा जाता था। न्यूहैंब्रिडीज में अगर कोई औरत अचानक भी किसी नये लड़के को देख लेती है तो उसे जिन्दा ही गाड़ दिया जाता है। पौलेनेशिया में पति-पत्नी साथ-साथ खाना नहीं खा सकते। स्त्री-पुरुष साथ-साथ भोजन नहीं कर सकते। यह रिवाज बालकन द्वीप के अन्दर भी पाया जाता है। अलबेनिया में पुरुष अलग भोजन करते हैं। मगर एशिया में स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ भोजन कर सकती हैं। इसी प्रकार की रुकावट की एक स्मरणीय बात ब्रेनडिनवर्ग के अन्दर पायी जाती है। वहाँ पर एक विश्वास प्रचलित है कि अगर स्त्री और पुरुष या प्रेमी और प्रेमिका एक साथ या एक ही तश्तरी में खाना खाते हैं तो वे अवश्य लड़ेंगे। दक्षिण भारतीय आर्यंगारों में पति पहले खाता था और उसके चले जाने पर उसकी झूठी थाली में *परोस कर उसकी पत्नी बाद में खाती थी। भारत के अनेक भागों में यह रिवाज प्रचलित है कि स्त्री घर के सभी व्यक्तियों

को भोजन कराने के बाद ही भोजन करती है। भारत में शादी ब्याह तथा धार्मिक कार्यों की दावतों में पुरुष ही खाना बनाते हैं, स्त्रियाँ नहीं। मातृसत्ता में मासिक धर्म के प्रति आश्चर्य प्रगट किया जाता था। पितृसत्ता में इसे एक ब्रह्महत्या का पाप माना गया। इसी के कारण स्त्री को अशुद्ध माना जाने लगा।

कुछ व्यक्ति स्त्री के द्वारा बना हुआ भोजन ही नहीं खाते। यह बात यौन दिक्कतों के कारण संसार में बहुत अधिक फैली हुई है। रूढ़िवादी भारतीयों के अन्दर मासिक धर्म से बैठी हुई औरत अपना भोजन अलग पकाती है। ऐसी औरत के हाथ से पका हुआ भोजन किसी भी पुरुष के द्वारा नहीं खाया जाता तथा ऐसी औरत के हाथ के भोजन को कोई स्वीकार नहीं करता। खाना जो कि खास तौर से औरतों से सम्बन्धित है या घरेलू जानवरों से सम्बन्धित है टैबू माना जाता है अर्थात् भोजन टैबू पर निर्भर करता है।

यह एक साधारण रिवाज है कि मासिक धर्म से रहने वाली औरतों के लिए एक अलग झोंपड़ी बना दी जाती है और जब बच्चा पैदा होता है तो उस समय औरत अपनी जाति के सैक्सों से घिरी रहती है। वहाँ पर उस समय पुरुष प्रवेश नहीं कर सकता। वह कुछ निश्चित समय के लिए अस्वच्छ रहती है। अनेक स्थानों पर ऐसा भी नियम है कि पुरुष नवजात शिशु को चार दिन से पूर्व नहीं देख सकता।

असभ्य और कम सभ्य लोगों के विचार में स्त्रियों के प्रति एक बहुत भयानक डर भरा हुआ है। वे लोग स्त्रियों का मासिक धर्म का होना एक रहस्यमय बात समझते थे। स्त्री खतरनाक है इसलिये पुरुषों के कार्यों में सहायता करने से अलग रखी गई है। खास तौर से पवित्र कार्यों में। जहाँ तक संभव हो सकता है पवित्र वेलाओं से स्त्रियों को दूर रखा जाता है। यह खास-तौर से आर्थिक और सामाजिक कारणों में से एक हो सकता है। इन रिवाजों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये सब भय के कारण बन गये हैं।

दूसरी ओर जहाँ तक इन अभ्यासों को हटाने में मानवशास्त्री और अन्वेषकों का ज्ञान पहुँचता है वहाँ तक हम स्त्री के विषय में कम ज्ञान रखते हैं। हम औरतों के रहस्य के बारे में कम जानते हैं। औरतें भी परस्पर आधीनता के विचार से मना नहीं कर सकतीं। यह हमको पवित्र वेला के

वर्णनों के उल्लेखों से ज्ञात होता है। पूर्व में पुरुष रात्रि को अपनी औरतों से मिल सकते हैं, दिन में वे उनसे लगभग अलग-से ही रहते हैं।

मगर अब युग बदल रहा है और संसार के अनेक देशों में निवास करने वाली अनेक जातियों में से स्त्री के प्रति ये कठोर विचार पुरुषों के मस्तिष्क से निकलते जा रहे हैं।

काउवेड का अर्थ

मानव-शास्त्रियों को शायद कोई भी रिवाज इतना कल्पना-रंजित प्रतीत नहीं हुआ जितना कि यह ! इसमें मनुष्य कुछ समय के लिए बहुत हँसता है। यह शब्द फ्रेंच भाषा के काउवर शब्द से लिया गया है। लेकिन शायद यह रिवाज फ्रान्स में कभी भी मौजूद नहीं था।

दुनिया के असभ्य लोगों में यह पीढ़ियों से चला आ रहा है। संसार के बहुत से हिस्सों में यह ज्ञात है। इसमें बच्चा पैदा होने के समय पिता अपने बिस्तरे को ले जाता है तथा अपने खाने और व्यवहार में अनेकों ही व्याघात स्वीकार करता है। दक्षिणी अमरीका, केलिफोर्नियन इण्डियन, दक्षिणी भारत मलावार, निकोबार और बोर्नियो में यह प्रथा इस रूप में प्रकारांतर से पाई जाती है।

प्राचीन लोगों के अन्दर यह विश्वास प्रचलित था कि माता और पिता के चरित्र का प्रभाव, बच्चे पर बच्चे के पैदा होने के बाद पड़ता है। मान लो, पिता या माता किसी विशेष जानवर का गोشت खाते हैं तो समझा जाता था कि उस जानवर के स्वभाव की विशेषताएँ उस बच्चे के स्वभाव में निश्चय ही प्रगट होंगी। जैसा माता-पिता का चरित्र होगा वैसा ही बच्चे का चरित्र बन जायेगा। जैसा माँ-बाप खायेंगे वैसा ही बच्चे पर प्रभाव पड़ेगा। जैसा कि उदाहरण के लिए होटनटोट यह विश्वास करते हैं कि अगर गर्भ धारण की हुई स्त्री शेर का गोشت या तेंदुए का गोشت खाती है तो बालक में इन जानवरों जैसी वीरता और हिम्मत और शक्ति आ जायेगी। माता के भोजन का प्रभाव पेट के बच्चे पर पड़ता है। गर्भधान के बीच माता जैसा आचरण करती है, जन्म होने के बाद बालक वैसा ही आचरण करता है। भारतीयों में भी यही विश्वास

अब तक काम कर रहा है। हमारे यहाँ यह माना जाता है कि गर्भाधान में स्त्री को जैसी-जैसी बातें सिखाई जाती हैं बालक भी वैसा ही बनता है। इस सम्बन्ध में अभिमन्यु का उदाहरण भारतीय साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है। विश्वास था कि स्त्रियों के वातावरण के प्रभाव के अनुकूल ही बालक पर भी वैसा ही प्रभाव पड़ता है।

माँ-बाप और बच्चे के बीच एक आत्मिक सम्बन्ध स्थापित होता है। इसमें आपसी सम्बन्ध का विचार मजबूत होता है। यह असभ्य युग के दर्शन से सम्बन्धित है। अण्डमन द्वीप के निवासियों में एक गर्भधारण की हुई औरत को सूअर, कछुए का माँस नहीं खाना चाहिये ? क्योंकि इनका गोश्त बच्चों के लिए लाभकारी नहीं माना जाता और यह समझा जाता है कि इस प्रकार के गोश्त के प्रभाव से बच्चे का स्वभाव चंचल हो जाता है। मलाया में औरत को अस्वच्छ मानते हैं तथा बच्चा होने के चालीस दिन तक उसे अस्वच्छ माना जाता है। यही नियम पति पर भी लागू होता है। वह इस निश्चित समय के बीच में अपनी दाढ़ी और सिर के बाल साफ नहीं कर सकता तथा वह शिकार भी नहीं कर सकता।

काउवेड का सबसे अच्छा उदाहरण गिनी के भारतीयों में पाया जाता है। वहाँ बच्चा होने के कुछ समय पूर्व स्त्री अन्य स्त्रियों के साथ जंगल में चली जाती है और वहीं बच्चे को जन्म देती है। वह वहाँ अपने को जल व अग्नि के द्वारा पवित्र करती है और एक या दो घंटे बाद वहाँ से उठकर अपने पति के घर वापिस आ जाती है। लेकिन बाप उसे झूले वाली खाट पर ले जाता है और इसकी सेवा चाकरी के लिए मना कर देता है। वह स्वयं हुक्का नहीं पी सकता तथा अपनी सफाई नहीं कर सकता। औरतें एक प्रकार का उत्सव मनाते हुए उसे स्वच्छ करती हैं। इस सफाई के लिए कुछ हफ्तों या कुछ दिन अलग से निश्चय कर लिए जाते हैं। ब्राजील में पेन्स में पुरुष अपने को काले रँग से रँगता है और अपने घर में जब तक बच्चे का नार नहीं गिर जाता तब तक वह उपवास करता रहता है।

केबिल्स और कैलिफोर्निया के इन्डियनों में पुरुष अपनी औरत के पास जब तक उसका बच्चा पैदा नहीं हो जाता तथा उसकी शक्ति लौट नहीं आती, रहता है।

दक्षिणी भारत में जब स्त्री यह समझती है कि उसके अब बच्चा होने वाला है और कुछ घंटे ही शेष हैं तो वह अपने पति से कह देती है। पति स्वयं

को अपनी स्त्री की पोशाक में सजाता है तथा अपने माथे पर स्त्री की योनि का चिन्ह रँगों द्वारा काढ़ता है और किसी अंधेरे कमरे में चला जाता है जहाँ पर वह अपना बिस्तर भी ले जाता है। जैसे ही बच्चा पैदा होता है वह साफ किया जाता है और उसे पिता की बगल में ले जाकर सुला दिया जाता है। बाप उस समय दवाओं द्वारा नशे में रहता है। जब अस्वच्छता का समय व्यतीत होता है तो पुरुष के साथ, ऐसे मौकों पर जो विधान स्त्रियों के साथ लागू होता है, वही लागू किया जाता है—अर्थात् ऐसे मौके पर जैसा व्यवहार एक स्त्री के साथ किया जाता है वैसा ही उस पुरुष के साथ किया जाता है।

जिन लोगों ने प्राचीन लोगों के रिवाजों का अध्ययन किया है उन्होंने काउवेड के रिवाज के दो रूप बताये हैं। पहिली बात यह है कि माँ-बाप को कुछ विशेष प्रकार के भोजनों से तथा कार्यों से दूर रखना चाहिए ताकि बच्चे पर पैदा होने के पहले और पीछे कोई असर न पड़े। एक कैरिब बाप जब एक बच्चे का जन्म नहीं हो जाता, तब तक समुद्री गाय का गोشت नहीं खाता। वह अन्य लोगों के साथ सहानुभूति-पूर्ण संबन्ध स्थापित करता है। कभी-कभी यह स्नेह दूर तक फैलता है। चिरोगोन्स के पिता के अतिरिक्त बच्चों को भी जब तक कि नया बच्चा पैदा न हो जाये व्रत रखना पड़ता है।

काउवेड प्रथा की दूसरी किस्म यह है कि पुरुष को स्त्री के साथ स्थानापन्न के रूप में लगा देना चाहिये। पिता के द्वारा माता के से कार्य कराने का स्वाँग ही इस प्रथा की विशेषता है। जन्म देने का समय एक आपत्ति है। विशेष रूप से बुरी आत्माओं का डर रहता है। समझा जाता है कि माता और बच्चे को नुकसान पहुँचाने के लिये वे पड़ी रहती हैं। असभ्य पुरुष ऐसे समय में अपनी स्त्री व बच्चे की रक्षा के कार्यों में दत्तचित्त होकर लग जाता है। पुरुष अपने ऊपर यह जिम्मेदारी लेता है कि वह न दिखने वाली बुराइयों से उनकी रक्षा करेगा। अगर वह घर की स्त्री की भाँति कार्य करता है, उसकी स्त्री अपनी ओर से अपना ध्यान खींच लेती है तो वह सोचता है कि बुरी आत्मायें और शक्तियाँ उसको धोखा देंगी और अपने ऊपर ही उसे केन्द्रित कर लेंगी।

इस प्रकार की अन्य प्रथाएँ भी प्रचलित हैं। पूर्वी मध्य अफ्रीका की जातियों में अन्य औरते माता होने का झूठा बहाना करती हैं और स्वयं को सजाती हैं, इसीलिए कि वे आत्माओं को धोखा दे सकें। वाटुबेला द्वीप में जब स्त्री बच्चे को जन्म देती है तो उस स्त्री के नीचे उसके पति की पोशाक रखदी जाती है। मध्य आस्ट्रेलिया में कुछ परिस्थितियों में पति की कौधनी स्त्री की छाती

पर कसकर बाँध दी जाती है और पति स्त्री के तम्बू में घूमता रहता है कि बालक उसी के अनुकूल आचरण करे। मैक्सिको में स्त्रियों की कलाइयों पर एक चमड़े का कंगन कस दिया जाता है और यह सोचा जाता है कि वह औरतों को जानवरों की-सी हिम्मत प्रदान करेगा। चीन में पिता का पाजामा जन्म देने वाले कमरे में लटका दिया जाता था और यह समझा जाता था कि बुरी आत्मायें बच्चे के बजाय उस पाजामे पर प्रभाव डालेंगी। ऐसा विश्वास करने वाले लोगों को बुरी आत्माओं का प्रभाव दिखाकर खूब ठगा और मूर्ख बनाया जाता था। कभी-कभी बावर द्वीप के माता-पिता पहले बच्चे के जन्म होने के समय स्वयं को परिवर्तित कर लेते थे तथा कुछ जातियों में माँ-बाप पहले बच्चे को जन्म देने के बाद बुरी आत्माओं को धोखा देने के लिए आवाज देते थे।

भोजन संबंधी टैबू की बुराइयाँ लोगों में उनके बच्चों के जन्म होने के पहले विशेष स्थान पाती है। डाक्स बच्चा होने के पिछले माह से ही भोजन की बातचीत अधिक बढ़ जाती है। जब तक कि बच्चा जन्म नहीं लेता मा-बाप में से कोई अग्नि के पास नहीं जा सकता। जब तक बच्चा जन्म नहीं लेता तो वे लोग फल तक नहीं खाते, वे लकड़ी में, जब तक बच्चा पैदा नहीं हो जाता, छेद नहीं करते, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि ऐसा करने से बच्चा अन्धा हो जायेगा और न वे लोग गहरे जल में ही बच्चा पैदा होने से पहिले स्नान करते हैं। न्यूगिनी में पिता ऐसे जानवरों के गोشت खाने से बचते हैं जिसमें कि दाँत लगाना पड़ता हो; क्योंकि बच्चा बाद में ऐसे ही दाँत वाला पैदा होगा।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार की बातें असभ्य लोगों के दिमाग में काफी प्रभाव जमाये हुई थी और इनका कोई अन्त नहीं था। इन पर तो लोकोक्तियाँ बन चुकी हैं जैसे—“मुझे बताओ कोई व्यक्ति क्या खाता है और मैं तुमको बताऊँगा कि वह कैसा है।”

कुछ प्राचीन रूढ़ियाँ बच्चे के जन्म लेने के सम्बन्ध में आज तक बची हुई हैं। ये बातें बच्चे के जन्म के समय पर अच्छी मानी जाती हैं। बच्चे के जन्म पर कुछ तो बड़ी ही भाग्यशाली और सुन्दर मानी जाती हैं। रविवार का दिन बच्चा पैदा होने के लिए बड़ा ही भाग्यशाली दिन माना जाता है।

इस दिन के बारे में ऐसा विश्वास किया जाता है कि उस बच्चे पर दुष्टात्मायें प्रभाव नहीं डाल सकतीं। जर्मनी में यह विश्वास किया जाता है

भूमिका : रिवाज, लोकाचार और रूढ़ि

(Customs, Folkways, Mores)

आज तक मनुष्य के विकास सम्बन्धी विषय पर अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है। विशेषज्ञों ने बड़ी-बड़ी क्रान्तिकारी विचार-धाराएँ प्रतिपादित की हैं। प्राचीन चिन्तन ने ससार की अन्य वस्तुओं को अध्ययन का विषय माना था। परन्तु अन्ततोगत्वा मनुष्य ने यह अनुभव किया कि 'मनुष्य' का अध्ययन करना भी अपने आप में एक बहुत ही दिलचस्प विषय है। मनुष्य के अनेक कार्य-कलाप हैं, जिन्हें वह समाज में रह कर करता है। अतः मनुष्य के समाज का अध्ययन बढ़ा और समाजशास्त्र नामक विषय का जन्म हुआ।

समाजशास्त्र एक बहुत ही व्यापक विषय है। इसमें मनुष्य का सर्वांगीण अध्ययन होता है। उसके शरीर की बनावट, सोचना, विचारना, रहन-सहन, शादी-व्याह, रीतिरिवाज, प्रकृति और मनुष्य, मनुष्य के व्यापार, उसकी जातियाँ, प्रजातियाँ, सभ्यता, संस्कृति तथा अनेकानेक विषय इस शास्त्र के अन्तर्गत आते हैं। यह विषय इतना बड़ा है कि कोई भी इसके समस्त अँगों का आचार्य नहीं बन सकता। इसमें जितने विषय सम्मिलित हैं, सम्भवतः उनसे अधिक ऐसे हैं, जिन्हें अभी तक छुआ नहीं गया है, निकट भविष्य में ही विद्वान अपनी निरन्तर चलने वाली खोजों के माध्यम से अपने क्षेत्र में उनको भी स्वीकृत कर लेंगे।

मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या रही है अपने को जान लेना। प्राचीन काल में लोगों ने व्यक्तिगत नैतिकता को धर्म के माध्यम से प्रमुखता दी थी। धीरे-धीरे मनुष्य की दृष्टि विकसित हुई। एक बार यूनान का एक दार्शनिक यात्रा पर निकल पड़ा। उसने देश-देश में तरह-तरह के देवताओं के दर्शन

किये । एक बात उसे नयी लगी । वह यह थी कि हर एक देश में अपने-अपने देवताओं को अलग-अलग ढँग से सजाया जाता था । उसने गौर से सोचा और वह इस परिणाम पर पहुँचा कि प्रत्येक देश का देवता उसी देश-विशेष की पोशाक, रूपसज्जा और सस्कृति का प्रतिनिधि था । तब उसके दिमाग में एक बात आई । यदि मनुष्य का देवता कोई सचमुच होता, तो देश-देश में वह अलग-अलग क्यों होता । उसने यह देख कर कहा कि मनुष्य के देवता मनुष्य की उपज थे ।

तत्कालीन समाज में इस विचार ने एक हलचल मचादी । शीघ्र ही यूनान में लोग अपने देवताओं पर संदेह करने लगे और लोगों का विश्वास उन पर से हट गया । तब दर्शनशास्त्र का जन्म हुआ । लोग तरह-तरह से सृष्टि के रहस्य की खोज करने लगे ।

भारतवर्ष में भी हमें अनेक देवता मिलते हैं । वैदिककाल में आयों में बहुत से देवताओं की उपासना की जाती थी । जो लोग विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों को मानते थे—उन प्रजातियों तथा जातियों में—उनके अपने अनेक देवता थे । संक्षेप में उन्हें इस क्रम से बाँटा जा सकता है—

(१) इन्द्र से पुराने आर्यों के देवता, जैसे अर्यमा, अग्नि, यम, छावा, अदिति, वरुण, भग आदि देवता ।

(२) इन्द्र के बाद के देवता, जैसे मरुद्गण, अश्विनी कुमार, इत्यादि ।

(३) विभिन्न जातियों से आये देवता, जैसे कुबेर, गन्धर्व, भूत इत्यादि ।

(४) अनाथ्य शैवों के अवैदिक देवता जैसे एडी, सैम, हैरू, ग्वाल्ल, भैरव इत्यादि ।

(५) टॉटैम देवता जैसे कामधेनु, नागराज गरुड, हनुमान इत्यादि ।

(६) अनाथ्य देवियाँ जैसे मानृकायें, तथा हाकिनी, डाकिनी, इत्यादि ।

(७) लिंग और योनि देवता, जो समाज-व्यवस्थाओं के प्रतीक हैं ।

(८) अवतार आदि परवर्ती अन्तर्भुक्ति के परिणामस्वरूप विकसित हुए देवता ।

(९) वृक्ष, नदी, पर्वत इत्यादि देवता ।

यदि हम और भी गौर से देखें तो वस्तुतः यह एक ग्रन्थ का विषय है । किन्तु भारत में देवताओं की बहुत संख्या का होना अधिक आश्चर्य का विषय नहीं है, क्योंकि यहाँ असंख्य जातियाँ रही हैं, और वर्तमान हैं । उनकी सङ्गति

और संस्कृति के स्तर में भेद रहा है, वे विभिन्न प्रजातिउत्सों (racial sources) से आई हैं। अतः उनमें एक दूसरे से अलगाव होना तो नितान्त आवश्यक है। परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि इतने भेद रहते हुए भी सब देवता न सिर्फ अपनी-अपनी जगह यहाँ ठीक माने जाते हैं, वरन उनको एक व्यापक भावभूमि में स्वीकार कर लिया गया है। पहले इन्द्र ही आर्यों में बड़ा देवता था। बाद में इन्द्र का दर्जा घट कर विष्णु और शिव का बढ़ गया। लेकिन इन्द्र समाप्त नहीं हुआ। ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि भारत में देवता लुप्त नहीं हुए हैं। हेरुक, कुरुकुल्ला, जम्भल, वज्रतारा इत्यादि देवी-देवताओं का नाम अब जनसमाज में प्रचलित नहीं रहा, शायद ही कुछ पढ़े-लिखे लोग जानते हैं कि पहले इनकी यहाँ पूजा हुआ करती थी। इसके साथ ही देवताओं के स्वरूप भी बदलते रहे हैं। गणेश हरेम्बरूप में पहले शक्ति के साथ चित्रित किये जाते थे, पर अब गणेश को ब्रह्मचारी माना जाता है।

भारत में देवता थे, और हैं। उनसे निरन्तर जन-जाति का सम्पर्क रहा है। यहाँ बुद्ध और महावीर मनुष्य होकर भी देवता बनाये गये हैं। परन्तु मनुष्य के ज्ञान के विकास में यहाँ देवता नीचे रह गये और दर्शन ऊपर उठ गया। उपनिषदों के मनीषियों ने ब्रह्म को सर्वोपरि माना। उन्होंने उसे अव्यक्त, निराकार कहा और 'नेति-नेति' की संज्ञा, यानी तत्कालीन जितनी भी परिभाषायें थीं, उनको ब्रह्म की व्याख्या करने में असमर्थ घोषित किया। सारे देवता किसी एक महान शक्ति के अंग हो गये। या कहा जाये कि इन सब देवताओं के द्वारा उस महान शक्ति के एक-एक रूप का उद्घाटन माना जाने लगा। लेकिन इस विकास में जाने कितनी पीढ़ियाँ बदल गईं। मनुष्य के रीति-रिवाज भी अपने आप बदलते रहते हैं और पता नहीं चल पाता। रीति-रिवाज ही संस्कृति का वाह्य आचार कहला सकते हैं। वे अन्ततोगत्वा मानसिक चिन्तन के प्रतिबिम्ब होते हैं। रीति-रिवाज का आधार परम्परा, आचार और रूढ़ियों (mores) पर आश्रित होता है।

किसी एक परिस्थितिबश एक रिवाज चल पड़ता है। बाद में उस रिवाज के अधीन होने पर एक नयी परिस्थिति पैदा हो जाती है। उदाहरणार्थ—एक तालाब के पास कोई बनौकस यूथ रहता है। वह मछलियाँ खाता है। वह आराम से है। तालाब गर्मी में सूखता है। मछलियाँ नहीं मिलती तो लोग भूखे मरते हैं। तो सोचते हैं कि मछलियों से हमारा जीवन था। मछलियाँ थीं तो हम थे। यानी मछलियाँ और हम एक हैं। कालांतर

में जीवन से मोह होने के कारण मछलियों से भी मोह होता है। आगे चल कर जो मछली मारता है, वह हमारे जीवन को मारता है। मछली मरेगी तो हम मरेंगे। मछली पूज्य है। हम मछली हैं। मछली नहीं मरनी चाहिये।

इस प्रकार मछली टॉटम बन गई। अब भविष्य में मछली की उपासना प्रारम्भ हुई। यह एक उदाहरण है। एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति तक मनुष्य का रिवाज ही बदल गया।

अपने यहाँ दृष्टव्य है अग्नि-पूजा। वैदिक आर्य अग्नि-पूजा करते थे। सारा कबीला (Gen) आग के चारों तरफ बैठता था। जो शिकार इकट्ठे किये जाते थे, उन्हें कोई बुद्धिमान लोग सबको बाँटते थे, हर एक के पेट की जरूरत देख कर। उस क्रिया को दान कहते थे। उस समय सारा कबीला और आग मिलकर 'ब्रह्म' कहलाते थे। बाद में शिकार या गायें आदि ज्यादा मिलने लगीं। तब ब्रह्म का जानने वाला ब्राह्मण यानी पुरोहित सबको अपनी मर्जी से चीजें बाँटने लगा। क्योंकि 'अतिरिक्त' (surplus) वस्तु थी, वह उनका स्वामी बना। अग्नि को भी खिलाने लगे, क्योंकि अग्नि ही ने मनुष्य और पशु को अलग-अलग किया था। अग्नि देवता बना। 'अतिरिक्त वस्तु' के आने से व्यक्तिगत सम्पत्ति प्रारम्भ हुई। उसके मालिक की प्रिया अन्य स्त्रियो से अधिक मानवती बनी। यों वर्ग प्रारम्भ हुए। समाज में 'अतिरिक्त उत्पादन' से 'अतिरिक्त फल' मिला। उसकी रक्षा के लिये वर्ग बने। कई सौ बरस बाद आर्यों ने दिग्विजय प्रारम्भ की। तब अग्नि की पूजा यज्ञ बन गई। दिग्विजयों में आर्य बढ़ने लगे, लूटते रहे। बाद में वे सब जगह फैल गये। तब वे मूल निवासियों से घुल-मिल गये। तब दिग्विजय करने को कोई नहीं रहा। तब फिर समस्या आई। विद्वान लोग सोचने लगे कि यज्ञ क्या है? अश्वमेध क्या है? सामाजिक परिस्थिति बिल्कुल बदल चुकी थी। तब उन्होंने उन्ही बातों के रूपक ढूँढ़े। यज्ञ-वेदी मन है। इसमें ज्ञान की अग्नि में वासना को होम देना चाहिये। अश्वमेध का घोड़ा क्या है? यह असल में मनुष्य का अहंकार है।

यों बदलती परिस्थिति में सारे अर्थ बदल गये, परन्तु व्यवहार में यज्ञ अब भी उसी ढँग से होता है। अवश्य ही अब पशुबलि इत्यादि का नियम बदल गया है।

मनुष्यों में एक जाति में यदि कोई नियम बन जाता है, तो उसे छोड़ने में बड़ी देर लगती है। अरब में पानी कम था। लिहाजा कम पानी खर्च करने

के लिये वहाँ के लोग कुहनी पर से पानी न डाल कर, उल्टी रीति से हाथ धोते थे, ताकि कम पानी में काम चल जाये। परन्तु भारत के बहुत से हिन्दू जब मुसलमान हुए तो उन्होंने इसी प्रथा की नकल की, क्योंकि यह धर्म बन गई, लेकिन उन विदेशियों ने अपनी प्रथा नहीं छोड़ी। मारवाड़, राजस्थान में पानी की कमी के कारण बर्तन राख से माँजे जाते हैं। इसी प्रकार अँगरेजों में शौचार्थ कागज का प्रयोग होता है। वहाँ पानी ठंडा होता है। परन्तु भारत में भी वे उसी रीति को निबाहते रहे। वे भारत की गर्मी में भी गले में टाई बाँधा करते थे। ऐसी ही अनेक परिपाटियाँ हमें संसार के विभिन्न देशों में मिलती हैं।

संक्षेप में मनुष्यों के रीतिरिवाज निम्नलिखित कारणों से जन्म लेते हैं—

(१) मनुष्य के रहन-सहन का तरीका एक अपना ढँग लिये होता है। यह धीरे-धीरे आदत बन जाता है।

(२) पूर्वजों के प्रति आसक्ति से आदतें निबाही जाती हैं।

(३) देवताओं के प्रति विश्वास से भी उन आदतों को सहारा मिलता है।

(४) आवश्यकताओं के कारण नयी रीतियाँ प्रचलित होती हैं।

(५) आवश्यकताओं के कारण एक जाति का दूसरी जाति से मिलन होता है। जैसे उनके सम्बन्ध बनते हैं, उन्हीं के अनुसार कुछ प्रणालियाँ व्यवहार में आ जाती हैं। गौंड लोग ब्राह्मण के हाथ का छुआ नहीं खाते। कारण यह था कि वे पहले ब्राह्मण-विरोधी थे। अब वैसे मैत्री है, पर वे खाते अब भी नहीं हैं। बहुत सी जातियाँ ब्राह्मण से दान नहीं लेतीं, न भेंट लेती हैं। असल में ब्राह्मण उनका पुरोहित था, अतः पुरोहित से लेना पाप माना जाता है। पूर्वीय राजस्थान के बागड़ी पानी बरसने से पहले एक चमार को पकड़ कर अच्छी तरह ठोक लेते थे, उनका विश्वास था कि इससे वर्षा अच्छी होगी। पर असल कारण यह है कि पहले बागड़ी लोग चमारों से जबर्दस्ती बेगार लेते थे। जब चमार विद्रोह करते थे तो उन्हें पीटा जाता था। जब पिट कर चमार अच्छा काम करते थे तो फसल ठीक होती थी। अंततोगत्वा विश्वास का रूप ही बदल गया। इसी प्रकार के सैकड़ों रिवाज हमें भारत तथा संसार में प्राप्त होते हैं।

(६) मनुष्य का आदिम धर्म, उसकी दार्शनिक व्याख्या ने अनेक रीति-रिवाजों को जन्म दिया है।

(७) मनुष्य की विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों और उसके जीवन संघर्ष को भी एक मुख्य कारण समझा जा सकता है। मदरासी ब्राह्मण मन्दिर में नंगे बदन पूजा करता है। बदरीनारायण का ब्राह्मण अँगरखा और पाजामा पहनता है।

(८) कभी-कभी ऐतिहासिक घटनाओं की स्मृति से ही रिवाज बन जाता है। जैसे मुहर्रम और ईसाइयों में बड़ा दिन इत्यादि हैं। ब्राह्मणों में चतुर्वेदी लोग व्याह में एक 'मुगल पूरना' नामक रिवाज चलाते हैं। किसी समय चतुर्वेदियों के विवाह में मुगलों ने विघ्न डाला था। तब चौबों ने उन्हें मार कर गिरा दिया और प्रतिहिंसा के क्रोध में लाशों पर या उनके बीच बैठ भोजन किया। उसकी याददाश्त के तौर पर अभी तक भोजन के स्थान पर ज़मीन पर खड़िया से मुगलों की तस्वीरें सी बनाली जाती हैं।

इस प्रकार के अनेक-अनेक कारण गिनाये जा सकते हैं। अतः हम और भी मोटे तौर पर मूल कारणों की खोज करना आवश्यक समझते हैं, जो रीति-रिवाजों के मूल में हैं। वे यह हैं—

(१) मनुष्यों की विभिन्न जातियाँ अलग-अलग रहीं; मिली-जुली, पर विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों और विकास के साधनों के कारण उनमें भेद के स्तर रहे। संस्कृति-भेद (difference of culture) असल में सभ्यता के मानदण्डों की असमता (inequality of standards of civilization) के साथ चलता है।

(२) एक ही प्रजाति (race) में विभिन्न कारणों से वैविध्य (variations) हो जाते हैं और फिर उनकी समरस (harmonious) उन्नति (progress) नहीं हो पाती। अपने रहन-सहन की विशेषता की अभिव्यक्ति (expression of the distinctive way of living) के प्रति अपना विशेष लगाव (attachment) भी रीति-रिवाजों के विकास का कारण है।

(३) मनुष्य की विभिन्न जातियों का असम सम्बन्ध (inequal relationship) एक अहंकार (ego) को जन्म देता है और अपने को श्रेष्ठ (superior) कहलवाने को बहुत सी जातियाँ अपना अलगाव बनाये रखती हैं। भारत में हूण, पहलव, शक, कुषाण तथा यवन घुलमिल गये।

लेकिन मुस्लिम पुरोहितवर्ग ने अपने को अलग बनाये रखने को अरब-ईरानी संस्कृति को पकड़े रखा, ताकि कहीं ब्राह्मण पुरोहित वर्ग उसे समाप्त न कर दे। दूसरी ओर ब्राह्मण का अपना रूढ़िपालन भी इसी की प्रतिक्रिया रही।

(४) मनुष्य के दार्शनिक विचारों का भेद भी बहुत कुछ वैविध्य के लिये उत्तरदायी है। धर्म के विचार (religious concepts) भी विभिन्न रीति-रिवाजों को जीवित रखते हैं और उन्हें जन्म देते हैं।

इस प्रकार के भी वर्गीकरण के मूल में समाज की व्यवस्थाओं को ही मूल कारण समझना चाहिये। एंगिल्स ने इस आधार को लिया था। उसने मोरगैन के आधार पर अपने निष्कर्ष निकाले थे। किन्तु एंगिल्स की व्याख्या वास्तव में मानव-विकास को पूर्णतया नहीं देख सकी। उसका दृष्टिकोण केवल आर्थिक था। अतः उसके अनुसार विकास यों हुआ—

(१) पहले आदिम साम्यवाद (primitive communism) था। तब मातृसत्ता (matriarchy) का विकास हुआ।

(२) फिर दास-प्रथा आई। व्यक्तिगत सम्पत्ति (private property) बढ़ी। परिवार अलग-अलग बने और पितृसत्ता (patriarchy) का उदय हुआ।

(३) क्रमशः सामन्तीय (feudal) व्यवस्था का उदय हुआ और 'दास' की जगह भूमिबद्ध किसान (serf) ने ली।

(४) तदुपरान्त मशीन के बनने से समाज में पूँजीपति (capitalist) और मजदूर (proletariat) का द्वंद्व प्रारम्भ हुआ।

(५) एंगिल्स ने भविष्य में साम्यवाद (communism) की कल्पना की, जिसमें वर्ग नहीं होने को थे।

किन्तु यह विकास नितान्त यांत्रिक (mechanical) है। यह मनुष्य के रीति-रिवाजों का एकमात्र कारण उसका ब्लैक मैजिक (काले जादू) में विश्वास बताता है। बाकी सब बातों को शासक-वर्ग की शोषण-पद्धति का हथकंडा बतलाता है। वस्तुतः न तो एंगिल्स ने मनुष्य की सर्वांगीण झलक ही प्राप्त की, और न पूरी आर्थिक व्याख्या ही की। उसने यह तो माना कि उत्पादन के साधनों में दैनंदिन जीवन में मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहारों से रीति-रिवाज जन्म लेते हैं, परन्तु उसने न तो उसकी श्रृंखलाओं को जोड़ा, न मनुष्य के क्रम-विकास को ही उससे वह तादात्म्य दे सका। एक व्यवस्था से

दूसरी व्यवस्था में आने का कारण मार्क्स के हिसाब से समाज में 'अतिरिक्त मूल्य' (surplus value) का आ जाना था। परन्तु इसे एक आंशिक सत्य कहा जा सकता है, क्योंकि यह मानव की मूल समस्या को नहीं ढक पाता।

मनुष्य की मूल इच्छायें दो हैं—

(१) जिजीविषा : जीवित रहने की इच्छा (will to survive)

(२) रिरिन्सा : सुख प्राप्त करने की इच्छा (will to pleasure)

इनके साथ तीसरी चीज़ है—

(३) मनुष्य का अहं (ego) जो कि बाह्य वस्तुओं में, भौतिक जगत (material world) में अपनी अभिव्यक्ति (expression) खोजता है।

इन तीन की नींव पर विकास निहित है। यदि ये नहीं हैं तो इतिहास नहीं है। मार्क्स और एंगिल्स व्यक्ति को वर्ग का खिलौना मानते थे। परन्तु व्यक्ति का अहं (ego) बुरी वस्तु नहीं है। दुर्भाग्य से अहं को घमण्ड माना जाता है। अभिमान (pride) एक अलग बात है। इसी अहं के अन्तर्गत व्यक्ति और व्यक्ति का भेद, अच्छा और बुरा आते हैं, जिनका दर्शन आज भी है और प्रारम्भ से अब तक रहा है। जिस अहं ने अपना विकास किया है, उसने लोक को सुख पहुँचाया है। जिसके अहं ने अधिकारों को स्वायत्त किया है, छीनने की चेष्टा की है, उसने लोक को हानि पहुँचाई है। मानव-जाति ने इस अच्छे-बुरे के झगड़े को स्मृति में रखा है और रीति-रिवाजों का अधिकांश इन्हीं पर आधारित है।

इस अहं (ego) का जिजीविषा (will to survive) और रिरिन्सा (will to pleasure) से सीधा सम्बन्ध है। इनकी अभिव्यक्ति (expression) वास्तव में इस प्रकार रही है—

हमारे मानव-जाति के ज्ञान की अवधि बहुत थोड़ी है। इतिहास में हम अधिक से अधिक पाँच—छः हजार वर्ष तक का उल्लेख करते हैं। और इस काल में हमें उदित होती पितृसत्ता (patriarchy) तथा क्रमशः अस्त होती हुई मातृसत्ता (matriarchy) दिखाई देती है। इससे पहले के समाज के बारे में अनुमान ही लगाये गये हैं। संसार की विभिन्न जातियों के सांस्कृतिक तथा सभ्यता-परक स्तर (cultural levels and levels of civilization) देख कर—उनके भेद, उत्पादन के साधनों के भेद (differences in the means of production) तथा रहन-सहन के भेद

देखकर ही अनुनान लगाया जाता है। संसार की अधिक से अधिक जातियों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

(१) सबसे पहले मनुष्यों का जीवन बन्दरों का सा जीवन था। उस समय मादा ही बच्चे पालती थी, लेकिन नर शारीरिक रूप से बलवान था। वह बन्दर का सा ही खोंखिया उठने वाला प्राणी था, जो मार-पीट भी कर सकता था।

(२) धीरे-धीरे यूथ (herd-flock) जीवन प्रारम्भ हुआ। क्योंकि जिजीविषा (will to survive) और रिरिन्सा (will to pleasure) के लिये यह आवश्यक था। अन्य पशुओं से खतरा था। उसमें मरने का भय (fear) था। यह मनुष्य के अहं (ego) को चोट पहुँचाता था। इसलिये मनुष्य ने प्रकृति के बारे में सोचना शुरू किया। उसने प्रकृति (nature) की अपनी सीमा के भीतर ही व्याख्या (analysis) प्रारम्भ की। धर्म के बीज (seed) पैदा हुए। वह था संग रहना। और उसमें निर्वाह-भावना (feeling of adjustment) ने जन्म लिया।

(३) नारी ने धीरे-धीरे समाज को बनाया (moulded)। पुरुष और स्त्री में अब पहला व्यवहार बदल गया। पुरुष ने स्त्री पर पाशविकता कम की, क्योंकि वह उसे आदर की दृष्टि से देखने लगा, क्योंकि वह बालक को जन्म देती थी। नर के लिये नारी एक घोर कौतूहल थी। उसका मासिक धर्म उसके लिये आश्चर्य का कारण था। वह उसको आदर देने लगा। स्त्री ने पुरानी परिपाटी बदली। वह अब पहले कमजोरों को खिलाती, बच्चों को खिलाती। दोनों शिकार करते। पुरुष ने भी अपने ईश्वर की कल्पना स्त्री रूप (goddess) में की, क्योंकि वह जन्म देती थी। धीरे-धीरे मातृसत्ता छागई। उस समय गण होता था। परिवार नहीं होते थे।

(४) क्रमशः स्त्री ने ही पुरुष को ममता के द्वारा आगे बढ़ाया। स्त्री ने ही खेती करना शुरू कराया। संसार की प्रायः ही आदिम जातियों में स्त्री ने ही ऐसा विकास किया है। किन्तु पुरुष से आदर पाने का उसका एकमात्र आधार उसकी प्रजनन करने की शक्ति थी। वह जन्म देती थी, इसलिये अधिक आराम से रहने लगी। पुरुष क्योंकि उससे डरता था, उसे देवी (divine) समझता था, उसके काम करता था। धीरे-धीरे स्त्री घर में आराम से रहने लगी और पुरुष सारे काम करने लगा। स्त्री शासन करती थी। स्त्रियों ने ही घर बँटवाये। स्त्रियों ने ही अपने-अपने

परिवारों को अलग किया। पुराने मातृगण इसका ज्वलन्त उदाहारण हैं। उस समय परिवार स्त्री का ही था, पुरुष नहीं जानता था कि उसका महत्त्व क्या था।

(५) किन्तु धीरे-धीरे क्रम-विकास में पुरुष का ज्ञान बढ़ा। और प्रजनन में पुरुष का महत्त्व भी ज्ञात हो गया। तभी से पुरुष ने कई जातियों में लिंग-पूजा प्रारम्भ की। पुरुष-प्राधान्य बढ़ा। क्योंकि तत्कालीन उत्पादन के साधन पहले ही से स्त्री के हाथों से निकलकर पुरुष के हाथों में पहुँच चुके थे, स्त्री अपने आप उसके आधीन हो गई, क्योंकि अपने प्रजनन-चमत्कार के बल पर ही पुरुष से सब काम कराती थी। ज्योंही यह विश्वास कुछ शताब्दियों में टूट गया, पुरुष सर्वेसर्वा हो गया और गण माता के नाम से हटकर टॉटम पर चला गया और पितृसत्ता का उदय हुआ। पारस्परिक युद्ध बढ़ गये। छिपकर युद्ध करने को मास्क (mask) का प्रयोग होने लगा और स्त्री को सामग्री (commodity) का दर्जा मिला।

(६) अब पुरुष के सामने मुख्य बात अपना 'बीज' था। व्यक्तिगत सम्पत्ति का स्वामी यही बना, क्योंकि वही उसे इकट्ठा करता था और स्त्री पहले पुरुष का शोषण करती थी। अब पाँसा पलट गया। अब पुरुष ने शोषण प्रारम्भ किया।

(७) इसके बाद गोत्र पुरुष पर पड़ा और मिथुन विवाह-पद्धति चली, परन्तु शीघ्र ही स्त्री ने अनुभव किया कि उसकी स्वतन्त्रता में आराम नहीं था। तब वह पुरुष की पूर्णाश्रित हो गई और उसने अपने बचाव के लिये 'पातिव्रत' (chastity) को स्वीकार किया, ताकि प्रत्येक पुरुष उसको न भोग सके। पुरुष के लिये भी यह व्यक्तिगत सम्पत्ति का असली वारिस प्राप्त करने का साधन बना और उसने इसे बढ़ावा दिया, किन्तु समाज में स्त्रियाँ बँट गई। स्त्री का महत्त्व अब प्रजनन था या पुरुष को आनन्द देना-मात्र था। जिन्होंने प्रजनन को सीमित किया वे पत्नियाँ बनीं, जिन्होंने ऐसा स्थान नहीं पाया, वे वैश्याएँ बनीं।

(८) इतना विकास जब हो चुका था तब दास-प्रथा का युग आया, जिसमें अतिरिक्त मूल्यों को और भी बढ़ाने की आवश्यकता पड़ी। इसके बाद के इतिहास पर ही विद्वानों ने अधिक विवेचन किया है। आदिम मानव के जंगली समाज से किस प्रकार मातृसत्ताक समाज का विकास हुआ, किस प्रकार

मातृसत्ताक समाज पर पितृसत्ताक समाज की विजय हुई, यह आज तक किसी ने भी नहीं देखा। यहाँ हमने संक्षेप में इस विकास को प्रस्तुत किया है।

इसका मतलब यह नहीं है कि हर जगह यह विकास साथ-साथ हुआ। विकास के स्तरों में जगह-जगह भेद रहा और जातियों के परस्पर मिलन या दूरी से नई-नई रीतियाँ जन्मीं, नये-नये रिवाजों ने जन्म लिया। जिस प्रकार दास-प्रथा के बाद सर्वत्र सर्फ-प्रथा नहीं आई, जैसे जब चाणक्य के युग में दास-प्रथा टूट चुकी थी, यूनान में मौजूद थी और जब भारत में सामंतीय व्यवस्था आ रही थी, यूनान में बर्बर प्रथा थी, उसी प्रकार पूँजीवाद का विकास होने पर अमेरिका में दासप्रथा जीवित रही जब कि भारत सामंतीय व्यवस्था में ही पड़ा रहा। अतः हमने जो विकासक्रम दिखाया है उसे चित्र की कुछ मोटी लकीरों के रूप में मानना चाहिये। जातियों के स्तर में फर्क रहा और वह आज भी है। मार्क्स और एंगिल्स ने क्योंकि लक्ष्मण रेखाएँ (water-tight compartments) बनाई थीं, इसीलिये उनकी भविष्यवाणियाँ असफल हो गईं। उनके हिसाब से यांत्रिक रूप से विकसित जर्मनी में पहले साम्यवादी क्रांति होनी चाहिये थी। वह पूँजीवादी विकसित देश जर्मनी में नहीं हुई, बल्कि सामंतीय देशों—रूस और चीन में सफल हुई। उन्होंने संस्कृति-स्तर-भेद (differences of cultural level) को ध्यान से हटा दिया और यांत्रिक मानव की कल्पना की।

संसार के इतिहास में प्रायः ही नये और अच्छे साधन रखने वाली जातियों ने पुरानी सुसंस्कृत जातियों को जीत लिया है। नयी जातियाँ भले ही सभ्य (civilized) अधिक रही हों, परन्तु पुरानी जातियाँ प्रायः ही अधिक संस्कृत (cultured) रहीं। इस प्रकार प्रायः ही विजेता मानसिक स्तर पर विजितों से हारे हैं। इसी प्रकार यूनानियों से रोमन हारे थे। जब टक्कर गहरी होती है, तो दोनों ओर से रूढ़ियों की कट्टरता बढ़ती है, जैसे भारत के हिन्दू-मुसलमानों का संघर्ष लिया जा सकता है।

मार्क्स और एंगिल्स की यह कल्पना कि कुछ मनुष्य दल बनाकर समाज के द्वन्द्वात्मक विकास में उछाल (leap) लेकर व्यवस्था बदल सकते हैं, समाजशास्त्रीय दृष्टि से पूरी तरह लागू नहीं होती। वह किन्हीं विशेष सामाजिक अन्तर्द्वन्द्वों (inner-contradiction) में आकस्मिक (accidental) रूप से सफल हो सकती है।

मनुष्य का इतिहास बहुत धीरे-धीरे के विकास को प्रमाणित करता

है, क्योंकि जब तक मानसिक नींव तैयार नहीं हो जाती, उस पर नयी भीत नहीं खड़ी हो पाती। एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था का भेद, एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति से भेद, एक सभ्यता का दूसरी सभ्यता से भेद ही वस्तुतः मानव-आचार-व्यवहार में विभिन्न रीति-रिवाज और रूढ़ियों को जन्म देता है।

कभी-कभी रिवाज इतना रूढ़ बन जाता है कि परिस्थिति के बिल्कुल ही बदल जाने पर भी लोग उसका निर्वाह करते चले जाते हैं। रिवाज (custom) लोकाचार (folkways), तथा रूढ़ि (mores) तीनों में ही कहीं-कहीं हमें ऐसी चीजें दिखाई देती हैं जो समझ में नहीं आतीं, पर असल में उनका कोई कारण किसी समय अवश्य होता था।

हिन्दुओं में जब श्राद्ध होता है तब जनेऊ को बार-बार पितरों से बातें करते समय, उन्हें अपने पास बुलाने वाले मन्त्र कहते समय, बाँये कंधे से सीधे कंधे पर रखा जाता है। उस समय जनेऊ को बाँये कंधे से दाँये कंधे पर लाने की क्रिया को 'प्राचीनावीति' कहते हैं। इसका अर्थ है—“जैसा कि प्राचीनकाल में होता था।” प्राचीनकाल में होता था—ऐसा कहने का क्या मतलब है? और जब पितरों (ancestors) का वर्णन हो, तभी ऐसा क्यों कहा जाता है? जब पितरों से सम्बन्ध स्थापित करते हैं, जब प्रेतादि को बुलाते हैं, तभी ऐसा क्यों करते हैं?

इसका अर्थ यह हो सकता है कि प्राचीन काल में जनेऊ दाँये कंधे पर धरा जाता था। किसी समय से परिवर्तन हुआ और वह बाँये कंधे पर रखा जाने लगा। लेकिन जब पितर-पूजा (ancestor-worship) होती थी, तब उसे वैसा ही रखा जाने लगा “जैसा कि प्राचीन-काल में होता था।” अब न इस पर कोई तर्क होता है, न विवेचन। यह एक परम्परा ही है। अब तरह-तरह की व्याख्या की जाती है, पर लोग यही नहीं जानते कि जनेऊ पहना क्यों जाता है। बाण ने वर्णन किया है, उसके समय में स्त्रियाँ भी जनेऊ पहनती थीं। अब नहीं पहनतीं। महर्षि दयानन्द ने इसे फिर स्त्रियों के लिये प्रचलित किया था, जो अब कुछ आर्य-समाजी परिवारों में चलता है।

इसी प्रकार मरते समय गोदान है। विश्वास किया जाता है कि गाय नरक की नदी वैतरिणी पार करायेगी। वास्तव में पहले बैल से खेती होती थी। बैल से समाज टिका था। यों बैल से धर्म टिका। गाय उस बैल की माँ थी। दूध देती थी। यों वह परलोक में सहायक बनी।

हमारे लोकाचार (fokways) में न जाने कितनी पुरानी परम्परायें आज तक जीवित हैं। बहुत सी बातें तो अब भी समझ में आ जाती हैं, बहुत सी नहीं आतीं। जैसे उत्तर भारत के सवर्णों में शादी में घोड़ा पूजना, तोरण मारना, आँचल में बतासा छुला कर शादी करने जाते समय बेटे को मंदिर या चौपाल में खिलाना, शादी करके दम्पति के घर लौटने पर बहन का दरवाजा रोक कर पहले नेग लेना, बारात-बिदाई के समय बेटे वाले का हल्दीचून की पिटाई से हाँडी में कुछ माल रख उसका मुँह बन्द करके बेटे वालों को देना और बेटे वालों का उस हाँडी से सारा माल निकाल कर उसे दूल्हे के रथ के पहिये के नीचे डाल देना, बड़ी बेटे सुवासिनी के सुसराल से घर आये बिना विवाह का कोई कार्यक्रम प्रारम्भ न होना, मंडप-शोभा में दूल्हे का बेटे वालों की भट्टी में लात मार कर नेग माँगना, फेरों के बाद दूल्हे का आँचर-गाँठ खोलने को नेग माँगना, इत्यादि वैवाहिक कार्यक्रम अनेक संस्कृतियों के मिलन का परिणाम है। बहन का अधिकार, विवाहिता बहन का सुसराल से लौट कर सुवासिनी बन सब कार्य प्रारम्भ कराना पुरानी मातृसत्ता के अवशेष हैं। तोरण (दरवाजा) मारना (तोड़ना), घोड़ा पूजना, आँचर पिलाने के नाम बतासा खिलाना, इत्यादि राक्षस-विवाह का अवशेष हैं, जिसमें पहले पुरुष स्त्री को लूटकर लाता था। कुछ ऐसी भी रीतियाँ हैं जो समझ में नहीं आतीं। ऐसा ही अग्रवालों का घूरा-पूजना है। घूरा खाद के काम आता था। क्या इसी से पूज्य हो गया? छोंकरे के वृक्ष की स्त्रियाँ पूजा करती हैं। परन्तु उसके मूल में वेद की कथा है कि जब अग्नि छिप गया था तब अगिरा ने शमी (छोंकरे) वृक्ष में अग्नि खोज ली थी। बाद में शमी के भीतर अग्नि का होना भी कहा गया। तभी से छोंकरा पूज्य हो गया। दिवाली में जहाँ गणेश और लक्ष्मी पूजन होता है, तथा कुबेर का नाम सादर लिखा जाता है, ब्रज-प्रदेश में दीवाल पर स्त्रियाँ एक अठपहलू सी औरत (देवी) बनाती हैं, जिसे सौरती कहते हैं। वह सौरती कोई अनार्य्य देवी है। मृत्यु पर पिण्ड देना, लेकर श्मशान जाना इसी का द्योतक है कि मृतक को परलोक तक भोजन दिया जाये। मरे आदमी के कमरे में मरने के स्थल पर दीप जला कर रखना दक्षिण भारत में प्रचलित है और उत्तर में नीम का झौरा तथा पानी का कलश भर कर वहाँ रखते हैं। यह सब इसी विश्वास से किया जाता है कि मृतक की आत्मा वहीं लौट आयेगी।

वस्तुतः ऐसी समस्या ब्राह्मणसाहित्य के लेखकों के सामने भी आई थी। प्राचीन आर्य्य दो लकड़ियाँ रगड़ कर बीच में रूई रख कर आग पैदा करते

थे। आग पैदा करना कठिन था। इसीसे आग को बुझाने नहीं देते थे। आग्यों का अग्निहोत्र और पारसियों का अग्निहोत्र इसीका द्योतन करते हैं। बाद में आग बुझाने को अपशकुन माना जाने लगा। ब्राह्मण कर्मकाण्डी लोगों ने इसके बारे में सोचा। उन दो लकड़ियों को पुरुर्वा और उर्वशी कहते थे। उनकी रगड़ से आग निकलती थी। फिर कर्मकाण्डियों ने इसकी दार्शनिक व्याख्या कर डाली, वे याद नहीं रख पाये थे कि पुरानी चीजें, पुराने नाम किस लिये किस रूप में विद्यमान थे।

अधिकांश अन्धविश्वास किसी न किसी जगह जड़ रखते हैं। रात को पेड़ नहीं छूना चाहिये। क्यों? क्योंकि पेड़ सोता है। परन्तु छूने में खतरा भा है, वह कँटीला है, या उस पर साँप है, कौन जाने? नये विचारक कहते हैं कि प्राचीन लोग जानते थे कि वृक्ष से रात को कार्बनडाइ आक्साइड नामक गैस निकलती है, जो हानिकारक होती है। बहुत से आयुर्वेद सम्बन्धी सिद्धान्त, स्वास्थ्यपरक नियम भी हमारे समाज में रूढ़ि बन कर चलते हैं।

ग्रहण में मेहतर चिल्लाते निकलते हैं : 'दान करो, पुण्य करो।' और सब उन्हें दान देते हैं। क्यों? क्या प्राचीन काल में दलित लोग पृथ्वी पर अंधकार देख कर शोषकों को दोष देते थे? क्या उस समय डर कर शोषक उन्हें दान देते थे? इस प्रकार की बहुत सी व्याख्यायें की जा सकती हैं।

मनुष्य की रीतियाँ, रिवाज नित्य जन्म लेते हैं और शताब्दियों में जाकर दिखाई देने लगते हैं। वे आज भी बन रहे हैं और विकास कर रहे हैं। आचरण के जिस रूप का निर्वाह जनजीवन में, किसी भी कारण से, उत्तर जाता है, वह लोकाचार बन जाता है। वह प्रायः तभी लोक में स्वीकृत होता है, जब उसका किसी न किसी प्रकार जनजीवन से सम्बन्ध होता है। रिवाज उनकी तुलना में कम जीवित रहते हैं, क्योंकि वे कम लोगों तक सीमित होते हैं। रूढ़ियाँ चलती हैं और बहुत दिनों तक चलती हैं। परन्तु कभी-कभी समाज में हलचल होने पर वे लुप्त भी हो जाती हैं, कभी-कभी नहीं भी होतीं। गौतम बुद्ध ने तीर्थ-स्थान का विरोध किया था। महाभारत में तीर्थों का वर्णन किया गया है, और उनका माहात्म्य दिया गया है। बहुत से वर्णन कुछ ऐतिहासिकता लिये हैं, बहुत से केवल चमत्कारपूर्ण हैं। परन्तु तीर्थस्थान आज भी जीवित हैं। उसका परलोक से सम्बन्ध है। मनुष्य जब तर्क नहीं करता, तब उसे रूढ़ि कहना चाहिये।

संसार के विभिन्न देशों का अध्ययन हमें विकास की अनेक मन्जिलें बताता है। रिवाज, लोकाचार और रूढ़ि का अध्ययन वास्तव में मानव के ज्ञान-विकास का ही रोचक अध्ययन है। इसीलिये समाजशास्त्र के लिये यह एक बहुत सी आवश्यक विषय है।

मैकाइवर का मत और विवेचन

मैकाइवर के मतानुसार संस्था में किसी स्थापित मान्यता और नियमावली का पालन किया जाता है। बार्नेस के मतानुसार सामाजिक संस्थाओं के द्वारा ही मानव-समाज अपनी बहुकृत्या व्यवस्था को मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये संगठित करता है। उनके द्वारा ही उन्हें परिचालित करता है। जब मनुष्यों का कोई दल किसी नियमावली का पालन करना स्वीकार कर लेता है तो संस्था का जन्म होता है। मैकाइवर के मतानुसार दल एसोसियेशन है और उसका कार्य चलाने के नियमों का संगठन एक संस्था है। संस्था बहुमान्य नियमावली है और एसोसियेशन में सदस्यता होती है, संस्था कार्यवाहन का एक साधन है। विवाह एक संस्था है। किन्तु रीति-रिवाज के पीछे वह संपूर्ण सामाजिक मान्यता नहीं होती, जो कि संस्था के प्रति होती है। रिवाज के पालन में मनुष्यों के व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित होते हैं। संस्था में व्यापक दृष्टिकोण होता है। संस्था द्वारा भूत और वर्तमान, वर्तमान तथा भविष्य, मनुष्य और उनके पूर्वजों तथा उनके वंशजों का सम्बन्ध स्थापित होता है। विवाह की पद्धति रिवाज है, पर विवाह का सम्बन्ध एक संस्था है। सामाजिक जीवन में लोक का एक आचरण होता है। वह लोकाचार है। संस्थाओं द्वारा प्रचलित प्रणालियों का पालन अपने व्यापक रूप में लोकाचार कहलाता है। मनुष्यों के मान्य सम्बन्धों का पालन ही लोकाचार है। प्रत्येक समाज में इन आचारों में भेद पाया जाता है। समय-समय पर इनमें परिवर्तन होता है। टाई पहनना या चुटिया रखना लोकाचार के अन्तर्गत आते हैं। किन्तु जिस लोकाचार में आदेशात्मक या नियामक भाव (regulations) मिलते हैं, उन्हें मोर (mores) कहना चाहिये। प्रत्येक सामाजिक नियमन, एक सामाजिक

शरीर गोदना और उसका महत्त्व

जब कोई स्कूल का बालक, मल्लाह या कोई व्यक्ति फैशन के वशीभूत होकर अपने शरीर पर कोई चित्र गुदा लेता है तो वह एक प्रकार से गहना माना जाता है ।

असभ्य जातियों का कोई व्यक्ति अपने शरीर को इतना अधिक इसीलिये गुदाता था, कि इस प्रकार की गुदाई उसके शरीर पर दूसरा गहना होता था । वह सोचता था कि इस प्रकार की गुदाई उसकी व्यक्तिगत रूप में बुराईयों से रक्षा करती थी । मगर आज का सभ्य पढ़ा-लिखा समाज, उस व्यक्ति को जो गुदा हुआ दिखाई देता है, उसे निम्न जाति का, असभ्य, एकान्त में रहने वाला या भ्रम में भरा हुआ समझता है ।

लेकिन पुराने जमाने का व्यक्ति मुख्य रूप से इसलिये गुदना गुदवाता था कि वह अपने को अपने विचारों में सबसे अलग समझता था । उस व्यक्ति के लिये इस बात का बड़ा भारी महत्त्व था, कि वह अपने शरीर पर सुन्दर ढँग से चित्रकारी बनवा लेता है । यह उसकी ख्याति का माध्यम था तथा दूसरे व्यक्तियों के ध्यान को उसकी ओर आकर्षित करता था । यद्यपि इस प्रकार की शरीर पर गुदाई उसकी इच्छा का एक भाग होती थी मगर वास्तव में गुदाने का वास्तविक अर्थ या तो धार्मिक, जादूशरक या सामाजिक होता था । आसाम की नागा जाति इस गुदाई के सम्बन्ध में विश्वास करती है कि इस तरह गुदाने से ईश्वर को उन्हें पहिचानने में सहूलियत होगी, ईश्वर उनका ठीक प्रकार से चुनाव कर सकेगा तथा इस गुदाई से स्त्री-पुरुष एक दूसरे को पहिचान सकेंगे । कुछ पोलिनेशियन व्यक्ति अपने शरीर पर अपने ईश्वर का चिन्ह

गुदवाते हैं। आयनू औरतें अपने शरीर पर अब तक इस प्रकार का चिन्ह गुदवाती हैं कि ये आयनों की देवी के सदृश दिखाई दें। भारतीय ब्राह्मण अपने सिर पर शिव और विष्णु का चिन्ह गुदवाते हैं। काली खाल वाले मुसलमान लोगों के शरीर पर मुश्किल से गुदाई का कोई चिन्ह दिखाई देता है। वे लोग एक दूसरे के गाल पर एक गहरा गट्टा बनाते हैं, जिसे वे लोग अपने खुदा की नकल समझते हैं तथा कहते हैं कि ऐसा उनके पैगम्बर मुहम्मद ने पहली बार किया था।

वास्तव में ये सब धार्मिकता के चिन्ह हैं। लेकिन कुछ डिजाइन जादू के कारण शरीर पर बनाये जाते हैं। कुछ लोग अपने शरीर पर कुछ रंगीन चित्र गुदवाते हैं तथा समझते हैं कि ये चित्र उनको अनेकों बीमारियों से बचाते रहेंगे। मलाया के लोग स्वयं को, हैजे से बचाने के लिये, काले, सफेद और लाल रंग से गुदवाते हैं। शरीर पर गुदवाना अच्छे भाग्य लाने की निशानी भी समझी जाती है। बच्चों के पैदा होते ही उनके शरीर पर एक प्रकार का खुशी का चिन्ह गोद दिया जाता है। शरीर पर गुदवाना जातीय और सामाजिक कारणों से सारे संसार में प्रचलित है। इस प्रकार वे लोग अपने को एक जाति की सदस्यता से परिचित कराते हैं। इन चिन्हों के बिना वे अपने को जाति और श्रेणी से इस संसार में और दूसरी दुनिया में अलग समझते हैं।

इस विषय की व्याख्या करने से पहले हमें एक दृष्टि इस गुदाई की कला और ढंग की ओर डालनी चाहिये। इसका विकास शरीर के और शक्ल के रँगने से विकसित हुआ है। प्रागैतिहासिक काल के मानवों ने अपने मृतकों की हड्डियों को बहुत चमकदार लाल रँग से रँगा तथा उस पर चित्र बनाये। ऐसा करने में वे भविष्य में सुरक्षित रहने की कल्पना करते थे। वे अपने शरीर को विशेष ढंग से रंगते थे। वही आदत आज भी सम्भवतया उसी ढंग में प्रचलित है तथा प्राचीन मनुष्यों के विचारों की पूर्ति आज भी हो रही है। उदाहरण के लिये उत्तरी अमेरिकन तथा भारतीय अपने शरीर को स्वतन्त्रतापूर्वक गुदवाते हैं। कुछ जातियों में शक्ल गोदने की कला को कभी नहीं छोड़ा जाता तथा शरीर पर चिन्ह बनवाना उनका एक विशेष कार्य है।

अंडमन द्वीप के लोगों में कुछ अनौखे ही ढंग पाये जाते हैं। अंडमन का व्यक्ति अपने को दूसरों से अलग समझता है। लेकिन जो जातियाँ बहुत अधिक बढ़ी हुई हैं, उनमें एक अलग किस्म का रिवाज प्रचलित है। ये सिर्फ चिन्ह और लकीरों का ढेर लगाते हैं। जैसा कि आस्ट्रेलिया के काले व्यक्तियों में पाया

जाता है। अफ्रीका के बुसंगो अपनी शक्लों पर स्वस्तिक जैसा चिन्ह बनवाते हैं। बोर्नियों के मनुष्य भी इसी प्रकार का चिन्ह बनाते हैं। न्यूजीलैंड, मावरी तथा जापान में रंगीन गुदाई करने की कला अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी है।

बोर्नियों के लोगों में हम देखते हैं कि वे एक बहुत सुन्दर ढंग से सीधी लायनें, जो कि एक दूसरी से मिली हुई होती हैं, बनाते हैं तथा उनकी वास्तविक कला यहीं से शुरू होती है। पौलिनेशिया तथा मावरी लोगों में गुदाई में हम ऐसे चित्र देखते हैं, जिनमें ज्यामिति के पूरे नियमों का पालन होता है। वे प्रत्येक लाइन का सुन्दर झुकाव करते हुये गालों पर डिज़ाइन बनाते हैं। इसे मोको नामक रिवाज कहते हैं। इनमें पेच लगे हुये होते हैं और गहनों की शक्ल जैसे बनते हैं। मावरी गोदने वाले पहले डिज़ाइन काले रंग का बनाते हैं, बाद में एक सुई द्वारा, जो कि लाल रँग के गेरू में डुबोई जाती है, वे चित्र बना देते हैं। कुछ नमूने बहुत ही कठिन होते हैं तथा पैमाने के मुताबिक बनाये जाते हैं एवं गणित के यन्त्रों द्वारा पूर्ण किये जाते हैं। मोको रिवाज मावरी औरतों के लिये सुन्दर सज्जा प्रदान करता है। इसके द्वारा गुदे हुये होने के परिणामस्वरूप उनकी शक्ल सुन्दर लगती है तथा उससे उनकी पोशाक अपनी सुन्दरता के लिये प्रिय होती है।

सेमोन की गुदाई आज भी बहुत सुन्दर है, जिसके अन्दर लकीरें, चिन्ह तथा अन्य बातें बड़े ही सुन्दर ढंग से बनाई जाती हैं तथा कभी-कभी पूरे शरीर में टेढ़ापन भी पैदा कर देती हैं। यह स्कूल की कला के विकास के सदृश समझी जाती है। एक साधारण नमूना जोकि शरीर पर गोदा जाता है, वह ताड़ के पेड़ के सदृश होता है, जो पीठ के मध्य में चक्र देते हुये दोनों ओर बनाया जाता है।

प्राकृतिक चीजें भी गुदाई में स्वतन्त्र रूप से दिखाई जाती हैं। जानवरों, चिड़ियाओं और मछलियों के चित्र भी बनाये जाते हैं। इस किस्म का उदाहरण आज भी कनाडा के उत्तर पश्चिम में स्थित क्यून शारलट द्वीप के हैदा भारतियों में पाया जाता है। ये सभी रीतियाँ परम्परात्मक हैं, लेकिन रीछ, मेंढ़क और अन्य प्रिय डिज़ाइन जो कि शरीर पर बनाये जाते हैं, निस्सन्देह अपनी-अपनी जाति के टॉटम या अन्य पूज्य चिन्ह होते हैं। टॉस स्ट्रेट वासी और लंका के तामिल लोग भी अपने शरीर पर प्राकृतिक दृश्य बनवाते हैं।

बर्मा और जापान के व्यक्ति अपने शरीर पर सबसे अच्छी कलात्मक गुदाई करते हैं, जोकि कला के क्षेत्र में काफी आगे बढ़ी हुई है। बर्मा में कलाकार लम्बे-लम्बे औजार प्रयोग में लाता है। ये काफी बजनी होते हैं। इनसे ऊँचाई पर बुद्ध की तस्वीर बनाई जाती है, जिसे कि वह सुन्दर सुइयों द्वारा चार भागों में बाँट लेता है, ताकि वह रंगीन बनाई जा सके। ये लोग सुन्दर चित्र बड़ी सफाई के साथ बनाते हैं। ये एक घण्टे में एक दर्जन चित्र बना सकते हैं।

जापान के गुदाई करने वाले अपने डिजाइनों की ऊपरी रूपरेखा ऊँट के बालों के ब्रुश से बनाते हैं और उसे कई सुइयों वाले औजार से छेदते हैं। तस्वीर लम्बाई में काफी बड़ी होती है। नीले रँग के लिये भारतीय स्याही प्रयोग में लाई जाती है। वे साधारण सिद्धर तथा पीला रंग भी प्रयोग में लाते हैं। बर्मा के लोगों की भाँति ही जापान के गोदक बहुत ही अनोखा काम करते हैं और बिरला ही व्यक्ति खून निकालता है। आजकल जापान में सजावट के पूर्ण साधन प्रयोग में लाये जाते हैं तथा शरीर पर कुछ जादूपरक प्रभाव के लिये प्रसिद्ध डिजाइनें, कुछ जानवरों के प्रिय चिन्ह आदि दिखाई देते हैं।

अमेरिकन भारतियों में जैसे शरीर को गोदना महत्त्व रखता है, वैसे ही मुख को गोदना भी महत्त्व रखता है। वे शक्ल को कुछ प्राकृतिक चिन्हों में बाँट लेते हैं और आखों को रंगीन घेरे से ढक लेते हैं। वे अपनी आखों के चारों ओर रंगीन घेरा बना लेते हैं जबकि मुँह से निकलती लाल और काली लकीरें दिखाई देती हैं। उनके गाल हरे बिन्दुओं से ढके हुए मिलते हैं और उनका मस्तिष्क समान लाइनों से ढका हुआ मिलता है। वे लोग शक्ल को दो टुकड़ों में बाँट लेते हैं। एक हिस्से को काले और नीले रंग से रँगते हैं। यह रंग हल्का होता है। दूसरी ओर का भाग पीले, सफेद और लाल रंग से रँगते हैं। एक तरफ गहरी और घनी लकीरों से कटा हुआ रहता है। ये लाइनें हाथ के द्वारा खींची जाती हैं जबकि दूसरी ओर ब्रुश से लाइनें खींची जाती हैं। दूसरी बार शक्ल ऊपर और नीचे के हिस्सों में बाँट ली जाती है। एक तरफ को घन तथा गहरा काला रंग दिया जाता है और दूसरा हल्का रंगा जाता है। इन चिन्हों का महत्त्व बहुत प्राचीन है, जो कि इनकी स्वतन्त्रता के द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। अपनी-अपनी पसन्द के मुताबिक डिजाइन बनाये जाते हैं। आज भी यह प्रथा उत्सव के रूप में अपना महत्त्व रखती है।

यह प्रथा इतनी ही दिलचस्प है जितनी कि यह कला ! इस कला के अन्तर्गत इसके विचार छिपे हुये हैं । यह हमने पहले ही बताया है कि शरीर का गोदना, धार्मिक, सामाजिक और जादूपरक महत्त्व रखता है । उत्तरी अमरीका के भारतीय यह विश्वास करते हैं कि मृत्यु होने के बाद यम के दूत उनको शरीर पर गुदे हुये चिन्हों के द्वारा ही पहिचानते हैं कि वे किस जाति या धर्म के हैं और किस देवता की पूजा करते हैं । कुछ दक्षिण भारत की स्त्रियाँ यह सोचती हैं कि यदि वे उन चिन्हों से रहित मर जाती है तो उनका पूज्य ईश्वर उनको मारेगा । आयनू स्त्रियाँ विचारती हैं कि वे दूसरे संसार को ले जाई जायेंगी और वहाँ पर यदि उनके शरीर पर चिन्ह नहीं होंगे तो छोड़ दी जावेंगी । उत्तरी अमेरिका के रेड-इंडियनों में शरीर पर गुदवाना ईश्वर द्वारा बताया गया है तथा शरीर पर सभ्य और महान वीरों, सुन्दर बच्चों और आकाश एवं ईश्वर के चिन्ह बनाये जाते हैं । पौलिनेशिया और समोआ के व्यक्ति अपने गुदने की पूजा करते हैं । फारमूसा तथा मौरिस मे पौरोहित्य के लिये यह आवश्यक है । शरीर की गुदाई के विचार से बहुत से अपने टांटेम का चिन्ह बनवाते हैं । यह पवित्र जानवरों तथा जातीयता से सम्बन्धित है । यहाँ पर ऐसे अनेकों ही प्रमाण हैं जो खासतौर से उत्तरी अमरीका और आस्ट्रेलिया से सम्बन्धित हैं ।

गुदाने की महत्ता इनके लिये इतनी अधिक है कि वहाँ औरतों की शादी तथा माता बनने की बात से यह सम्बन्धित है । फिजी की पहाड़ी जातियों में लड़की सारी रात अपने गुदाने के लिये कांटे तलाश करती है और ये कांटे उसके गोदने के औजार में लगाये जाते हैं । बुद्धिमान औरतें इन कांटों का महत्त्व समझती हैं और इनको अपने औजारों में प्रयोग करती हैं । दक्षिणी अमेरिका की कुछ जातियों में गुदाने की विधि एक महत्त्वपूर्ण विधि है ।

अफ्रीका की कुछ जातियों में लड़कियों को शादी से पहले पीछे की ओर से छेदा जाता है । औरतों में गुदाने की प्रथा दुनियाँ में दूर-दूर तक पाई जाती है, शायद यह यौन-सम्बन्ध के कारण अपना महत्त्व रखती है ।

सामाजिक विचारधारा से गुदाना जातीय पहिचान या श्रेणी-भेद के कारण महत्त्व रखता है । यह विचार काफी आगे बढ़ा हुआ है । कुछ लोग तारों द्वारा शरीर पर जानवरों के चिन्ह गुदाते हैं । आज भी कुछ जातियों में जब तक लोग अपने शरीर पर कोई चिन्ह, जो उनकी जाति का है, नहीं रखते, तो वे लोग उस जाति के सदस्य नहीं समझे जाते । प्राचीन मनुष्यों में भी

शरीर पर चिन्ह बनाना व्यक्तिगत रूप से जाति या वर्ग की पहिचान मानी जाती थी। असभ्य व्यक्ति भी अपने शरीर को गुदाते थे और अपने को दुःख के चिन्हों से रँगते थे जो उनकी मृतक आत्माओं को संतोष प्रदान करते थे।

प्राचीन युग के लोगों के लिये गुदाना एक औषधि के समान था और अन्य अनेक बातों से रक्षा करने का महत्त्व रखता था। वे लोग इस गुदाने से समझते थे कि उनको किसी प्रकार का रोग नहीं होगा तथा अन्य सांसारिक भयों से उनकी रक्षा होगी। बुरी आत्माओं की आँखों के लिये यह आकर्षण का चिन्ह होता था और यह आँखों की ज्योति को दूर करने के लिये तथा दुश्मन के विरुद्ध रक्षा करने के लिये प्रयुक्त किया जाता था। वे लोग गुदाने से यह समझते थे कि दुश्मन उन पर आक्रमण नहीं कर सकता तथा कोई बुरी आत्मा उन पर निगाह नहीं डाल सकती। कुछ सभ्य और निम्न जाति के गोरे लोगों में भी कुछ भद्दे विचार प्रयोग में लाये जाते हैं। वे लोग प्रेम तथा पुरानी दोस्ती आदि के भावों का जन्म ही गुदाने से समझते हैं।

स्वास्थ्य की रक्षा करने के लिये शरीर पर प्राकृतिक चिन्ह गुदाने की प्रथा दूर-दूर तक देखी जा सकती है। इस प्रकार का गुदवाना दुख को दूर करने का कारण माना जाता है। जब अंडमन द्वीप के निवासी कछुए को खाते हैं, तो वे लोग स्वयं को रंगीन मिट्टी से रँगते हैं और सोचते हैं कि इस प्रकार रँगने से बुरी आत्मा उनके भोजन पर निगाह नहीं डाल सकेगी तथा उसका कोई प्रभाव नहीं होगा। बोनियो के सारावक लोग अपनी कलाई के चारों ओर ताड़ के वृक्ष की पत्ती लपेटते हैं और सोचते हैं कि इस प्रकार सुरक्षा करने से उनकी आत्मा उनके शरीर में रहती है। लेकिन यह पत्ती गिर जाती है, इसलिये वे लोग अपनी कलाई के चारों ओर ताड़ के वृक्ष की पत्ती का चिन्ह बना लेते हैं। सारवासिन के आयनू लोग अपने शरीर पर चेचक के चिन्ह बना लेते हैं। इससे वे लोग सोचते हैं कि उनको चेचक का रोग नहीं होगा क्योंकि वे स्वयं चेचक अपने शरीर पर रखते हैं। शरीर को गोदना तथा छेदना शायद उनके रोग दूर करने के विचार से सम्बन्धित है। शरीर को छेदना शायद रोग दूर करने का कारण माना जाता है। हम देखते हैं कि इस प्रकार का विचार अपने जीवन की रक्षा करने के लिये तथा अपने जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत करने के लिये काम में लाया जाता है। इस प्रकार के चिन्हों को धारण करने वाला अपने भाग्य को बढ़ाता है तथा यह उसको सामाजिक कीर्ति प्रदान करते हैं। इन चिन्हों को धारण करने वाला समाज में आदर पाता

है । समाज स्वयं उसका पक्ष करता है । ऐसी अनेकों ही धारणायें इस सम्बन्ध में प्रचलित हैं ।

इस प्रथा के उद्भव के सम्बन्ध में यह माना जा सकता है कि यह प्रथा निस्सन्देह बहुत प्राचीन है, क्योंकि गुदाई के चिन्ह मिश्र और सुमेरिया के लोगों में भी पाये जाते हैं । बँवेरिया के लोगों में भी इस प्रकार की गुदाई की बातें पाई जाती हैं । यूरोप में गौल की पिक्टिश जाति और ब्रिटेन के लोगों में रोमन लोगों द्वारा यह प्रथा जानी गयी थी । वे गुदाई के प्रसिद्ध कलाकार थे । रोम की एक कविता में ब्रिटेन के एक गुदाने वाले का जिक्र पाया गया है, जिसकी शकल भेड़िये की शकल के चित्र से गुदी हुई थी । मध्य अमरीका के मय वासी तथा प्राचीन मैक्सिको के निवासी भी अपनी शकल और शरीर को गुदाते थे । ऐसा ही पेरू में भी किया जाता था ।

सम्भवतः गुदाई का विकास प्रागैतिहासिक समय में उत्तरी अमरीका में हुआ था । यह यहाँ से ही, मिश्र, पौलिनेशिया, अमरीका, ब्रिटेन, गौल प्रदेशों में फैला । शायद ईसा से २००० वर्ष पूर्व यह प्रथा उत्तरी अफ्रीका से स्पेन में आई । प्रागैतिहासिक काल में यह प्रथा स्पेन की विस्के जाति के मध्य विकसित हुई जो कि उत्तरी अफ्रीका से यहाँ पर आये थे । ये लोग प्राचीन संस्कृति और मानव की हड्डियों में विश्वास करते थे ।

असभ्य जातियों का यौन-जीवन

हम लोग पितृसत्ता को मानते हुये इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि सारा शासन कुटुम्ब में पिता द्वारा किया जाता है। स्त्रियाँ अपने पति के आधीन रहती हैं। ऐसी दशा में हम यह सोच भी नहीं सकते कि इससे पूर्व संसार में कोई और प्रथा भी प्रचलित रही होगी। जो कुछ भी सभ्यता का विवरण हमारे पास सुरक्षित है, वह सब पिता या पति की प्रमुखता पर निर्भर है। करीब-करीब सभी प्राचीन रिवाज जिनको कि हम आज असभ्यता का चिन्ह कह कर पुकारते हैं, कुछ समय पूर्व, अपना कुछ और ही रूप रखते थे। वास्तव में, उस समय एक दूसरा ही जमाना था। तब कुटुम्ब में पिता के बजाय माता प्रमुख मानी जाती थी और कुटुम्ब की खोज पिता के बजाय माता के नाम पर होती थी। इसे ही आज हम मातृसत्ता के नाम से पुकारते हैं।

संसार के कुछ भागों में आज भी यह योजना काम में लाई जा रही है। यह कुछ वर्ष पूर्व ही बड़ी सावधानी के साथ परखी गई। असभ्य लोगों के ढंग और प्रथाओं का अध्ययन करने के लिये उनकी प्राचीन कहानियाँ तथा उनका इतिहास जितना सम्भव हो सका, एकत्रित किया गया। जीवन के प्रति उनके विचार, राज्य का विकास तथा उनकी सरकार का रूप आदि उनके जीवन के विकास को बताते हैं। घरों में उनके हथियारों, औजारों, घरेलू चीजों और सजावट के साधनों का भण्डार एकत्रित किया गया। मगर यह सभी इन लोगों के वास्तविक विश्वास, उनकी वास्तविक स्थिति और उनके परिचय की ओर हमें पूर्णरूप से नहीं ले जा सके। नृत्तत्व विशारदों ने प्राचीन समाज के लोगों के मध्य अपना समय व्यतीत किया। इन समाजों के लोगों की जानकारी के लिये काफी क्षेत्रीय कार्य किया गया और आज भी किया जा रहा है। ऐसे

आदमियों के मध्य रहने से उनकी भाषा बोलने और उनका विश्वास प्राप्त करने के लिये तथा यह देखने के लिये कि वे लोग किस प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं, ऐसी ही अनेकों महत्त्वपूर्ण बातें नृवंश विद्या के विद्यार्थियों ने एकत्र करके विज्ञान को काफी देन दी है और यह विज्ञान के रूप में जानी जाती है। यह सब समूह से सम्बन्धित है। कुछ विद्वान कहते हैं कि इसे वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता। विद्यार्थियों तथा नृवंश-शास्त्रियों ने इस विषय पर अनेकों ही पुस्तकें लिखी हैं। प्रोफेसर ब्रोनस्लोव मैलिनोस्की जो कि लन्दन विश्वविद्यालय में मानवशास्त्र के प्रोफेसर रहे, उन्होंने असभ्य युग पर एक बहुत ही कीमती पुस्तक संसार को प्रदान की, जिसमें असभ्यों का जीवन तथा राज्य सम्बन्धी विचार आदि बातों का वर्णन किया। इस लेखक ने ब्रिटिश न्यूगिनी द्वीप में ४ वर्ष व्यतीत किये। इस पुस्तक ने भी लेखक को विशेष महत्त्व प्रदान किया।

अपनी इस पुस्तक में लेखक ने उनके यौन-जीवन, कार्य-कलाप आदि अनेक बातों पर प्रकाश डाला है। उत्तरी ऑस्ट्रेलिया के इस द्वीप में आज भी मातृसत्ता बड़ी सख्ती के साथ मानी जाती है। यह कहना न होगा कि वंश-परम्परा, सामाजिक सम्बन्ध तथा अन्य बातें माता के द्वारा ही जानी जाती है। पिता अपने बच्चों का रक्षक नहीं माना जाता है। न्यूगिनी-निवासियों में यह प्रथा आज भी पाई जाती है। वे लोग यह ठीक प्रकार से नहीं जानते कि बच्चा किस प्रकार पैदा होता है। वे लोग इस सम्बन्ध में ऐसी बातें बताते हैं जो हमारे देश में झरबेरी की कहानियों से सम्बन्धित है।

एक बात जो वहाँ मानी जाती है वह यह है कि बच्चे की आत्मा को माता के पेट में नारियल की डलिया या लकड़ी की प्लेट के ऊपर रखकर लाया जाता है और बच्चे की आत्मा पेट में प्रवेश करती है, तब बच्चा पैदा होता है। ये आत्मायें स्वप्न में दिखाई देती हैं और अपना व्यौरा बताती हैं। कभी-कभी ये आत्मायें सम्बन्धियों की होती हैं जो कि 'तूमा' (paradise) जा चुके हैं। यहाँ के देशवासी ऐसा कहते हैं कि 'मेरी औरत स्वप्न में अपनी माता देखेगी जो उसके पास आती है। उसने अपनी माता की शकल स्वप्न में देखी, वह जागी और उसने कहा कि यहाँ पर मेरे लिये एक बालक है।' इसी बीच में बालक प्रकट होता है। दूसरी बात जो वे लोग मानते हैं वह यह है कि जब औरतें स्नान करने जाती हैं तो बच्चे की आत्मा जो समुद्र के अन्दर तैरा करती हैं, प्रवेश कर जाती हैं। वे स्त्रियाँ जो बच्चे पैदा करना नहीं चाहतीं, वे नहाने नहीं जातीं। जब कोई तूफान आता है तो किनारे पर पत्तियाँ, लकड़ी के टुकड़े,

तथा अन्य कूड़े के ढेर इकट्ठे हो जाते हैं, तब वे स्नान करने जाती हैं। ऐसा करने में वे सोचती हैं कि बच्चे की आत्मा पेट में प्रवेश नहीं करेगी और इन ढेरों के नीचे छिप जायेगी।

कुटुम्ब में पति अपना कोई भाग अदा नहीं करता। वह अपना कुटुम्ब बना कर नहीं रहता है। वह बच्चों के प्रति कुछ दिलचस्पी लेता है। वास्तव में वह उनके प्रति अपने ध्यान को लगा देता है तथा अपनी औरतों की तरफ वह ध्यान नहीं देता। यह आश्चर्यजनक न होगा कि बच्चे और पिता के बीच प्राकृतिक सम्बन्ध उचित समझा जाता है। यदि बच्चे की शक्ल अपनी माता या किसी अन्य रिश्तेदार से मिल जाती है तो यह एक अपराध समझा जाता है। किसी भी पुरुष का अपनी बहिन के समान होना एक बहुत बड़े अपमान की बात मानी जाती है। जो ऐसा कहते हैं और जिनके प्रति ऐसा कहा जाता है उन लोगों की इसमें बेइज्जती मानी जाती है। प्रो० मैलिनोस्की को एक बार दो भाइयों के पहिचानने में बड़ी परेशानियों का सामना करना पड़ा। इस टैबू का कारण खोजने में वह पूर्णरूपेण असमर्थ रहे।

मातृसत्ता का एक परिणाम यह होता है कि पुरुष अपने कुटुम्ब का लालन-पालन नहीं करते। कुटुम्ब में उनकी औरतें उन्हें बड़ा सुरक्षित बना देती हैं। स्त्रियाँ खाने को बड़े ही सुन्दर ढंग से सजाती हैं। स्त्रियाँ बहुत अधिक काम करती हैं। खासतौर से बागों में, जहाँ खाने के पदार्थ बहुत अधिक पैदा होते हैं, वे व्यस्त रहती हैं। वे खाना पकाने के अतिरिक्त जंगल से फल तथा जल के स्थानों से मछलियाँ भी इकट्ठी करती हैं। यही इनका मुख्य भोजन है। पुरुष के लिये भोजन बनाना आपत्तिजनक माना जाता है। अगर वह भोजन पकाता है तो यह एक बुराई है। कोई भी व्यक्ति अपने सिर पर भारी वजन नहीं ले जा सकता। स्त्रियाँ ही वास्तव में सारा कार्य करती हैं। पुरुष वजन को अपने कंधों पर ही ले जाते हैं जबकि स्त्रियाँ अपने सिर पर रख कर लाती हैं। हमारा यह मत है कि—मातृसत्ता का अवशिष्ट वहाँ पर अभी तक इसीलिये प्राप्त है कि स्त्रियों ने पुरुषों को वहाँ अधिकार नहीं दिये हैं। पुरुष समाज का पशु-अवस्था से स्त्रियों ने ही उद्धार किया था। बाद में जब वे धीरे-धीरे पुरुषों से काम कराने लगीं, तो स्वयं घर में बँध गईं और पुरुषों ने सत्ता हथिया ली। जब तक पुरुष को प्रजनन में अपना महत्त्व अज्ञात रहा, तब तक समाज में स्त्री की प्रमुखता रही। किन्तु जब उसे अपना महत्त्व ज्ञात हुआ, उसने 'लिंग-पूजा' प्रारम्भ की और स्त्री को 'क्षेत्र' यानी खेत कहना शुरू कर दिया,

जिसमें वह बीज बोता था। ध्यान रहे कि जिन मातृसत्ताक समाजों के दर्शन अब हो रहे हैं, वे अपने मूल रूपों से काफी परिवर्तित हो चुके हैं। अधिकतर मामलों में, स्त्रियाँ पुरुषों से समानता रखती हैं। लड़की और लड़कों के साथ समान व्यवहार किया जाता है। लड़ाई के समय ही एक दूसरे के साथ समानता में अन्तर आता है। किसी भी हालत में स्त्री का मजाक नहीं बनाया जा सकता। अगर स्त्री के प्रति पुरुष को अविश्वास हो जाता है तो पुरुष उसको मारने का अधिकार रखते हैं। लेकिन यह अधिकार बहुत कम प्रयोग में लाया जाता है। नियम के मुताबिक प्रत्येक मामला स्त्री और पुरुषों की मित्रता के द्वारा तय किया जाता है। सभ्य जातियों में शादी का प्रभाव बड़े और छोटे पैमाने पर पाया जाता है। एक चीज यह है कि स्त्री और पुरुष एक दूसरे के विचारों का आपस में बदला नहीं लेते। एक दूसरे को चूमना वे लोग नहीं जानते। इसी कारण उन लोगों में एक दूसरे के प्रति कोई आकर्षण नहीं है। अन्य लोगों के सामने एक दूसरे को काटा और नोंचा नहीं जा सकता। प्रेमी-प्रेमिका अन्य लोगों की उपस्थिति में प्रेम नहीं करते। जब एक शादी-शुदा जोड़ा बाहर जाता है तो वे लोग साथ-साथ भी नहीं जा सकते। एक, दूसरे के पीछे चलेगा। हाथ मिलाकर चलना तथा एक दूसरे को प्रेम करता हुआ कोई कभी भी नहीं देखा जा सकता। वे कभी-कभी आपस में बड़ी प्रसन्नापूर्वक बातें करते हैं।

उन लोगों की आदतें हम लोगों से बिल्कुल भिन्न हैं। द्वीप के निवासी चारित्रिक नियमावली भी रखते हैं। यूरोप और अमेरिका के मनुष्यों के लिये शादियाँ बड़ी ही अरुचिकर और खतरनाक दिखाई देती हैं। दूसरी तरफ हम देखते हैं कि एक जोड़ा अगर साथ-साथ भोजन करता है तो कोई बुराई नहीं समझी जाती। न्यूगिनी के जवान पुरुष और जवान स्त्रियों में अपना कुटुम्ब बनाने के पूर्व अनेकों ही अन्य अनुभव तय किये जाते हैं। सबको वे स्वतन्त्रतापूर्वक तय करते हैं, क्योंकि ऐसे कार्य उनके नित्य के जीवन में पाये जाते हैं। कोई भी चीज अनिच्छा-पूर्वक नहीं की जाती। अगर कोई लड़का और लड़की, जिनकी शादी नहीं हुई है, साथ-साथ भोजन करते हैं तो द्वीप के निवासियों को यह बात धक्का पहुँचाती है। उनका चरित्र सन्देहात्मक माना जाता है। एक दूसरे के साथ इस प्रकार खाना वास्तव में जन-साधारण में बहुत बुरा माना जाता है। इन असभ्यों के घरों में अपने भोजन की तश्तरी अलग ले जाकर स्वतन्त्रतापूर्वक खाने का एक फैशन है। किसी-किसी गाँव में इस प्रकार कतई नहीं खाया जाता। यूरोपियन देशों, इंग्लैंड तथा अमरीका में जवान स्त्री और पुरुष एक

दूसरे के गले में हाथ डालकर घूमते हुये दिखाई देते हैं। कभी-कभी पब्लिक स्थानों पर एक दूसरे को चूमते हुये भी देखे जा सकते हैं। और कभी-कभी इन चीजों से अधिक भी देखा जाता है। न्यूगिनी के लड़की-लड़कों में इस प्रकार का बर्ताव उन लोगों को पतन की ओर ले जाता है तथा जाति की नाराजगी का कारण माना जाता है। साथ-साथ रहना ठीक नहीं माना जाता। वे दिन में अपने माँ बाप के साथ रहते हैं, काम करते हैं तथा उनके साथ ही भोजन करते हैं। वे सिर्फ रात्रि को मिलते हैं और प्रातः होने पर फिर अलग हो जाते हैं। कोई-कोई बच्चे इन अस्थायी मिलापों से ही पैदा हो जाते हैं। इस प्रकार की बातों को रोकने के लिये प्रत्येक व्यक्ति चेष्टा करता है। बहुत कुछ कोशिश यह की जाती है कि मिलने से पहले उनकी शादी करदी जाती है। वे जब तक कोई सहयोगी प्राप्त नहीं करते तब तक बाट देखते रहते हैं और शादी होने के बाद वे लोग अपने घरों में प्रसन्नतापूर्वक रहना पसन्द करते हैं। शादी होने के बाद ही वे लोग अपना जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत करते हैं। कोई भी व्यक्ति विधुर नहीं रहता। सभी लोगों की शादियाँ हो जाती हैं। शादी से ऐसे लोग ही, जो बीमार हैं या किसी अन्य कारण से अयोग्य हैं, वंचित रह जाते हैं। विवाहित व्यक्ति ही जाति का सदस्य माना जा सकता है। कोई भी स्त्री और पुरुष, जब तक वे पति-पत्नी बनकर न रहें, साथ-साथ नहीं रह सकते। यद्यपि यूरोप के लोगों की दृष्टि में इस द्वीप के निवासी कुछ भी नहीं हैं, लेकिन वे लोग भी अपनी सुन्दरता के मापदण्ड के अनुसार अन्यो को घृणास्पद समझते हैं। भाग्य को बढ़ाने के लिये तथा अपनी शक्ल को सुन्दर बनाने के लिये वे लोग अनेकों ही जादूपरक बातें करते हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध बात यह है कि वे उत्सवों पर विशेष प्रकार का सफाई उत्सव मनाते हैं। इस उत्सव में वे सबसे पहले नारियल के तेल से स्नान करते हैं। यह उनकी खाल को भूरी और चमकदार बना देता है। फूलों के गुच्छे पहनते हैं और सुगन्धित पेड़ों की झाड़ियाँ लपेटते हैं। उनके प्रेम के कामों में व्यक्तिगत आकर्षण ही काम करता है। अगर जवान व्यक्ति अपने प्रेम के सम्बन्ध में किसी को वशीभूत करने में सफल नहीं होते, तो स्त्रियाँ अपना कार्य करती हैं और अगर वे सफल हो जाती हैं तो वे अपने प्रिय पर पूर्ण विजय समझती हैं।

जब शादी होती है तो सिवाय भेंट के परिवर्तन के और कुछ नहीं होता। लड़की के माता-पिता दूल्हे से पूछ कर कोई छोटी भेंट प्रदान करते हैं। इतना होने के बाद एक दिन लड़की अपने माँ-बाप के लौटने की बजाय सुबह उस लड़के के माँ-बाप के यहाँ जाती है। वहाँ वह अपना खाना खाती है, और

सारे दिन उसी के साथ रहती है। इससे सारा गाँव समझ जाता है कि उसने अपने जीवन का साथी (अच्छा या बुरा) चुन लिया है, तथा साथ रहने का इरादा कर लिया है। इतना होने के बाद वे पति और पत्नी के रूप में दिखाई देते हैं। अब अधिक भेंटें लड़की के माँ-बाप की तरफ से लड़के को दी जाती हैं, ताकि वह अपना घर बनाने में समर्थ हो सके। इस प्रकार शादी के लिये आपसी समझौते के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है। शादियाँ लड़की और लड़के के समझौते पर ही तय होती हैं।

जब पहला बच्चा होने वाला होता है तो इसी बीच में कपड़े आदि बनाने की तैयारियाँ की जाती हैं। यह सब सामान बच्चे के लिये नहीं होता जो बहुत समय तक कुछ भी नहीं पहिनता, बल्कि होने वाली माता के लिये ही यह सबकुछ तैयार किया जाता है। एक परम्परा के मुताबिक, एक पोशाक बड़ी सावधानी के साथ तैयार की जाती है जो कि मासिक धर्म-पोशाक के नाम से जानी जाती है। मन्त्रों द्वारा इसको जादूपरक प्रभाव प्रदान किया जाता है। सारी औरतें समुद्र, नदी या तालाब के किनारे इकट्ठी होती हैं। उन औरतों में से एक उस जवान स्त्री को पानी के अन्दर ले जाती है और एक सुन्दर खेल खेला जाता है। जमीन पर वापिस आने पर उसे नारियल की डोरों द्वारा मला जाता है। तथा उसके शरीर पर नारियल का तेल भी लगाया जाता है। उस औरत के गालों पर माता के रूप के आँसू टपकते हैं और लुढ़क जाते हैं, इससे उसकी चिकनाहट और मुलामियत की बात जाहिर होती है। उस स्त्री के बालों को कंधी से सुधारा जाता है और उनमें फूल लगा दिये जाते हैं। आखिर में अँगरखा पहना जाता है। यह तब तक नहीं त्यागा जाता जब तक कि इसका सूत और डोरा फट नहीं जावे तथा बहुत भद्दा न हो जाये।

शादियाँ होना जितना सरल है स्त्री का त्यागना भी उतना ही सरल है। अगर पति ऐसा करना चाहता है तो वह अपनी औरत को उसकी माता के घर भेज देता है। अगर उसकी माता जीवित नहीं है तो उसके चाचा के पास या अन्य रिश्तेदार के पास भेज देता है। अगर स्त्री अपना पति बनाना चाहती है तो वह अपनी स्वतन्त्र इच्छा से अपना पति बना लेती है। अगर कोई त्यागने की बात को दूर करना चाहता है तो वह कुछ भेंटें शान्ति के साथ भेजता है। अगर ये भेंटें स्वीकार करली जाती हैं तो शादी खत्म नहीं समझी जाती और स्त्री-पुरुष दोनों अपने घर वापिस आ जाते हैं। भेंटों को स्वीकार न करने का

मतलब यह है कि वे अलग होने ही चाहिएँ। तब प्रत्येक अपने नये साथी की खोज में रहता है। वे सारे बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं और पुनः नये अनुभव करना प्रारम्भ कर सकते हैं। अगर त्याज्य स्त्री पुनः विवाह कर लेती है तो उसका नया पति उसके लिये एक भेंट प्रदान करता है इसके बाद वह भेंट प्राप्त करना प्रारम्भ कर देता है जो उसकी स्त्री का दहेज माना जाता है। बच्चे सदैव अपनी माँ के साथ रहते हैं, क्योंकि वहाँ स्वभावतः यह बात मानी जाती है कि उनको दुनियाँ में लाने वाली वही है। इसीलिये उनके प्रति वही जिम्मेदार है। विधवा हो जाने के बाद स्त्रियाँ बहुत समय तक दुख मनाने के लिये बाध्य की जाती हैं। मरे हुये पति के रिश्तेदार इसकी देखभाल करते हैं जोकि कोई भी शिकायत करने के लिये तैयार रहते हैं तथा उसे बचाने के लिये वे धार्मिक तरीके से कोशिश करते हैं। गरीब घर की औरतें अपने को जितना संभव हो सकता है, अनाकर्षक बनाये हुए रहती हैं, उनका शरीर काली वैस्लीन से मला जाता है तथा वे अपने शरीर पर काला कपड़ा धारण करती हैं। वे किसी भी प्रकार का गहना धारण नहीं कर सकतीं। यह सब कार्य करने का मतलब यह है कि विधवा स्त्रियाँ पुरुषों के लिये अप्रसन्नता का कारण बनती रहें, ताकि वे अपने पति के साथ अनादर न दिखा सकें। द्वीप के निवासियों द्वारा ऐसा वर्णन किया गया है; लेकिन शायद वहाँ पर इससे भी कठिन रिवाज हों। मुर्दे सम्बन्धी प्रथाओं में यह दिखाई देता है कि प्राचीन रिवाजों को सम्भवतया त्याग दिया गया है। यह हो सकता है कि ये भूले जा चुके हैं। विधवा औरत के बाल भी काट दिये जाते हैं और उसका शरीर चर्बी से पोत दिया जाता है। तमाम पड़ोसी जोकि उस मुर्दा व्यक्ति के सम्बन्धी नहीं हैं इस असहनीय व्यवहार को विवश होकर सहन करते रहते हैं। उसके रिश्तेदार भी सदैव की भाँति बाहर नहीं आते-जाते। मृतक व्यक्ति के कुटुम्ब के सदस्यों द्वारा तथा उसकी जाति के लोगों द्वारा दुःख का कोई भी चिह्न नहीं दिखाया जाता, यद्यपि वे लोग कुछ दिनों या सप्ताहों तक, जब तक उसका शोक मनाया जाता है, उसमें भाग अवश्य लेते हैं। यह सबकुछ मृतक व्यक्ति के आदर हेतु किया जाता है। मृतक की लोथ गाढ़ने से पहले दो बार कब्र खोदी जाती है। फिर उसे शान्ति के साथ छोड़ दिया जाता है। पहले समय इसे बड़ी सावधानी के साथ देखा जाता है कि मौत में कोई जादू तो काम नहीं कर रहा है। दुबारा इस कब्र में से कुछ हड्डियों को बाहर निकाल लेते हैं। इन हड्डियों से ऐसा समझा जाता है कि विधवा अपनी गर्दन के चारों ओर इन हड्डियों का हार बनाकर पहिनेगी। इन हड्डियों को बड़ा सुरक्षित रखा जाता

है। जब तक शरीर मिट्टी में नहीं मिल जाता विधवा उसकी कब्र की देख-भाल करती है।

शव दफनाने के बाद उस गरीब औरत की सबसे बुरी जिन्दगी प्रारम्भ हो जाती है। वह एक छोटे से अँधेरे पिंजड़े में प्रवेश करती है और अपने रहने के लिये एक अँधेरा कोना तलाश करती है। वहाँ वह कुछ महीनों तक रहती है। किसी भी कारणवश वह बाहर नहीं आती, कभी भी वह पूजा की प्रार्थना नहीं बोलती और अपना खाना तक नहीं खाती। लेकिन दूसरे व्यक्तियों द्वारा उसके मुँह में खाना रखा जाता है। अगर कोई उच्च श्रेणी का मनुष्य मरा हो तो उसकी विधवा को कम से कम दो साल तक इस दुःख में रहना पड़ता है। इस सबका मतलब क्या है ? यह भ्रमात्मक है।

न्यूगिनी के असभ्य लोग अपने परम्परात्मक और धार्मिक मामलों में प्राचीन रिवाजों को ही मानते चले आ रहे हैं। वे लोग यौन-सम्बन्ध के बारे में अन्य विषयों की बजाय पूर्ण स्वतन्त्र हैं।

(हमारे मत में यह चित्र मातृसत्ता समाज का वास्तविक रूप नहीं है। इसमें धनी-दरिद्र का भी भेद है। आदिम समाज के समूह-जीवन में अलग-अलग घर भी नहीं थे। यहाँ विशेष बात देखने की यह है कि पितृसत्ता का उदय न होने के कारण 'पतिव्रत' का प्रश्न नहीं है। प्रजनन में पुरुष का भाग अज्ञात रहने के कारण यौन-जीवन पर किसी प्रकार के पाप-पुण्य का भार नहीं है। यद्यपि यौन-जीवन स्वतन्त्र है, फिर भी वहाँ व्यभिचार नहीं है, क्योंकि स्त्री 'भोग्य' नहीं है। इस समाज के लोग 'नैतिकता' पर बल देते हैं।)

पर्दा और उसका महत्त्व

सारा संसार अपनी प्रिया को प्रेम करता है और शायद संसार में इतना कौतुक किसी और चीज में नहीं देखा जाता जितना कि दुल्हन और उसके पर्दे के अन्दर देखा जाता है। शादी के समय पर 'पर्दा' का प्रयोग सिर्फ यूरोप में ही नहीं पाया जाता बल्कि यह चीन, बर्मा, कोरिया, मन्चूरिया, फारस और दूसरे देशों में भी पाया जाता है। किसी समय ये प्रथाएँ यूरोप में पर्दा धारण करने से सम्बन्धित थीं और इनका स्तर बहुत समय पहले से स्वीकार कर लिया गया है। कपोडेशिया में दुल्हन शादी के चालीस दिन तक पर्दा धारण करती है। चीनी लोगों में दूल्हा अपनी दुल्हन की शक्ल तब तक नहीं देख सकता जब तक कि वह लाल रेशम के पर्दे को, जिसे दुल्हन घर आने पर धारण करती है, हटा नहीं देता। इंग्लैंड में स्त्रियाँ पर्दा धारण करती हैं, और यह माना जाता है कि उनकी शादियों के उत्सव पर होने वाली बुराइयाँ इससे दूर हो जाती हैं। यद्यपि इसका मुख्य प्रभाव पूर्वजों की परम्परा से आया है।

दुल्हन का आवरण एक विशेष महत्त्व रखता है। प्राचीन लोगों में शादी के समय बुरी आत्मायें अपना प्रभाव दिखाती हैं तो विशेष सावधानी की आवश्यकता, शादी की खुशी को बनाये रखने के लिये आवश्यक है। मोरक्को की अरब जाति में दुल्हन के साथ विशेष सावधानियाँ रखी जाती है। वह जब अपने घर को ले जाई जाती है तो बहुत ही घना आवरण डाल दिया जाता है। ऐसा समझा जाता है कि 'नाक' बुरी आत्माओं से डरती है तथा ऐसे समय पर पति के मित्रों की निगाह से उसकी रक्षा की जाती है जो उसके लिए खतरनाक सिद्ध हो सकती है। कैथोलिक स्त्रियाँ जब तक वे चर्च के अन्दर नहीं

जिलों में ऐसी होड़ें होती हैं। गाँव की सराय या बड़े फार्म के रसोईघर में, आनन्द की घड़ियों में, ये नृत्य देखे जा सकते हैं।

भारत की मैना गूजर जाति तथा अन्य कबीला जातियों में तो भिन्न-भिन्न प्रकार के नृत्य आज भी होते हैं, किन्तु शिक्षित वर्गों में नहीं होते। बल्कि यह कहना उचित होगा कि जिन जातियों पर नागरिक जीवन की छाया पड़ चुकी है या जिनको हिन्दुओं या मुसलमानों का उच्च वर्ग कहा जाता हो, उनमें से सामूहिक नृत्य हट गया है।

दुष्ट तथा अन्य आत्माओं के नृत्य

यह ठीक है कि आज के सभ्य समाज में रहने वाले मानव के लिये इससे अधिक मूर्खतापूर्ण बात क्या हो सकती है कि वह यह विश्वास करे कि बीमारियों को, भूत या दुष्ट आत्माओं-जैसा वेश धारण कर नृत्य करने से, दूर किया जा सकता है। मगर यह विश्वास और इस विश्वास के अनुसार नृत्य करने की यह क्रिया आज भी पूर्वी तिब्बत, भारत, लंका आदि अनेक देशों में प्रचलित है। इन देशों में रहने वाले सभ्य और अर्द्ध-सभ्य इस प्रकार लगभग सभी लोग अभी भी इन बातों में पूर्ण और अपूर्ण रूप से विश्वास करते चले आ रहे हैं। इसीलिये आज के मनीषियों को इस सम्बन्ध में सोचने और समझने के लिये बाध्य होना पड़ता है; क्योंकि वे यह जानना चाहते हैं कि क्या यह विश्वास एक ढकोसला है अथवा इसके पीछे कोई सत्य भी छिपा है।

ऊपरी तौर पर देखने से तो यह विश्वास और इस विश्वास के सहारे चलने वाली क्रियाएँ एक खिलवाड़-सी प्रतीत होती हैं; मगर जब हम इनकी गहराइयों में उतरते हैं तो यह देखकर हमें महान् आश्चर्य होता है कि इनमें से बहुत-सी आज के ऊँचे-से-ऊँचे मनोविज्ञान और औपधि-विज्ञान के सर्वोच्च स्तर पर अपना आसन जमाये बैठी हैं। बहुत से मामलों में हमें इनके द्वारा आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त होती है। इसलिये यह आवश्यक है कि दुष्टात्माओं की प्रकृति और इसी किस्म के अन्य नृत्यों को समझने के लिये हम सभी के मूलभूत सिद्धान्तों की ओर विशेष ध्यान दें। उनको अलग-अलग करके समझें। इन सभी के पीछे विश्वास एक ही कार्य कर रहा है, मगर ढँग सबके अपने-अपने और अलग-अलग हैं।

इस विश्वास के अनुयायियों में आमतौर पर यह समझा जाता है कि बीमारियाँ दुष्टात्माओं के कारण होती हैं, जोकि मरीज से सम्बन्ध रखती हैं। नृत्य करने से दुष्ट आत्मा भाग जाती है और मरीज अपनी इच्छा की पूर्ति करता है। नाचना सिर्फ दुष्ट आत्माओं को दूर ही नहीं करता, वह धर्म के विधान को भी मानता है।

जिन लोगों के बारे में हम यहाँ वर्णन कर रहे हैं, उनकी संस्कृति बहुत साधारण है। न तो वे बच्चे हैं और न वे मूर्ख हैं। यद्यपि कुछ लेखक उन लोगों के बारे में कहते हैं कि उनकी मानसिक प्रवृत्ति बच्चों जैसी होती है और उन लोगों में यह स्वीकार किया जाता है कि दवाओं से लोगों को असफलता मिलती है। लगातार असफलताओं ने बड़े बुरे परिणाम निकाले हैं। इनके परिणाम वैद्य लोगों के लिये बुरे रहे हैं। इस किस्म के धार्मिक नृत्यों के बारे में यह माना जाता है कि ये बहुत प्राचीन युग से चले आ रहे हैं। इस सम्बन्ध में सबसे प्रथम घटना जोकि ५०० ई० पू० से पहिले की है, चीन से सम्बन्ध रखती है। वू-तू जो कि विशेष रूप से इन आत्माओं के नृत्यों के लिये प्रसिद्ध था वह १८० ई० पू० में मौजूद था। मार्कोपोलो जोकि एक वेनिस-वासी यात्री था उसने इसी प्रकार के एक नाच का जिसको कि १३ वी शताब्दी में देखा था वर्णन किया है। कहा जाता है कि कुछ किस्म की बीमारियाँ इस उत्सव के बाद मुश्किल से ही बची रहती हैं। इसमें नृत्य ही काम नहीं करता बल्कि प्रस्ताव भी काम करते हैं। बहुत-सी किस्म की बीमारियाँ प्रस्ताव तथा उपायों द्वारा दूर की जा सकती हैं, लेकिन विशेषकर दिमागी इलाज जोकि इस सम्बन्ध में कार्यान्वित किये जाते हैं, सफल होते हैं। हमारी मौजूदा परिस्थितियों से केवल इतना ही ज्ञात होता है कि आत्मायें जब किसी पर अपना प्रभाव दिखाती हैं या कोई व्यक्ति दुष्ट आत्माओं के प्रभाव में आता है तो ऐसे व्यक्ति जो आत्माओं को जानते हैं उन्हें दूर करने में काफी मदद देते हैं। कुछ मामलों में दौरा पड़ने का रोग और अन्य ऐसे ही रोगों का प्रभाव हो तो बड़ी विकट परिस्थिति पैदा हो जाती है। ऐसी घटनायें संसार में पाई जाती हैं। प्राचीन सभ्य लोग ऐसे रोगों को मानसिक भ्रमात्मक प्रभावों द्वारा ही दूर करते थे। भारत में भी भूत-बाधा मानी जाती है। ऐसे समय पर मलय लोग बड़ी तेजी से दौड़ते हैं। इस मौके पर जिससे मिलते हैं उसे मारते हैं और उसके परिणाम का सामना करते हैं। कुछ आदमियों में ऐसा पाया जाता है कि जिसको आत्मा ने मारने का इरादा कर लिया है उसका छुटकारा असंभव माना

जाता है। उसकी बीमारी के दिन और प्रत्येक घटना ठीक-ठीक उतरेगी ऐसा विश्वास किया जाता है।

यह पूछा जा सकता है कि नृत्य बीमारी को दूर करने में क्या प्रभाव दिखाता है? हम यहाँ पर पुनः उस बात को बताने की कोशिश करेंगे कि नृत्य ने धर्म के इतिहास में काफी कार्य किया है और बीमारी को दूर करने में काफ़ी सहायता की है। यहाँ संक्षेप में यह बता देना काफी है कि कुछ किस्मों के नृत्य अपना काफ़ी प्रभाव दिखाते हैं। भारत में भी जादूपरक नृत्य होते हैं। जादू से साँप का जहर उतार दिया जाता है। जो लोग साधारण विचारधारा के हैं उनमें नृत्य मानसिक प्रभाव पैदा करते हैं। वे काम-भावना को उत्तेजित करने का भी कार्य करते हैं। अधिक प्रसन्नता पैदा करने वाला नृत्य, डोनीसस था। दिमागी कमजोरी में प्रभाव बड़ा महत्वपूर्ण होता है। रूस की धार्मिक जातियों में और अमेरिका के शाकर लोगों में नृत्य बहुत आनन्ददायक परिणाम को जन्म देता है।

प्राचीन लोगों में हिस्टीरिया, मिर्गी और अन्य ऐसे ही दिमागी हलचल पैदा करने वाले रोग कभी-कभी मनुष्य में हँसी पैदा करने वाले शारीरिक नसों से सम्बन्धित रोग होते थे। इनकी असाधारण अस्पष्टता कभी-कभी व्यापक रोग बन जाती थी। अफ्रीका में ऐसे अनेकों ही मामले देखे गये। ऐसी घटनायें अनैच्छिक मामलों जैसी समझी गईं। साइबेरिया के सैमन लोग तथा अन्य स्थानों पर विशेषकर मलय प्रायद्वीप, इन्डोनेशिया और पैसिफिक द्वीपों में लोग स्वेच्छा से नृत्य करने के आदी हो गये हैं। वे अपनी इच्छापूर्वक तब तक नाचते रहते हैं जब तक कि वे एक जादूनुमा क्षेत्र के प्रभाव में आकर गिर न जायें। जो लोग कोमल होते हैं वे इस नृत्य में वेहोश होकर गिर जाते हैं। लंका की एक जंगली जाति वेहा लोगों में एक वैद्य होता है जिसका कार्य नाचना होता है। इन प्रार्थना सम्बन्धी नृत्यों में आत्माओं की पूजा की जाती है लेकिन जाति के अन्य साधारण सदस्य भी इन नृत्यों में भाग ले सकते हैं। फिर वे भी एक मिर्गी की मूर्च्छा जैसी हालत में गिर जाते हैं।

जिन लोगों में नृत्य पर विश्वास किया जाता है और जो किसी एक प्रकार का नृत्य करते हैं उनमें आत्मविभोरता आ जाती है। वास्तव में नृत्य देवदूतों की पूजा करने वालों और जादूगरों द्वारा एक विशेष ढंग से किया जाता है जिसमें आत्मायें जादूपरक कार्यों द्वारा उनके शरीर में प्रवेश कर जाती हैं तब वे लोग उस आत्मा की शक्ति से भर जाते हैं और वह उन्हें

जिस बीमारी को वे दूर कर रहे होते हैं, उसे हटाने में अयोग्य बना देती हैं। वे लोग इस आत्मा को बीमार के शरीर से भगाते हैं। अगर मरीज को एक निश्चित अवस्था में है तो प्रसन्नता के प्रभाव के द्वारा उसे गिराया जाता है और दुष्टत्मा उसे छोड़ देती है। कभी-कभी मरीज की ऐसी हालत होती है कि सिर्फ उस आत्मा की नकल ही काफी होती है। इसलिये मैडागास्कर में जब कोई व्यक्तिगत नाच आरम्भ करता है तो गाँव के अन्य लोग चारों ओर एकत्रित हो जाते हैं और नकल करते हैं। इससे रोगी को आराम मिलता है।

उत्तरी-पूर्वी रोडेशिया के बेथोन्गा लोगों में यह उत्सव पाया जाता है। उन लोगों में आत्मा का प्रभाव बड़ा ही व्यापक है। यह नृत्य दुख पैदा कर देता है, और शायद नाचने में बेहोशी भी ला देता है। ऐसा होना आत्माओं के प्रभाव के कारण माना जाता है। खासतौर से जूलू आत्मयें बेथोन्गा लोगों में तब प्रवेश कर जाती हैं जब वे जूलू देश को पार करते हैं। वे लोग उस देश की खानों में मजदूरी करते हैं। जब वे लोग लौटते हैं तो दुष्ट आत्मयें उन पर आक्रमण कर देती हैं। भूत प्रेत को दूर करने का उत्सव कभी-कभी ६-१० दिन तक चलता रहता है। मरीज एक झोंपड़ी में बैठ जाता है जो कि भूत प्रेत भगाने वालों से घिरी रहती है। वे अपने नगाड़ों को बजाते हैं, खटाखट का शब्द करते हैं और इस विचार से गाते रहते हैं कि आत्मा का नाम मरीज के मुँह से उच्चारित होगा। सफलता-पूर्वक इलाज करने के लिये आत्मा का नाम जानना बहुत आवश्यक होता है। जब आत्मा बोलती है तो उससे पूछा जाता है कि वह क्या चाहती है। कभी-कभी उसका जवाब 'खून' होता है अर्थात् वह आत्मा 'खून' चाहती है। तब एक बकरी माँगाई जाती है। जब सारी धार्मिक क्रियायें पूर्ण हो जाती हैं तो मरीज जागता है और अपनी इच्छा से नाचता है। उसका यह नृत्य उसके गिर जाने पर समाप्त होता है। वह ऐसी हालत में गिरता है कि कभी-कभी उसके गहरी चोट आ जाती है। वे चोटें ऐसी होती हैं जैसी कि अग्नि की लपटों में गिरने से आती हैं। जब वह ऐसी हालत में होता है तो आत्मा उसे त्याग जाती है। अगर वह खून माँगती है तो मनुष्य अपनी इच्छा से बकरी का खून चूसता है और जब मरीज को वमन होती है तो आत्मा अलग हो जाती है।

मरीज के मुँह से आत्मा का नाम बुलवाया जाता है। यह जादू के सिद्धान्त द्वारा किया जाता है। नाम का ज्ञान उस नाम के मालिक पर विजय प्राप्त करने के लिये शक्ति प्रदान करता है। नगाड़ों को पीटना तथा खटाखट

का शब्द करना और अन्य वाद्य-यन्त्रों को बजाना जादूपरक सिद्धान्तों के अनुकूल होता है। उन वाद्य-यन्त्रों की आवाज उस आत्मा के प्रभाव को दूर करने की शक्ति रखती है, इसलिये चर्च की घन्टी भी प्रयोग में लाई जाती है। ऐसे उत्सव में साइबेरिया के सेमन लोग जादू के नगाड़े, धातु की बनी झाँझ और घंटियाँ (जो कि उनकी पोशाक में लटकी रहती हैं) बजाते हैं। पश्चिमी सूडान के लोगों में भी भूत-प्रेत को अपसरण करने के सिद्धान्त होते हैं। जब कोई आत्मा प्रभाव दिखाती है तो सूडान के लोग एक वाद्य-यन्त्र पर गाते हैं। यहाँ प्रत्येक रोग के लिये अलग-अलग वाद्य-यन्त्र काम में लाये जाते हैं, जो कि उसके नाम को वर्णित कर देते हैं। जब ऐसा पद संगीत द्वारा गाया जाता है जिससे कि आत्मा हट सके तो मरीज हँसते-हँसते गिर जाता है और आत्मा उसे छोड़ जाती है।

अब हम नाचने की उस किस्म की ओर आते हैं जिसका कि मुख्य उद्देश्य दुष्ट आत्माओं को हटाना होता है। आत्मा को उभाड़ने के लिये अचेतनता पैदा की जाती है। बोर्नियो के पुनान लोगों में वैद्य, जब तक कि वह बहुत जोश की हालत में न आ जाये नाचता है। और तब वह दुष्ट आत्मा से तलवार से लड़ता है। वह अपने मरीज के शरीर से आत्मा को खींच लेता है। कभी-कभी इतना जोश पैदा होता है कि मरीज खड़ा हो जाता है और दूसरी ओर नाचने लग जाता है। मरीज और वैद्य इस समय साथ-साथ नाचते हैं और वैद्य उसे तब तक नचाता है जब तक कि वह गिर न जाये। लंका के वेदा लोगों में ऐसा किया जाता है। वहाँ इलाज करने वाला आत्मा को लोगों की भेंट स्वीकार करने के लिये पुकारता है। और वह आत्मा ऐसा करती है। वह उनसे यह कहती है कि वह शिकार में भी उनकी मदद करेगी और वहाँ भी मदद करेगी जहाँ खेल खेले जाते हैं। एक नाव जो मृत्यु के पाँचवे दिन होता है उसमें आत्मा नाचने वालों से कहती है कि यहाँ बहुत से जिमीकन्द हैं और शहद भी है। यहाँ तीर का प्रयोग भी बीमारी को दूर करने के लिये होता है। जब कोई शेमन बीमारी को दूर करने के लिये नाचता है, तो वह एक डलिया में गले के हार के कुल दाने, चूड़ियाँ और किसी पेड़ की पत्तियाँ रखता है। जैसे ही शेमन भूत-ग्रस्त होता है तो वह डलिया को मरीज के सिर से ऊपर उठाता है।

वेदा लोगों में यह कहा जाता है कि एक औरत जब किसी आत्मा के साथ मिलती है तो वह शेमन के से कार्य करती है। साइबेरिया और बोर्नियो में भी शेमन औरतें होती हैं। मेलानेस लोगों में दूसरों की सहायता करने के लिये

औरतें भूतों से शक्ति प्राप्त करती हैं। वे वैसे ही कार्य करती हैं जैसे कि नाच का मुखिया करता है। जिसे मरीज की झोंपड़ी में ले जाते हैं। इस मौके पर वह समझ में न आने वाली भाषा भी उच्चारित करता है। जब वह औरत हवा में बातों को उड़ाती हुई पागल सी होकर नाचती है तो दूसरी औरतें मरीज के चारों ओर अर्ध-चन्द्राकार परिधि सी बनाती हैं। तब वह जादूगरनी प्रत्येक के चारों ओर घेरा लगाती है, जब तक कि सभी औरतें बेहोश होकर न गिर जायें।

आस्ट्रेलिया में 'मोलोंगा' बड़े अच्छे ढंग से किया जाता है, क्योंकि वहाँ ऐसा विश्वास है कि अगर मनुष्य की मृत्यु पर कोई त्रुटि हो जाती है तो 'मोलोंगा' दण्ड देगा और स्त्री और बच्चों को ले जायगा। नृत्य पाँच रात्रि तक चलता रहता है। पहली चार रात्रियों में यह समझा जाता है कि पाँचवी रात्रि की तैयारी की जा रही है। इस रात्रि को 'मोलोंगा' स्वयं प्रकट होता है। वह बिना किसी चेतावनी के दौड़ता है और स्वयं को चर्बी और लाल रंग से छिपा लेता है। 'दुष्ट नाच' पूर्वी देशों में बड़ी दूर-दूर तक पाया जाता है। यह काफी प्रसिद्ध है। यह चीन, तिब्बत और लंका में पाया जाता है। तिब्बत में लामा मनोरंजन करते हैं। नृत्य करने वाले अपना वेष बदल लेते हैं तथा मास्क धारण कर लेते हैं। जो संसार में नहीं हैं उनका वे प्रतिनिधित्व करते हैं। इन नृत्यों में वेष बदलना तथा चेहरा (मास्क) धारण करना एक विशेष महत्त्व रखता है। जब उत्तरी पश्चिमी ब्राजील के लोग इन चेहरों को धारण करते हैं तब वे अपने नृत्यों में राक्षसों को उपस्थित करते हैं जो कि उस चेहरे के अन्दर छिपा रहता है।

मलावार में भूतों को नाचकर भगाया जाता है। यह नृत्य नायर लोगों में पाया जाता है। आमतौर पर एक औरत बीमार होती है और वह राक्षस से घिरी रहती है। वहाँ का नृत्य 'कोलम' या 'ओटम थुलाल' कहलाता है। इस नृत्य के खर्च में पूरा गाँव भाग लेता है। इसको करने वाला वैद्य होता है जिसके साथ बारह आदमी और लगे रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति एक चेहरा धारण किये होता है। रात्रि को मरीज अपनी माता के साथ नाच-घर के सामने बुलाया जाता है। सारा गाँव वहाँ एकत्रित हो जाता है और मरीज वहाँ पर अकेला रहता है तथा कभी-कभी माता भी साथ में बैठी रहती है।

दक्षिणी कनारा में लोग अपने बालों को स्वतन्त्रतापूर्वक बढ़ाते हैं ताकि वे नाचने में अच्छी तरह फँस सकें। इस रिवाज से सम्बन्धित नृत्य भारत में

भी किये जाते हैं। इस नाच में मुख्य बात होती है कि एक सुन्दर धातु की कढ़ी हुई तलवार होती है, जो कि नाचने के समय घुमाई जाती है। यह नृत्य रात के ९ बजे मुख्य भूत का अपसरण करने वाले के साथ आरम्भ हो जाता है। वह भूत के कार्यों की नकल करता है। यद्यपि वह नकल करता है लेकिन पूरी तरह से भूत उसके प्रभाव में नहीं आता। यह कार्य मुखिया के लिये छोड़ दिया जाता है जो सबसे निम्न जाति का होता है। वह एक वस्त्र पहिने नंगे बदन नाचता है। उसकी शक्ल रंगों से रंग दी जाती है और वह एक धातु का बना हुआ बनावटी चेहरा धारण करता है। वह जब तक कुछ मूर्छित अवस्था में न आ जाये तब तक टम-टम की सी आवाज वाले वाद्य यन्त्रों को बजाता रहता है और देखने वाले शोर किया करते हैं।

हम इस दुष्ट आत्मा के नृत्य के उद्भव की ओर देखते हैं तो पूर्व चीन में भी दुष्ट आत्माओं के प्रति बड़ा ही व्यापक विश्वास पाया जाता है। वहाँ भी दुष्ट आत्मा के प्रभाव का नृत्य बड़ा ही प्रसिद्ध है, जोकि चीन में दो हजार वर्ष से चला आ रहा है। इस प्रकार 'दुष्ट आत्मा का नृत्य' पूर्वी देशों में बहुत अधिक प्रचलित है। भिन्न-भिन्न किस्म के नृत्य पूर्वी देशों में पाये जाते हैं। इनके द्वारा बीमारियों का इलाज किया जाता है। लोगों के दिमाग पर इन नृत्यों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है।

राईहन के मतानुसार ये बर्बर और असभ्य लगने वाली पद्धतियाँ अध्ययन करने योग्य हैं। इनमें मनुष्य जाति के वे अनुभव संचित हैं, जिन्हे सभ्यता की कृत्रिमता नष्ट कर चुकी है।

बीमारी के भूतों को भगाना

प्राचीन लोगों और आज के सभ्य लोगों में भी यह विश्वास किया जाता है कि मृत्यु और बीमारियाँ प्राकृतिक कारणों से होती हैं। बीमारियों के पीछे कोई न कोई प्राकृतिक बात अवश्य छिपी रहती है। गत शताब्दी के आरम्भ में जब कि मिशनरियों के कार्य असभ्य द्वीपों में बहुत बढ़ चुके थे तो रोमन देशवासी विदेशी अध्यापकों को अपने देश में आने नहीं देते थे, क्योंकि उनके अनुसार विदेशी लकड़ी बीमारी का कारण होती थी और उसकी बनी नाव में अन्य आत्मायें आ जाती थीं, जिनका उनके विरुद्ध होना आवश्यक था। दक्षिणी अफ्रीका में इस प्रकार की अनेकों ही कठिनाइयों का सामना यूरोपवासियों को करना पड़ता था। वहाँ खानों में काम करने वाले मजदूरों के लिये बड़ी कीमत अदा करनी पड़ती थी, क्योंकि वहाँ के लोग यह विश्वास करते थे कि वे लोग अगर खानों में काम करेंगे तो दुष्ट आत्मायें उन पर भयंकर आक्रमण कर देंगी।

पिछड़े हुये लोगों में, मजदूरों में यह विश्वास था कि वे बीमारी के आक्रमण के शिकार होंगे और इसके बड़े भयंकर परिणाम होंगे। प्राचीन लोगों में बीमारी के सम्बन्ध में यह माना जाता था कि जादू के द्वारा जो चीज शरीर में प्रवेश करती है उससे कुछ न कुछ हानि अवश्य होगी।

जब हम व्याधि दूर करने के ढँगों को प्राचीन लोगों में देखते हैं, तो जादूपरक विश्वास ही अधिक कार्य करता हुआ दिखलाई देता है। प्राचीन चिन्तन की पूर्व अवस्था के विचारानुसार बीमारी जादू के द्वारा पैदा की जाती है। खास तौर से आस्ट्रेलिया में यही माना जाता है। प्राचीन लोगों की दुनियाँ में यह माना जाता है कि प्रत्येक आदमी जिस कार्य या जिस चीज के बीच में

जाता है, वे सभी ईश्वरीय शक्ति रखती हैं। इस प्रकार वे लोग धातु व अन्य चेतन चीजों में भेद भी नहीं कर पाते थे। लेकिन बीमारियों के बारे में यह विश्वास किया जाता है कि वे पत्थर के निकास, हड्डी या अन्य पदार्थ (जो कि शिकार के शरीर से सम्बन्ध रखते हैं) के कारण होती हैं। खास तौर से यह माना जाता है कि इन चीजों की आत्मा शरीर के अन्दर प्रवेश कर जाती है। इनकी शरीर में उपस्थिति ही बीमारी को घुमाती रहती है। शायद वे आत्मायें शरीर के अन्दर धातुमय प्रभाव दिखाती हैं। अगर चीजों के बीच कोई चमकदार पत्थर प्राप्त हो जाता है तो बीमारी का कारण उसे ही समझा जाता है। आस्ट्रेलिया में इनाम की सबसे अच्छी चीज वैद्य का थैला समझा जाता है और उसका परिचय उसके शरीर में चमकदार पत्थर रख कर दिया जाता है। सब बातें वैद्य स्वप्न में देखता है। यह समझ लिया जाता है कि वैद्य ने सारी शक्ति प्राप्त कर ली है। परिणामतः जब बीमारी होती है तो यह समझा जाता है कि वह चमक वाला पत्थर ही उस वैद्य का दूत है तथा उसी ने सबकुछ बताया है।

डेरी जाति के लोगों में बीमारी का कारण विचित्र ढंग से माना जाता है। अगर किसी व्यक्ति का कोई दुश्मन है और वह व्यक्ति उस दुश्मन से बदला लेना चाहता है तो वह एक लकड़ी या हड्डी ले ले। अगर वह हड्डी किसी मानव की है तो बहुत ही अच्छा है। यह एक फुट लम्बी होनी चाहिये और उसके एक सिरे पर कुछ चिन्ह बना होना चाहिये। इस हड्डी के दूसरे किनारे पर साही घास लगी होनी चाहिये। अब जिस किसी को हानि या लाभ पहुँचाना है अगर हो सके तो उस पात्र के बाल या अन्य उस से सम्बन्धित और कोई चीज प्राप्त कर लेनी चाहिये। तब किसी झाड़ी के पास जाकर साधक को उस हड्डी को कन्धे के ऊपर उठाकर जिस दिशा में उसका दुश्मन रहता है उस ओर कई बार इशारा करना चाहिये। बस, उसका शत्रु बीमार हो जायगा और अगर उसे बहुत अधिक शक्तिशाली जादू द्वारा ठीक नहीं किया जायगा तो वह ठीक नहीं होगा और मर जायगा।

हड्डियों को अनेकों ढंगों से बनाने के ढंग प्रचलित हैं। इनमें से अनेक महत्त्वपूर्ण हैं। आस्ट्रेलिया के लोगों का इलाज करने का ढंग जहाँ पर कि यह हड्डी प्रयोग में लाई जाती है ऐसा ही है। लेकिन यह सभी जातियों द्वारा काम में नहीं ली जाती है। इस प्रकार के इलाज करने में मरीज जमीन पर लिटा दिया जाता है और मन्त्र बोल कर उसके शरीर में सन्देश भेजा जाता है तथा

उसे मजबूती के साथ दबाया जाता है। फिर शरीर से मुँह लगा दिया जाता है। साधक बड़ी तेजी से चूसता है तथा वह अपने मुँह से रोगी के शरीर को खींचता है। इस प्रकार के अनेकों ही ढंग देश की विभिन्न जातियों में प्रचलित हैं।

कभी-कभी यह समझा जाता है कि वह कोई धातुमय पदार्थ नहीं होता जो शरीर के अन्दर प्रवेश करता है। उत्तरी पश्चिमी आस्ट्रेलिया में बीमारियाँ बुरी आत्माओं द्वारा फैलती हैं। ऐसा माना जाता है कि ये पड़ोसियों द्वारा या अन्य गन्दी जातियों द्वारा भेजी जाती हैं। इनको ही वह सयाना अपने मुँह से चूसता है और अपने हाथ से पकड़ ले जाता है तथा उन दुष्ट आत्माओं को वह बड़ी सावधानी के साथ जमीन में गाड़ देता है। तब वह लौटकर आता है और मरीज के शरीर में अच्छी आत्मा प्रविष्ट कराता है।

न्यूगिनी और मैलेनेशिया में भी यह विचार दृढ़ है। वहाँ भी बीमारियाँ बुरी आत्माओं द्वारा फैलाई जाती हैं। ये गन्दी आत्मायें इन देशों में देखी जा सकती हैं। ऐसा वहाँ के लोगों का विश्वास है। न्यूहेब्रिडोज में बीमारियाँ बाण द्वारा फैलती हैं। अगर किसी तीर में कोई चमकदार धातु लगी हुई होती है तो वह बीमारी को फैलाने वाली समझी जाती है। पपुआ और गेलेरिया में भी यही माना जाता है। रोग भेजना भी एक किस्म मानी जाती है। यह एक छाया है जो स्त्री के पास रहती है और रोगी के शरीर के लिये भेजी जाती है। मृत्यु के समय यह उसकी आत्मा के साथ जाती है। एक छिलके के द्वारा रोगी का शरीर सामने की ओर से रगड़ा जाता है।

मैक्सिको के ह्यूकोल इन्डियनों में एक उत्सव पाया जाता है। इसमें सयाना अपने हाथों को अनेकों ही बार जैसे मानों वह साफ कर रहा है रगड़ता है। फिर बहुत शीघ्र अपनी अँगुलियों को एक दूसरी से मिला लेता है, जिससे उसे एक बड़ा धक्का लगता है। ऐसा वह अपने पास अग्नि होने के कारण करता है। तब वह अपने हाथों के ऊपर ही साँस लेता है तथा हाथों को मिला कर पकड़ लेता है और उन पर धूकता है। तब वह उन्हें दक्षिण, उत्तर, पश्चिम और पूरब और जमीन की तरफ करता है और वह मरीज के जिस हिस्से में दुःख होता है उस भाग को ओर अपना मुँह लगा देता है। वह गल-गल की आवाज करता है और बीमारी को चूसता है तथा पत्थर और अनाज के रूप में बीमारी को बाहर निकाल देता है। उसके बाद खाँसता है। वे अनाज के दाने या तो जला दिये जाते हैं या दूर जमीन पर फेंक दिये जाते हैं और हवा

उन्हें उड़ा ले जाती है। तब वह बड़े जोर-जोर से साँस लेता है जैसे मानो वह बीमारी को दूर भगा रहा हो। इसी प्रकार का उत्सव प्राचीन मैक्सिको में किया जाता था लेकिन वहाँ का पुजारी एक प्रकार का द्रव्य काम में लाता था। पहले वह उसे अपने मुँह से चूसता था और बाद में उसी से मरीज का शरीर रगड़ा जाता था।

बीमारियों के सम्बन्ध में यह विश्वास है कि वे धातु से लेकर आत्मा तक से फैलती हैं। आत्मा के प्रभाव को दूर करने के लिये, शरीर की शुद्धता के लिये एक उत्सव किया जाता है। यह उत्सव धातु के एजेन्टों के द्वारा किया जाता है जैसे अग्नि, धुआँ, पानी इत्यादि। इनके शरीर की सफाई की जाती है। यहाँ पर बीमारियाँ भूतों के या अन्य दुष्ट आत्माओं के कारण रहती हैं। बाद में पता चलता है कि यह भूत या तो अपने कुटुम्ब का सदस्य होता है या कोई पुरखा होता है या कोई विदेशी होता है। असभ्य लोग इसी कारण से आगन्तुकों के प्रति अच्छा व्यवहार नहीं करते थे, क्योंकि वे सोचते थे कि वे लोग अपने साथ में भूत या अन्य आत्माओं को लाते हैं जो कि बीमारी का कारण बनती हैं। एक समय उत्तरी-पूर्वी रोडेशिया में किम्बरले के हीरे की खान में काम करने वालों के चुनाव में बड़ी दिक्कतों का सामना करना पड़ा था, क्योंकि वे लोग ऐसा विश्वास करते थे कि अगर वे ज़ूलू लोगों के देश में होकर जायेंगे तो ज़ूलू भूत उनको लग जायेंगे। जब उनके लड़ाकू लोग लड़ाई में जाते हैं तो वे उन भूतों के कारण तब तक अपने देश की हद को पार नहीं करते जब तक कि परशुद्धि उत्सव नहीं कर लेते। अगर ऐसा न किया जाय तो वे भूत जो लड़ाकुओं के संग में होते हैं, उनमें बीमारी पैदा कर देते हैं और अन्य लोगों पर भी अपना प्रभाव दिखाते हैं। इसीलिये ऐसा उत्सव अवश्य मनाया जाता है।

पूर्वी एशिया में हिस्टीरिया या अन्य मानसिक रोगों में यही समझा जाता है कि यह सब दुष्टात्माओं के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं। इसलिये ऐसे उत्सव वहाँ मरीज को बीमारी से छुटकारा दिलाने के लिये किये जाते हैं। कभी-कभी यह आत्मा रोगी की देह से खून निकाल कर दूर की जाती है। किसी-किसी पैसिफिक द्वीप में सिर दर्द और मिरगी के रोगों का उपचार भी इसी तरह किया जाता है। इसलिये न्यूब्रिटन में एक पत्थर के चाकू से या किसी छिलके के टुकड़े से जमीन में एक गड्ढा खोदा जाता है और उसमें एक वस्तु गाढ़ी जाती है ताकि उस आत्मा से छुटकारा पाया जा सके। इस गड्ढे को बाद में नारियल के छिलके से ढक दिया जाता है। इस प्रकार का सिद्धान्त प्राचीन

मिस्र में भी माना जाता था। वहाँ आत्माओं को हटाने के लिये सफाई की प्रथा ही मानी जाती है। उत्तरी अमरीका के इन्डियनों में बीमारी को दूर करने के लिये दूसरी किस्म की सफाई प्रयोग में लाई जाती है। वे लोग गर्म स्नान करते हैं। यह शायद उत्तरी पूर्वी एशिया के तुर्कों के स्नान जैसा होता है।

मलय प्रायद्वीप में इलाजी अपने बीमार को किसी पेड़ की पत्तियों से झारा देता है। झारे का अर्थ यह है कि वह पत्तियों को सिर से लेकर पैर तक हाथ में पकड़ कर चलाता है। ऐसा वह सात बार करता है। स्पार्टा में मन्दिर में एक सालाना उत्सव किया जाता था। बीमारियों से बचने के लिये एक स्वच्छता की परीक्षा भी ली जाती थी। यह परीक्षा पूरी जाति में होती थी। उत्सवीय स्नान किया जाता था। मुरे द्वीप में यदि कोई व्यक्ति भूतों और आत्माओं के प्रभाव से मूर्छित हो जाता है तो एक उत्सव किया जाता है, जिसमें इलाजी अपने शरीर पर सेवकों द्वारा नारियल का तेल मलवाता है और फिर मरीज के पास पहुँचता है। वह अपनी आँखों को बन्द करके जमीन पर लेट जाता है और बड़ी तेजी के साथ मरीज की ओर देखता है और अपने हाथों को ऊपर की ओर उछालता है। फिर वह बड़ी शक्ति के साथ अपने हाथों को मरीज की ओर चलाता है जैसे मानो वह मरीज के शरीर में कोई शक्ति भर रहा हो। बाद में वह बड़ी जोर की आवाज करता हुआ मरीज के साथ समुद्र की ओर दौड़ता है और वहाँ मरीज के साथ स्नान करता है। इस प्रकार मरीज ठीक हो जाता है। अगर वह ठीक नहीं होता तो ऐसी क्रियायें आवश्यकतानुसार नित्य होती रहती हैं।

अग्नि एक शक्तिदायक, स्वच्छता प्रदान करने वाला और रक्षा करने वाला दूत है। अग्नि और अग्नि में गर्म की जाने वाली वस्तुयें विशेष रूप से व्यक्तिगत बीमारियों को दूर करने के लिये प्रयोग में लाई जाती हैं। मलय प्रायद्वीप में बच्चा पैदा होने के समय में एक दिलचस्प उत्सव मनाया जाता है। अगर कोई औरत बच्चे को जन्म देने के समय मर जाती है तो यह माना जाता है कि वह भूत बन जायगी और उसका कार्य नये जन्म लेने वाले बच्चों को चुराना तथा उनकी माता को नुकसान पहुँचाना हो जायेगा। इसलिये माता और बच्चों को अग्नि के स्थान के निकट रक्खा जाता है ताकि वह उनको नुकसान न पहुँचा सके। यह अग्नि कुछ दिनों तक रक्खी रहती है। अग्नि की लपटें या धुँआ बड़ा प्रभावशाली होता है। सोलहवीं शताब्दी में यूरोप में पारसी यात्री अपने कारवाँ के साथ यात्रा करते थे और जहाँ वे लोग ठहरते थे वहाँ अपने

चारों ओर अग्नि जला लेते थे तथा सुबह जब वे दूसरी जगह को जाते थे तो जाने से पहले अग्नि जलाते थे और अग्नि की लपटों को कूद कर जाते थे। स्कॉट गड़रिये भी अपनी भेड़ों को अग्नि के धुएँ में होकर निकालते थे। जो कि किसी खास मौके पर ही जलाई जाती थी और यह निश्चय कर लिया जाता था कि वे भविष्य में बीमारियों से बची रहेंगी। अग्नि के उत्सव यूरोप में अनेकों ही मौकों पर किये जाते हैं। बाल्टन में पहली मई को गर्मी के बीच तथा नवम्बर में मृतक आत्माओं के प्रति होने वाली दावतों में ईसामसीह तथा नवीन वर्ष की खुशी में अग्नि जलाई जाती है। यह भी माना जाता है कि किसानों के जानवरों को दुष्ट आत्माओं से अग्नि ही बचाती है। अग्नि के उत्सवों पर यह सोचा जाता है कि यह व्यक्तिगत रूप से ही नहीं बल्कि सामूहिक रूप से पूरी जाति की रक्षा करती है। अग्नि का उत्सव पूर्वी एशिया के देशों में भी पाया जाता है। इनमें यह सोचा जाता है कि बीमारी नाव खेने वालों के पास से मरीज की ओर आकर्षित होती है तथा मानव व अन्य प्राणियों में प्रवेश कर जाती है। मलय प्रायद्वीप में बारह चित्र माने जाते हैं। ये रंगदार चावलों के बनाये जाते हैं जो कि एक तश्तरी में रखे रहते हैं। यह चित्र एक छोटी नाव में रखे जाते हैं जो नदी के किनारे पर रहती है और फिर पानी में बहा दी जाती है। मेकोंग नदी के किनारे यह उत्सव वार्षिक रूप से किया जाता है। इसमें नावें, जिनमें दीपक रखे रहते हैं, रात्रि को बहा दी जाती हैं और यह समझा जाता है कि यह गाँव की सभी बीमारियों और बुरी आत्माओं को अपने साथ बहा ले जायेंगी। निकोबार द्वीप-समूह में मानसून त्योहार के समय ऐसा ही एक उत्सव प्रतिवर्ष किया जाता है। बाँसों की पत्तियों से सजाया जाता है और उसकी प्रत्येक गाँठ पर पत्तियाँ बाँधी जाती हैं जैसे मानो दुष्ट पिशाच को बाँधा गया हो। ऐसा तीन रात्रि तक किया जाता है और इलाजी लोग दुष्ट आत्मा को पकड़ने में सफलता प्राप्त कर लेते हैं। उसे भालों से मारते हैं और कांटों से बाँध देते हैं। उसे बड़ी चतुराई से बाँधा जाता है। फिर दुष्ट आत्मा उसके अन्दर जहाज की भाँति रख दी जाती है तथा उसमें रोशनी के लिये मशालें रख दी जाती हैं। जब हवा अनुकूल हो जाती है तो तैराकों के द्वारा रस्सा बाँध कर नाव खींची जाती है और जहाँ जोर की तरंग आती है वहाँ वह बाँस की नाव छोड़ दी जाती है। उसको दुष्टात्माएँ पकड़ लेती हैं तथा धीरे-धीरे हवा में वह बह जाती है।

कहीं-कहीं ऐसा भी विश्वास किया जाता है कि बीमारी मनुष्य को छोड़कर जानवरों पर चली जाती है। इसका भी उत्सव मनाया जाता है। यह

उत्सव 'बकरी के बलिदान' के सम्बन्ध में मनाया जाता है। इसमें बकरी का बलिदान देकर यह सोचा जाता है कि बीमारी हट जायेगी और जानवरों में चली जायेगी। होटनटोट लोगों में बैल का बध किया जाता है। बेचुआन में यह उत्सव आमतौर पर मनाया जाता है। इन लोगों में बैल के शरीर पर एक प्रधान को बैठा दिया जाता है। उसका सिर ताकत के साथ तालाब में जब तक वह पूरा न डूब जाये दबाया जाता है। उस मुखिया के स्थान पर जो व्यक्ति होता है, वह जाति को पापों से मुक्त करता है और बीमारियों को दूर करता है। बीमारियों के द्वारा जो परिणाम निकलते हैं उनसे लोगों को मुक्त करता है। बलिदानी बकरी का विचार यूरोप के बहुत से देशों में पाया जाता है, विशेषकर जर्मनी में। ईस्टर या बिस्मनटाइड पर स्त्री और पुरुष अपने को 'शर्दी' या मृत्यु का प्रतिनिधि बनाते हुये सजाते हैं और एक दिन बाद जब कि कार्निवल का दिन होता है उसे गाँव या जिले से ले जाया जाता है तथा उसका पुतला गाड़ा या जलाया जाता है। इससे वे लोग यह सोचते हैं कि उन्होंने मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली है।

भारत के तंत्रों में इस प्रकार के अनेकों ही नुस्खे लिखे हुये हैं। हमारे यहाँ भी सयाने और ओझे कम नहीं हैं। मंत्र द्वारा भी बहुत कुछ किया जाता है। विशेष बात यह है कि हमारे यहाँ तंत्र मंत्र या तो भंगी और धोबी जैसी नीची कही जाने वाली जातियाँ करती हैं या फिर सबसे ऊँचे वर्ण कहलाने वाले ब्राह्मण करते हैं। मारण, वशीकरण, उच्चाटन इत्यादि इन्हीं क्रियाओं के प्रकारान्तर हैं। मंत्रों में विष-चिकित्सा भारत में प्रायः सुनी जाती है।

पवित्र नगाड़े

प्राचीन समय में नगाड़े का मुकाबला कौनसा यन्त्र कर सकता था, यह नहीं कहा जा सकता। बहुत प्राचीन जातियाँ भी इससे अपरिचित नहीं थीं। हजारों साल पहले भी देव-पूजा से इसका गहरा सम्बन्ध था। पवित्रता के साथ-साथ यह लौकिक भी माना जाता है। प्राचीन मिस्र में इसका प्रयोग धार्मिक रूप से किया जाता था, तथा प्राचीन मैक्सिको में भी इसका प्रयोग पुजारी के वाद्य यन्त्र के रूप में किया जाता था। यद्यपि यह अमेरिका, भारत, साइबेरिया, आस्ट्रेलिया और पैसिफ़िक द्वीपों में भी बड़े सुन्दर ढंग से प्रयोग में लाया जाता है। लेकिन विशेष रूप से अफ्रीका में इसकी तेज आवाजें राक्षसों के आक्रमण का इलाज करने वाले डाक्टरों को या मुखियाओं को बुलाने के काम में लाई जाती हैं।

नगाड़ा कुछ लोगों द्वारा पवित्र माना जाता है, ऐसा मध्य अफ्रीका के बोगन्डा लोगों के रिवाजों में मिलता है। वे लोग अपने पवित्र नगाड़े को ताजी गाय की खाल से मढ़ते हैं। इसके गड्ढे में किसी जानवर का खून ही नहीं रखा जाता बल्कि इस यन्त्र के अन्दर किसी व्यक्ति की बलि भी दी जाती है। वे लोग ऐसा इसलिये करते हैं, कि जब नगाड़ा पीटा जायेगा तो उस मनुष्य की आत्मा के द्वारा शासक नवीन जीवन प्राप्त कर सकेगा।

प्राचीन लोगों के नगाड़ों की आवाज जंगलों को पार करती हुई एक दूत का कार्य करती थी। योरोपीय लोग इस चीज से कि नगाड़े के द्वारा संदेश भेजा और मँगाया जाता है, देखकर बड़े आश्चर्य में पड़ जाते हैं। नगाड़े की आवाजों का मुख्य घर मध्य अफ्रीका है। इसके द्वारा ग्रामीण लोग अपनी घनिष्ट बातें करते हैं और एक दूसरे की तन्दुरुस्ती, झगड़ा और लड़ाई तक की भी

गया है। यहाँ एक सुन्दर दरवाजा बनवाया गया है जोकि मेनिनगेट के नाम से प्रसिद्ध है। यह दरवाजा उन अज्ञात वीरों की याद में बनाया गया था जो सन् १६१४ से लेकर १६१८ तक यहाँ खड़े रहे थे। यहाँ पर साम्राज्य के, करीब १ लाख सैनिक घायल हुये थे और करीब २५ हजार सैनिक मौत के घाट उतार दिये गये थे। बाद में इनमें से ५६००० सैनिकों के नाम पत्थर पर खोद दिये गये; ताकि उनकी स्मृति बनी रह सके।

आज इन स्मारकों में काफी विकास हो चुका है। इनको बनाने का ढंग बदल चुका है। यह परिवर्तन जर्मनी में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। जी० ए० मेन्जर ने वीर-काल का एक स्मृति-पत्थर बनाया है, जो कि समुद्र के किनारे पर खड़ा हुआ है। यह पत्थर ३०० फीट ऊँचा है, जो एक बड़े कमरे में रखा हुआ है। इस कमरे में दस हजार आदमी आसानी से बैठ सकते हैं। युद्ध का स्मारक जो बड़े सुन्दर ढंग से बनाया गया है, नयी दिल्ली में भी रखा हुआ है। यह स्मारक-चिन्ह बड़ा ही सुन्दर बना हुआ है। इस स्मारक को सर एडविन लुटयन्स ने तैयार कराया था। यह स्मारक वायसराय के घर को जाते समय किंग्स रोड पर पड़ता है। इसे १२ फरवरी १९३१ को बनवाया गया था, जब वहाँ शान्ति-उत्सव मनाया गया था। मौन धारण करने के बाद उस स्मारक पर मालायें अर्पित की गयी थीं। जनवरी १९२८ को फील्ड मार्शल अर्ल हेग इस संसार से विदा हो गया। लोगों ने उसको बड़े सैनिकों में स्थान दिया लेकिन किसी भी सेनापति ने यहाँ तक कि नेपोलियन ने भी इतनी ख्याति प्राप्त नहीं की जितनी कि इस वीर ने प्राप्त की। इसने युद्ध में इतनी ख्याति प्राप्त नहीं की जितनी कि युद्ध के बाद। जब वाटरलू का युद्ध लड़ा गया तो सैनिकों के लिये कोई सुविधाजनक कार्य नहीं किया गया। अर्ल हेग ही एक ऐसा कमान्डर था जिसने युद्ध के बाद अपनी टोली की खातिर में स्वयं को जुटा दिया और ख्याति प्राप्त की। ब्रिटिश लोगों में यह पाया जाता है कि भूतपूर्व सैनिकों की याद में जो पुष्पमालायें अर्पित की जाती हैं, वे संधिदिवस के अवसर पर बेची जाती है। ऐसा इसलिये किया जाता है कि हम उन भूतपूर्व सैनिकों को भूल न सकें और उनसे साहस प्राप्त करें। लार्ड हेग ने अपने सैनिकों की खातिर अपने सारे जीवन को लगा दिया था। इस मौके पर लोगों को शिक्षा दी जाती है, ताकि उससे लोग प्रेरणा प्राप्त कर सकें। सेना के पाँच हजार सदस्य ह्वाइट हॉल से लेकर वैंस्ट मिनस्टर तक एक रास्ते में खड़े हुए थे। अर्ल हेग का शव सैंट वोसवोल को ले जाया गया और

वहाँ एक साधारण बक्स में रखा गया जिसे दो घोड़े खींच रहे थे। इस डिब्बे के साथ एक दर्जन सिपाही ही मार्चिंग करते हुये चले जा रहे थे, लेकिन इसके पीछे हजारों ही भूतपूर्व सैनिक चले आ रहे थे; क्योंकि इन लोगों के लिये ही उसने अपना जीवन लगा दिया था। झाड़वर्ग ऐबे में हेग आराम के लिये लाया गया। इसके कुछ दिनों ही बाद मार्शल फौच जो कि फ्रान्स में सेनापति का कार्य कर रहे थे, युद्ध के दिनों में गुजर गये। इन सभी शव-दृश्यों में शायद सबसे महत्वपूर्ण और कलात्मक दृश्य वह था जो आर्क डि ट्रोम्फ में मनाया गया था। यहाँ अज्ञात वीरों की स्मृति में शव-बक्स रोका गया। इस स्थान पर वीरों की याद में कब्रें बनी हुई हैं और यहाँ दिन-रात उनकी याद में अग्नि जलती रहती है। यह 'ला सुप्रीमरेनकोन्टर' था। यह धार्मिक लोगों के द्वारा मनाया जाता है, जिनके पीछे-पीछे फ्रान्स का प्रधानमंत्री चलता है। यह वह स्थान है जहाँ फ्रान्स के महान् सैनिक गाड़े गये थे। रास्ते की रक्षा बड़े-बड़े सैनिकों द्वारा की जाती है और फ्रेन्च तथा विदेशी सेनापतियों के साथ बन्दूक-धारी जवान जाते हैं। इसके बाद रिपब्लिक का अध्यक्ष, विदेशी राजकुमार, सरकार के सदस्य, और अन्य सम्बन्धी होते हैं। फ्रेंच लोग उन लोगों के प्रति, जिन्होंने देश की रक्षा करने के लिये मदद की थी, एक उत्सव मनाते हैं जनरल फौच २० मार्च १९१९ को इस संसार से चल बसे।

महारानी विक्टोरिया का शवोत्सव बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया था। एक मृतकीय उत्सव जो कि इंग्लैंड-निवासियों को काफी प्रभावित करता है तथा उनमें प्रेरणा भरता है वह RIOI आपत्तियों का शिकार था। ४७ मृतकों के शरीर बोलजोन से डोबन तक एच० एम० एस० टैम्पेस्ट के अन्दर लाये गये थे।

प्रत्येक देश में महान् मृतकों के प्रति आदर-प्रदर्शन-हेतु शव-बक्स काम में लाये जाते हैं। वैसे यह सन्देशास्पद है कि इन मृतकों में से सभी लोग आम-जनता में समान आदर प्राप्त कर सकें। यह जनता का दृष्टिकोण होता है कि वह किस वीर को कितना मान-सम्मान प्रदान करती है। लाखों ऐसे भी लोग होंगे, जिन्होंने ट्राफल्गर के गुम्बदों को तथा सेंट पॉल की कब्रों को देखा तक भी न होगा। एन्टार्टिक की खोज में अनेकों ही वीर बर्फ में दब कर सदा के लिये बिदा हो गये हैं। इन लोगों में से मगर कुछ ही लोग समय पर याद किये जाते हैं।

इस प्रकार सारा संसार अपने वीरों की स्मृति में कोई न कोई

स्मरणीय चिन्ह अवश्य बनाता है। इन स्मरणीय स्थानों से देशवासियों को एक प्रेरणा मिलती रहती है। इस प्रेरणा के द्वारा देशवासी अपना जीवन देश की खातिर लगा देते हैं। भारतवर्ष में इस प्रकार की याद के लिये प्राचीनकाल में छत्री या अन्य किसी प्रकार का स्मारक बनाया जाता था। इन स्मारकों पर प्रतिवर्ष मेले या अन्य उत्सव मनाये जाते थे। आज प्राचीन चीजों को लोगों ने त्याग दिया है। प्राचीन स्मरणीय चिन्हों के स्थान पर आज शहीद और वीर लोगों के स्मरण में उनके चित्र बनाये जाने लगे हैं। ये परम्परायें प्रत्येक देश में भिन्न-भिन्न रूप से मनाई जाती हैं।

वृक्ष और शव गाड़ने का स्थान

मध्य आस्ट्रेलिया में अरुन्टा लोग आज भी अपने प्राचीन रिवाज को मनाते चले आ रहे हैं। ये लोग पेड़ों के ऊपर पेड़ों की डालियों को मिलाकर जहाजनुमा घोंसले बनाते हैं। उसके अन्दर बच्चे की एक छोटी हड्डी लगी रहती है। ये लोग कहते हैं कि कुछ वृक्षों पर भूत आक्रमण करते हैं। उन लोगों में यह भी विश्वास है कि बच्चे की सरल आत्मा पुनः पैदा होने के लिए उससे सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। उस हड्डी का इतना प्रभाव माना जाता है कि वह उसी बच्चे की माता के गर्भ में स्थान प्राप्त करेगी और पुनः जन्म धारण करेगी।

युवा लोगों के शव भी कभी-कभी घोंसलेनुमा ढाँचे के अन्दर रखे जाते हैं। कभी उनको खोखले लट्टों के अन्दर भी रखा जाता है ! इन लट्टों को या तो किसी वृक्ष से कसकर बाँध दिया जाता है या किसी नाले के ऊपर लटकती हुई डालियों से कस कर छोड़ दिया जाता है। ऐसे शवों का कुछ निश्चित समय तक के लिये ध्यान रखा जाता है। इस शव के पास, जब तक कि उसकी हड्डियाँ और अन्य पदार्थ पानी के अन्दर न गिर जायें, तब तक कोई भी औरत नहीं जा सकती। उन लोगों का विश्वास है कि जब तक शव की हड्डियाँ स्वतः पानी के अन्दर गिरकर बह न जायेंगी तब तक उस शव की आत्मा नया जन्म धारण नहीं कर सकती। कभी-कभी मृतक का शव पेड़ की डालियों से लटका रहता है और जब निश्चित समय निकल जाता है तो इलाजी और उस मृतक के रिश्तेदार उस शरीर के पास जाते हैं। वे उसकी हड्डियों को ले आते हैं, उन्हें चिकना बनाते हैं। फिर वे लोग उन्हें छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटते हैं और उनको एक बर्तन में इकट्ठा कर किसी निकट की पहाड़ी पर ले जाते हैं, जिसमें वे

इन्हें गाड़ देते हैं। इतना करने के बाद भी दाँये हाथ की हड्डी को विशेष रूप से मुख्य इलाजों के लिये सुरक्षित रख लिया जाता है। सर्वप्रथम इसको बड़ी सावधानी से लपेटते हैं और किसी खोखले गोंद वाले पेड़ में रख देते हैं। यह हड्डी जब शोकोत्सव मनाये जाते हैं, तो काम में लाई जाती है। इसके साथ नाच भी किया जाता है। नाच एक रंगा हुआ व्यक्ति करता है। अन्त में यह हड्डी साथियों द्वारा तोड़ दी जाती है और शीघ्रता के साथ किसी गुप्त स्थान पर जमीन के अन्दर गाड़ दी जाती है। यह हड्डी वहीं गाड़ी जाती है जहाँ कि उस मृतक का टॉटम गाड़ा जाता है। इस प्रकार का एक दूसरा रिवाज भी पाया जाता है, जो मृतक से सम्बन्ध रखता है। इसमें मृतक को तब तक के लिये छोड़ दिया जाता है जब तक कि उसका गोश्त नष्ट न हो जाये। इस समय के बीच स्त्री और पुरुष शोक मनाते हैं तथा उस मृतक के लिए खून की भेंट देते रहते हैं।

अमेरिका में रैंड इन्डियन लोगों में मृतक प्रथा प्रारम्भ होने से पहले पेड़ों का जलाना एक आम प्रथा थी। खासतौर से पश्चिमी जातियों में और महाद्वीपों के पूर्वी भागों में यह प्रथा पाई जाती थी। आस्ट्रेलिया में दुःख मनाने वाले लोग अपने शरीर का बलिदान कर देते थे। अमेरिका में पेड़ों का जलाना काफी मात्रा में पाया जाता है। वहाँ मृतक के साथ में दफनाये वृक्ष भी पाये जाते हैं। एक स्थान पर ऐसा पाया जाता है कि एक पवित्र स्थान में हेक-बरी वृक्ष को जमीन के ऊपर २० फीट ऊँचा उठाया गया है। इसमें कभी एक मृतक को लपेट दिया गया था और टूटने पर उसके तम्बुओं के लट्टे बनाये गये थे, जिनमें प्याले व अन्य सामान लटकाये गये थे जो कि मृतक के जीवन में काम में लाये गये थे। मोनटोना के ब्लेकफीट इंडियनों में भी ऐसा रिवाज मिलता है। इनमें यह प्रथा पाई जाती है कि अगर कोई बच्चा मृत्यु को प्राप्त होता है तो उसके शव के साथ खिलौने रख दिये जाते हैं। वे लोग अपने मृतकों को पेड़ों की चोटी पर रख देते हैं। डब्लू० एल० हार्डिस्टी के मुताबिक कनाडा के इन्डियन अपने मुर्दों को किसी खोखले के अन्दर स्वच्छतापूर्वक रखते हैं। यह जमीन से ६ फीट ऊँचा होता है।

मुर्दों को पेड़ों पर दफनाने की प्रथा फिलीपाइन द्वीप-समूहों के मीन्नाहेसा हिस्से में भी काफी मात्रा में पाई जाती है। इन द्वीपों के निवासियों की जातीय प्रथा के मुताबिक ये हड्डियाँ इकट्ठी कर ली जाती हैं। पेड़ों पर दफनाने की प्रथा मलाया के स्याम निवासियों में आज तक पाई जाती है। यहाँ अगर कोई

व्यक्ति अधिक ख्याति प्राप्त या उच्च श्रेणी का होता है तो उसके लिए एक अलग शव-बक्स तैयार किया जाता है और उसे पेड़ों के ऊपर लगा दिया जाता है। अगर पेड़ों पर नहीं टांगा जाता तो उन पेड़ों की डालियों को झुका कर बक्स रख देते हैं। जब इस प्रकार गोश्त नष्ट हो जाता है तो हड्डियों को जलाने के लिये ले जाते हैं और बाद में किसी मन्दिर के भीतरी भाग में उसे सुरक्षित रख देते हैं। जो लोग बुरी मृत्यु प्राप्त करते हैं उनको एक पुलिदे में लपेट दिया जाता है। इस पुलिदे की शकल सिगारनुमा होती है। इसको बाँस के लट्टों से कसकर बाँध देते हैं तथा पेड़ों के बीच में शान्ति के साथ रख कर छोड़ देते हैं। बुरी मृत्यु किसी हिंसात्मक कार्य द्वारा या किसी अपराध के दण्डस्वरूप प्राप्त होती है। पेड़ों के ऊपर दफनाने का ब्यौरा साइथेनियों और कौलवेयनों में भी पाया जाता है। हेरोडोरस के अनुसार प्राचीन मिस्र में भी यह प्रथा पाई जाती थी।

पेड़ों के ऊपर दफनाने की बात मिस्र में ओसिरिस और प्राचीन एनोटोलियन देवताओं के साथ जीवित रही थी। इन देवताओं के सम्बन्ध में बताया जाता था कि इनका रूप मृत्यु के बाद पेड़ जैसा बन गया था। प्लूटार्क के अनुसार स्लेन ओसिरिस का शव भूमध्यसागर को पार करके पेलोस्टाइन के किनारे पहुँचा और बाद में इसको वहाँ साफ किया गया तथा वहाँ एक वृक्ष खड़ा हो गया और इसके शरीर के साथ-साथ मिल गया। बाइब्लोस राजा भी पेड़ को गुम्बदनुमा ढंग से काटता था। जो कि इसके घर और मन्दिर जैसा होता था। मिस्री लोगों में इस प्रकार का विश्वास पाया जाता था कि वे लोग पेड़ के ऊपर ओसिरिस का एक डण्डेरा मन्दिर बनाते थे। पेड़ों पर एक चिड़िया आत्मा ही एक ओसिरिस होती थी। कई विद्वानों के कथनानुसार मिस्री लोग अपने ओसिरिस देवताओं की प्रतिमा तैयार करते थे और उसे खोखले पेड़ के अन्दर रख देते थे। इस प्रकार उस प्रतिमा को रखे हुए जब एक वर्ष व्यतीत हो जाता था तो वे लोग एक उत्सव का आयोजन करते थे तथा उस प्रतिमा को जलाते थे। पिरैमिड के एक लेख में भी इस ग्रन्थ का जिक्र पाया जाता है। यह पिरैमिड (ई० पू० २६००) का है। इस पिरैमिड में पेड़ के ऊपर दफनाने की प्रथा के बारे में लिखा हुआ है। इसमें पेड़ की आत्मा को देवता की आत्मा माना है और प्रार्थना की गई है कि उसकी आत्मा से अपनी आत्मा जाकर मिलेगी तथा ओसिरिस होगा। प्लूटार्क के अन्धविश्वास में पवित्र वृक्ष ही एरीका है। फीजियनों के अनुसार ऐरिक देवता मृत्यु के बाद चीड़ के वृक्ष के रूप में बदल गया था। वहाँ यह प्रथा पाई जाती थी कि ऐरिक की एक

प्रतिमा बनाई जाती थी और वह पेड़ के ऊपर रख दी जाती थी। जब एक वर्ष व्यतीत हो जाता था तो उसे जला दिया जाता था। पश्चिमी भूतों से सम्बन्धित अनेकों कहानियाँ पाई जाती हैं। इनमें आत्माएँ पेड़ का रूप धारण करके पैदा हो जाती हैं। अगर किसी कब्र के ऊपर कोई वृक्ष उग आते हैं तो वे वृक्ष प्रेमी व प्रेमिकाओं के माने जाते हैं। पवित्र पेड़ों के लिए लकड़ी के शव-बक्स तैयार किये जाते हैं और प्रथा के मुताबिक जला दिये जाते हैं। चीन देश के प्राचीन साधुओं के मतानुसार शव-बक्स चीड़ के पेड़ की लकड़ी के बनाने चाहिये, क्योंकि इन वृक्षों की लकड़ी आत्मा को जीवन-रूप में लाने में काफी सहायक सिद्ध होती है। इन वृक्षों की लकड़ी आत्मा को आराम तथा सुविधा प्रदान करती है।

पेड़ों के ऊपर दफनाने की प्रथा अनेकों ही रूपों में पाई जाती है। अमेरिका के रेड इन्डियन लोग तो मृतकों के लिए पेड़ों के ऊपर ही स्थान बनाते हैं। इन लोगों के यहाँ चुने हुए स्थान पर कोई भी वृक्ष उगने नहीं दिया जाता है। एक लेख के अनुसार शरीर के लिये बनावटी स्थान बनाये जाते हैं। दूसरे लेख के मुताबिक कौरोलिना के इन्डियन लोग अपनी प्रथा के मुताबिक शव को लट्टों के ऊपर लगा देते थे। बाद में केवल वहाँ ढाँचा-मात्र ही शेष रह जाता था। वहाँ से उस मृतक की हड्डियाँ या तो उसके निवास-स्थान पर रख दी जाती थीं या अन्य किसी स्थान पर आस-पास ही रख दी जाती थीं। इस क्रिया के द्वारा सारे कुटुम्ब के अस्थि-पंजर एकत्रित होते चले जाते थे और पीढ़ी दर पीढ़ी यह चलता रहता है। इन स्थानों पर अनेकों ही पीढ़ियों के ढाँचे एकत्रित हो जाते थे। जब इस प्रकार की क्रिया करते हुए वर्षों व्यतीत हो जाते थे तो एक खास मौसम में इन ढाँचों को जनता के बीच लाया जाता था तथा एक आम जगह पर, जहाँ कि अन्य ढाँचे रहते थे, ये भी रख दिये जाते थे।

अमेरिका के उत्तरी पश्चिमी किनारों पर बजाय इस प्रकार के वृक्षों पर स्थान बनाने के संकरी छोटी नावें काम में लाई जाती हैं। सिनूक्स अपने मुर्दे को ऐसी नावों में कम्बलों के अन्दर लपेट कर रखते हैं। नाव को लट्टों की मदद से जमीन से पाँच फीट ऊँचा उठा देते हैं तथा जमीन पर मजबूती के साथ जमा देते हैं। इसमें जगह-जगह छेद होते हैं। इन छिद्रों के चारों ओर काम में आने वाले बर्तन तथा कम्बल जो कि उस मृतक ने अपने जीवन में काम में लिये थे, लटका दिये जाते हैं। एक वर्ष के उपरान्त हड्डियाँ एकत्रित करली

जाती हैं और उस नाव के बिल्कुल नीचे जमीन में गाड़ दी जाती हैं। जार्ज गिक्स के मुताबिक जिसने कि गाड़ने की प्रथाओं की खोज की थी, वाशिंगटन इलाके और मोरेगोन के इन्डियनों में छोटी संकरी नावों में मुर्दों को रखते थे। उसने एक स्थान का उल्लेख किया है। जहाँ करीब ३००० ऐसी नावें दिखाई देती हैं जो कि लट्टों के ऊपर खड़ी हुई हैं। एक दिलचस्प बात यह है कि ये नावें और प्लेटफॉर्म आमतौर से पूर्व से पश्चिम को ले जाये जाते हैं तथा साथ में हड्डियों के घर भी ले जाये जाते हैं।

ब्रिटिश न्यूगिनी के कीबिया निवासियों में प्लेटफॉर्म बनाये जाते हैं और नावनुमा तख्ते रखे जाते हैं। ये चार लट्टों के ऊपर रखे रहते हैं। इनके ऊपर मृतक के शरीर को रख देते हैं। मृतक का सिर डूबते हुए सूर्य की ओर करते हैं क्योंकि ऐसा करने से उस मृतक की आत्मा एडिरी के बैकुण्ठ की ओर खिंच जाती है अर्थात् उस मृतक को स्वर्ग प्राप्त हो जाता है। निकट सम्बन्धी, जब तक मृतक का गोشت नष्ट न हो जाये, उसके पास रहते हैं। इसके पश्चात् उस मृतक की हड्डियाँ इकट्ठी की जाती हैं, साफ की जाती हैं तथा एक चटाई पर रखी जाती हैं एवं स्वाभाविक ढंग से गाड़ दी जाती हैं। कभी-कभी एक नारियल का वृक्ष मुख्य कब्र के रूप में लगा दिया जाता है, और दूसरा वृक्ष उसके तले की ओर लगा दिया जाता है। एक दूसरा रिवाज कपालक्रिया सम्बन्धी है। जहाँ मुर्दा दफनाया जाता है, वहाँ कपाल को रख देते हैं।

प्रो० जी लैंडमैन ने एक बच्चे से सम्बन्धित कपाल का जिक्र किया है। इसमें मामा उस कपाल को लेकर माँ-बाप के घर पहुँचता है और उसे इधर-उधर घुमाता है, कुछ गुनगुनाता है और कहता है कि तुम मेरे साथ दो या तीन सप्ताह ठहरो, 'मैं तुम्हारे लिये नाचूंगा, मैं तुम्हारे लिये दुख महसूस करूँगा, तुम आत्मा के साथ होंगे और सीधी एक दशा को चले जाओगे, यहाँ पर एडिरी होगा।' इस प्रकार की बातें कपाल के सम्बन्ध में पाई जाती हैं। जो कुत्ते सूअर से लड़ने में बहादुरी दिखाते थे उनके लिये ऐसे मृतक प्लेटफॉर्म तैयार किये जाते थे। डच न्यूगिनी में एक प्रथा पाई जाती है। मृतक को नाव सहित ही गाड़ दिया जाता है। मृतक-बक्स नावों की पुरानी लकड़ियों से बनाया जाता है और यह कब्रों के अन्दर देखा जा सकता है कि किस प्रकार ये नावें जमीन में रखी जाती हैं। इन शव-नावों को चार लकड़ियों के (जो कि एक दूसरी पर आड़ी बाँधी जाती हैं।) ऊपर रख दिया जाता है। जब शरीर

नष्ट हो जाता है तो उसकी खोपड़ी निकाल ली जाती है। रसल द्वीप में मुखिया लोग ही इस प्रकार के आदर के पात्र समझे जाते हैं। स्त्रियाँ ऐसे मौकों पर काफी रुदन तथा विलाप करती हैं। सोलोमन द्वीपवासियों की प्रथा के अनुसार शरीर को लपेट कर एक सँकरी लम्बी नाव में रख देते हैं, जो कि लकड़ियों के ऊपर खड़ी करदी जाती है। यह शरीर करीब एक वर्ष तक के लिये छोड़ दिया जाता है और उसकी खोपड़ी निकाल ली जाती है। आम लोगों के लिये बड़े-बड़े मृतक प्लेटफार्म तैयार किये जाते हैं। लेकिन ये प्लेटफार्म मुख्य रूप से मुखिया लोगों के या जो ख्याति-प्राप्त पुरुष होते हैं उनके लिये तैयार किये जाते हैं। साधारण लोगों के शव समुद्र में फेंक दिये जाते हैं। पूर्वी द्वीपों में भी ऐसी प्रथा पायी जाती है। वहाँ शव को लपेट कर चार लकड़ियों के ऊपर रख देते हैं, जो करीब तीन वर्ष तक रखा रहता है। इसके बाद हड्डियाँ हटा दी जाती हैं।

पौलिनेशिया में भी ऐसे प्लेटफार्म तैयार किये जाते हैं। इनमें मुखिया लोगों और स्वतन्त्रता प्रेमी लोगों के शव रख दिये जाते हैं। इनके अन्दर शव सूख जाते हैं। निकट के घरों में इन शवों के मोम के पुतले बना कर रख दिये जाते हैं। इन पुतलों को कभी-कभी कब्र में भी रख दिया जाता है। सामोआ में भी शरीर को जंगल में प्लेटफार्म पर, जब तक कि वह नष्ट नहीं हो जाता रख दिया जाता है। इसके पश्चात् उस शव की हड्डियाँ निकाल ली जाती हैं और छिपा कर गाड़ दी जाती है।

मृतक-प्लेटफार्मों का रूप मैलेनेशिया द्वीप के न्यूआयरलैंड और न्यूहो-नो-वर में भी पाया जाता है। इन प्लेटफार्मों में लट्टों को मृतक की श्रेणी के मुताबिक लगा देते हैं। सबसे ऊँचे प्लेटफार्म उन्हीं लोगों के बनाये जाते हैं जो कि सबसे उच्च श्रेणी के होते हैं। सेरान में मुखिया और पादरी लोगों के शव ही प्लेटफार्म पर लगाये जाते हैं। शव में से सिर निकाल लिये जाते हैं और पत्थर के शव-बक्स में रख दिये जाते हैं। बर्मा की प्राचीन प्रथा तथा आसाम के रिवाज के मुताबिक साधारण लोगों के शव लकड़ी के प्लेटफार्म पर और मुखियाओं के शव पत्थर के प्लेटफार्म पर रखे जाते थे। पूर्वी मेडागास्कर में एक प्रकार का फैशन पाया जाता है कि वहाँ मृतक-बक्स को शव प्लेटफार्म पर लगाया जाता है। इसके ऊपर पत्तियोंकी छत बनाई जाती है। पूर्वी अफ्रीका में भी इसी प्रकार का रिवाज पाया जाता है। उत्तरी रोडेशिया के केसेम्पा जिले में मुखियाओं के शव 'चिटाला' के अन्दर रखे जाते हैं। वह एक प्रकार का शव

बक्स होता है, जो लट्टों के ऊपर उठा हुआ होता है। यह मृतक की खोपड़ी के साथ जमीन पर लगा दिया जाता है।

गाड़ने के प्लेटफार्म के सिद्धान्त काफी बढ़े हुये रूप में पाये जाते हैं। इनमें से एक प्रथा में पेड़ के ऊपर दफनाते हैं। दूसरी प्रथा में बिस्तरे पर मृतक को लिटा दिया जाता है। तीसरी किस्म यह है कि मृतक को एक स्थान बना कर लट्टों के ऊपर रख कर उठा दिया जाता है जो 'Y' की शकल का जैसा होता है। लट्टे उसके लिये गुम्बद का काम देते हैं। खोपड़ी को काम में लेने की प्रथा में यह सोचा जाता है कि पुरुष की आत्मा खोपड़ी के अन्दर ही रहती है। इसलिये लोग खोपड़ी का प्रयोग मृतक के साथ करते हैं। खोपड़ी को मृतक के अन्य हिस्सों से बाहर निकाल कर सुरक्षित स्थान पर रख लेते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मृतकों को वृक्षों के ऊपर तथा अन्य अनेकों ही साधनों द्वारा दफनाते हैं।

पवित्र सप्ताह और उसके उत्सव

ईसामसीह का स्मरण-दिवस संसार के सभी ईसाईयों में बड़ी धूम-धाम के साथ मनाया जाता है। इस उत्सव को ईसाई लोगों का प्रत्येक वर्ग मनाता है। आज के दिन उन लोगों के द्वारा बड़े-बड़े प्रदर्शन किये जाते हैं। प्यूरीटन लोग ईसामसीह के सम्बन्ध में अपने पूर्वजों के रिवाज पूर्णता के साथ निभाते हैं। लेकिन रोमन कैथोलिक चर्च और इंगलैंड के सभी चर्च जो कि अपने को एंग्लिकन कैथोलिक कहकर पुकारते हैं, इस दिन जहाँ तक हो सकता है, उत्सवों को बड़े सुन्दर ढंग से मनाते हैं। ये अपने प्रत्येक कार्य में इसको महत्त्व देते हैं। बहुत से चर्च मृत्यु के अवसर पर नाट्य-प्रदर्शन करते हैं। रोम में सेन्ट पीटर की सेवायें (जो कि गुडफ्राइडे के दिन की गयीं थीं), बहुत ही उच्चकोटि की थीं। बेसीलिका में दुःख मनाने के चिन्ह देखे जा सकते हैं। सभी साधनों द्वारा इन लोगों ने एकान्त को महत्त्व दिया है। पोप, बिशप और कार्डिनल कोई भी अपनी अँगूठियाँ धारण नहीं करते। वे लोग ऐसी पोशाक धारण करते हैं जो शोक-सूचक होती हैं। पोप के गार्ड आज के दिन अपने उन्हीं हथियारों को धारण करते हैं, जो पहले से तय कर दिये जाते हैं। अपने जूतों को खोलने के बाद पोप पदों को उठाता है और ईसामसीह की मूर्ति को चूमता है। दोपहर बाद गायक अपना गान प्रारम्भ करते हैं।

ईसामसीह के इतवार के दिन प्रत्येक वस्तु निश्चित होती है। इस दिन प्रातः को ही अच्छी खबरों की सूचना देने के लिये तोप चलाई जाती है। सेन्ट पीटर रोशनी से चमकता है। सभी जय-जयकार की ध्वनि करने वाले लोग अपनी शानदार पोशाक धारण करते हैं। इस दिन संगीत ही सबसे अधिक आनंद प्रदान करने वाला साधन होता है। सभी अपनी-अपनी कुर्सियों को एक दूसरे

से ऊँचे स्थान पर ले जाते हैं। पोप इस उत्सव का उद्घाटन करता है और बाद में सभी को अपना आशीर्वाद देता है। ऐसे शानदार उत्सव ईसामसीह के स्मरण-दिवस के अवसर पर सभी कैथोलिक चर्चों में मनाये जाते हैं। लेकिन कुछ स्थानों पर कुछ विशेष प्रकार के उत्सव मनाये जाते हैं। इन भिन्न-भिन्न स्थानों पर उत्सव में ऐतिहासिक महत्व की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है; बल्कि अपनी रुचि पर जोर दिया जाता है।

इनमें से सबसे महत्वपूर्ण उत्सव वह है जो कि सेवाइल में मनाया जाता है। सैकड़ों वर्ष पूर्व अनेकों ही धर्मों के व्यक्तियों को इस शहर में शिक्षा दी गयी थी कि वे रात्रि को पवित्र गुरुवार से लेकर शुक्रवार तक एक जुलूस में कैथेड्रल की ओर चलते रहें। ये नियम कॉफरेडाइस के नाम से जाने जाते हैं। ये नियम आज तक निभाये जाते हैं। ये लोग आज तक ऐसी पोशाक पहनते हैं जो कि सिर के ऊपर ढँकी रहती है और यह ढक्कन लम्बा नोकदार होता है। इससे पूरी शक्ल ढँक जाती है। इसमें होकर कोई भी चीज दिखाई नहीं देती, सिर्फ कपड़े के ऊपर की चमक ही दृष्टिगोचर होती है। इस पोशाक को पहिनकर और अपने हाथ में जलती हुई बत्ती लेकर, ये कॉफरेडाइस अपने पूर्वजों के रिवाज को शताब्दियों से प्रतिवर्ष मनाते चले आ रहे हैं। ये सभी लोग किसी भी प्रकार की कला में निपुण नहीं होते। ये सभी साधारण लोग होते हैं। इन लोगों के साथ शहर के धनवान लोग भी सम्मिलित हो जाते हैं। सेवाइल में शुक्रवार के दिन रात्रि को कोई भी व्यक्ति अपने बिस्तरे पर नहीं लेटता। सभी इस जुलूस में भाग लेते हैं। सेवाइल में इस दिन कोई भी व्यक्ति ऐसा दिखाई नहीं देता जो इस जुलूस में भाग नहीं लेता हो। दो दिन तक गलियों में किसी भी प्रकार का आवागमन चालू नहीं रहता। किसी भी पहिये वाली गाड़ी को इस दिन के दो-तीन दिन बाद तक गलियों में जाने के लिये आज्ञा नहीं होती। ऐसा ही दक्षिणी स्पेन की राजधानी में किया जाता है। यहाँ की मुख्य गलियाँ इतनी सँकरी हैं कि साईकिल तक का निकलना कठिन जान पड़ता है। इस प्रकार की गलियों की भीड़ शहर की सुन्दरता को बढ़ा देती है। जो लोग शीघ्रता से जाना चाहते हैं वे जा नहीं सकते। शीघ्रता करने वाले लोगों को क्षमा नहीं किया जाता। जो लोग शीघ्रता करते हैं; वे शहर की सजावट देखने के अवसर से हाथ धो बैठते हैं।

अगर पुरुषों द्वारा किसी जुलूस का प्रबन्ध किया जाता है तो प्रत्येक को एक घन्टे तक का समय कम से कम इसमें लगाना आवश्यक होता है, यद्यपि

रास्ते में पाँच या छः घण्टे लग जाते हैं। इसका मुख्य कारण यह होता है कि जुलूस निकालने वाले लोग रास्ता थोड़ा होते हुये भी बहुत धीरे-धीरे चलते हैं। इस जुलूस में जगह-जगह पर लोग ठहरते हुए जाते हैं। एन्डूलेशिया की बसन्त की रातें बड़ी ही सुन्दर और गर्म होती हैं। वायु में गुलाब के फूलों और नारंगी के पेड़ों की मन्द सुगन्ध भरी रहती है। इन मौकों पर कोई भी घर जाने की नहीं सोचता।

आधी रात के बाद लोगों को चर्च में एकत्रित होने की आज्ञा मिलती है। ये लोग बड़ी शांति के साथ शोक-सूचक वस्त्र धारण किये हुये एकत्रित होते हैं। स्पेन के साधुओं की पोशाक काली होती है। किसी-किसी की सफेद भी होती है। इस प्रकार सभी लोग ईसा के सामने जाते हैं। जुलूस में जीजस की अनेकों ही प्रतिमायें चलती हैं। ये प्रतिमायें ही जुलूस का मुख्य भाग होती हैं। ये प्रतिमायें पुरुषों द्वारा कन्धों पर रखकर ले जाई जाती है। सैंट लौरेंजों की ओर शराब की दुकानें और भोजनालय अभी तक खुले रहते हैं और लोगों की भीड़ से भरे रहते हैं। चर्च के सामने के हिस्से में काफी भीड़ लगी रहती है। यह भीड़ धीरे-धीरे बढ़ती चली जाती है, यद्यपि इस समय रात के २ बजे जाते हैं। यही वह समय होता है जबकि जुलूस निकल कर आता है। भीड़ में धीरे-धीरे आवाज होनी प्रारम्भ हो जाती है। भीड़ आपस में एक-दूसरे से मजाक करती है। भीड़ दरवाजा खोलने के लिये बड़ी तेजी के साथ चिल्लाती है। आखिर दो बजते हैं और सारी बत्तियाँ बुझा दी जाती हैं। यहाँ पर कुछ बिल्ली की-सी आवाज आती है और मूर्ति के प्रगट होने की माँग की जाती है। कुछ क्षणोपरान्त चर्च का दरवाजा खुलता हुआ दिखाई देता है। सारी भीड़ उसमें से निकलती है।

जब मूर्ति प्लेटफार्म पर लायी जाती है तो सभी देखते हैं। लोगों में एक प्रकार की शान्ति छा जाती है और वे लोग अपने सिरों से टोप उतार देते हैं। स्त्रियाँ अपने सिरों को झुका लेती हैं। करीब-करीब सभी व्यक्ति कुछ न कुछ बोलते हैं तो ऐसा लगता है, मानो कुछ प्रार्थना कर रहे हों। इसके बाद अचानक ही यह शान्ति एक आवाज द्वारा भंग की जाती है। यह आवाज रसहीन होने पर भी बड़ी आश्चर्यजनक लचक लिये होती है। यह आवाज प्रार्थना के रूप में एक गाना गाती है। इस प्रकार इस प्रतिमा का स्वागत ऐसी आवाजों द्वारा किया जाता है। यह एक परम्परात्मक प्रथा बन गयी है। अच्छे-अच्छे गायक इन प्रार्थनाओं को गाने में लगे रहते हैं। ये गीत अज्ञात मनुष्यों

द्वारा भी भीड़ के अन्दर से गाये जाते हैं। इस संगीत में एक खिंचाव होता है। इसके उपरान्त हँसना और बातचीत करना फिर से शुरू हो जाता है। प्रतिमा घुमाई जाती है और भीड़ कम हो जाती है। जैसे-जैसे जुलूस निकलता जाता है, भीड़ कम होती चली जाती है।

प्लाजा में लोग अपनी-अपनी सीटों पर बैठ जाते हैं। जब तीन बजते हैं तो बच्चे अपने प्रोग्राम की घोषणा करते हैं। यह बातचीत तथा हँसी-मजाक का एक आनंददायक समय होता है। जुलूस के बीच आराम के लिये बार-बार समय मिलता है। इस जुलूस में स्त्रियाँ भी पुरुषों के साथ जाती हैं। छोटे-छोटे बच्चे भी इस जुलूस में सम्मिलित होते हैं। इसके बाद लोग होटल जाते हैं। इस समय मुश्किल से पाँच बजते हैं।

चर्च की आवाजें तब तक कानों में गूँजती रहती हैं जब तक कि ये लोग गहरी नींद में अचेत नहीं हो जाते। दूसरे दिन शाम को गुडफ्रायडे के दिन इसी प्रकार के जुलूस दिखाई देते हैं। प्लाजा की जगहें भरी हुई दिखाई देती हैं और ये अर्ध रात्रि तक भरी रहती हैं। एक बाँक्स में शहर का प्रमुख बैठा रहता है। यह सिगरेट काफी मात्रा में पीता है और कॉफ़ैडायस की ओर कोई ध्यान नहीं देता। चन्द्रमा सेवाइल की सबसे प्रमुख गुम्बद के ऊपर चमकता रहता है। यह दृश्य बड़ा ही आनंददायक होता है। रविवार के दिन लोग मृत्यु-उत्सव मनाते हैं। सारे पदें उठा दिये जाते हैं। सुनहरी घण्टियाँ बड़ी मीठी आवाज करती हुई बजती रहती हैं।

बहुत से अन्य स्थानों पर भी इस अवसर पर पैदल यात्रायें की जाती हैं। ये दृश्य रोम में भी देखे जा सकते हैं। सिसली में पेलेारेयो में पश्चात्ताप करने वाले लोग अपने सिर के ऊपर काँटों का ताज धारण किये हुये रहते हैं। वे लोग अपनी गर्दन के चारों ओर रस्सियाँ भी लपेटे हुए रहते हैं। ये रस्सियाँ उनके हाथों में होती हैं और हाथ सीने के ऊपर ऐसे उठे रहते हैं, जैसे मानों प्रार्थना के लिये उठाये गये हों। कभी-कभी ईसा की बीमारी के विचार लोगों में जागते हैं और वे लोग अपने इन विचारों को एक नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करते हैं। गुडफ्रायडे की शाम को जुलूस बत्तियाँ साथ में लिये पुरानी गलियों में होकर निकलता है। ये बत्तियाँ तारों की रोशनी-जैसी चमकती हैं। मेनेको में जगह-जगह भाईचारे के स्थान नियत किये जाते हैं। वहाँ पर सारी पिछली यादें स्मरण की जाती हैं। एक सब से अनोखी बात जो कि वहाँ देखने में आती है, वह यह है कि प्रत्येक स्थान पर अलग-अलग

व्यक्ति ईसा का अभिनय प्रस्तुत करता है। इनमें अलग-अलग व्यक्तियों को ईसा बनाया जाता है और वह व्यक्ति ईसामसीह के स्थान पर वैसे ही कार्य करता है जैसा कि ईसामसीह ने किया था। सभी वैसे ही चमकदार पोशाक धारण करते हैं। इस पोशाक में सीना खुला रहता है, जिस पर लाल रंग लगाया हुआ होता है। यह लाल रंग खून के समान होता है। बाल और ढाढ़ी सफेद रंग के होते हैं। सिर पर काँटों का ताज होता है। प्रधान पादरी एक छत्री खोले हुये रहता है। वह सेवक के रूप में ईसा पर छत्री को लगाये रहता है। चारों चोगाधारी वकील जो कि इसके सलाहकार के रूप में होते हैं, साथ में चलते हैं। रोम का गवर्नर भी वकील-जैसी काली पोशाक धारण करता है। इसके साथ में गुलाम, जो कि इसके हाथों को समय समय पर साफ करता रहता है, चलता है। यह कार्य सफेद चमकदार कागजों की मदद से किया जाता है। बादशाह भी १८ वीं शताब्दी का फूलों का कोट धारण करता है और एक चमकदार कागज का ताज अपने सिर पर पहिन्ता है। आदम और ईव भी इस समय पर लुइस-कुइन्ज ढंग की पोशाक में पूरी तरह से सजे हुये रहते हैं। जैसे-जैसे यह ज़ूलूस आगे की ओर बढ़ता जाता है, ईसा के ऊपर यहूदी लोग और रोमन सिपाही आक्रमण करते चलते हैं। प्रत्येक क्षण शताब्दियों से चली आती हुई परम्परायें काम में लायी जाती हैं। जो परम्परायें या रूढ़ियाँ युगों से कायम हो गयी हैं, वे सभी इस उत्सव के अवसर पर निभाई जाती हैं।

पवित्र शनिवार के दिन कोई विशेष धार्मिक उत्सव नहीं मनाया जाता; यद्यपि यह एक प्रसन्नता का अवसर होता है। ईसामसीह के जन्मदिन के अवसर पर जो रोशनी की जाती है, उसके लिये एक चूल्हे से (जिसमें कि सन् १०६६ में पवित्र समाधि से अग्नि लाकर स्थापित की गई थी) अग्नि लाई जाती है। इस अग्नि को एक प्रेत लाया था और वह इसको रखकर जैरुसलम चला गया था। वहाँ इसका बहुत ही बड़ा उत्सव मनाया गया था। यह अग्नि गुडफ्राइडे के दिन लाई जाती है, और जलायी जाती है। यह अग्नि शहर के मुख्य व्यक्तियों को दी जाती है, जो कि इसे चर्च के मुखिया को भेंट करते हैं। ये लोग भी इस सजावट में काम करने वाले पवित्र निवासियों के सहयोगी बन जाते हैं। यह अग्नि म्युनिसिपैलिटी को भी प्रदान की जाती है। म्युनिसिपैलिटी इसको जलाने की आज्ञा प्रदान करती है और आज्ञा देती है कि यह उन चूल्हों के अन्दर, जो कि प्रेत द्वारा लाये गये थे, जला दी जाये और चर्चों में पहुँचा दी जाये। जैसे ही यह अग्नि या रोशनी ले जायी जाती है, सैकड़ों ही व्यक्ति अपनी

लालटैनों को जला देते हैं। ये लोग इस रोशनी के द्वारा ही अपने दीपकों को जलाते हैं। ऐसा करने में वे लोग सोचते हैं कि वे ईश्वर के लिये उजाला कर रहे हैं। इस तरीके में जो अपनी लालटैन को जलाने में पहले सफल होता है, वह व्यक्ति बड़ा भाग्यशाली समझा जाता है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति अपनी लालटैन तथा दीपकों को इस रोशनी से सबसे पहले जलाने की कोशिश करता है। एक बार १३०० ई० में एक दान देने वाले प्रसिद्ध कुटुम्ब का एक युवक अपने दीपक को सबसे पहले जलाने में सफल हुआ था, तो उसके गिश्तेदार इतने प्रसन्न हुए थे कि उन्होंने अगले वर्ष शनिवार के दिन अग्नि का खेल खेलने का निश्चय किया। अगले वर्ष जब यह पवित्र शनिवार आया तो इन लोगों ने अग्नि का खेल किया। अब यह एक निश्चित रिवाज बन गया और प्रतिवर्ष होने लगा। अब प्रतिवर्ष अधिक से अधिक चमक या शान इसमें दिखाई जाती है। आखिर लोगों ने म्युनिसिपैलिटी से आज्ञा माँगी कि वे इस दिन हानि न पहुँचाने वाले चमकदार, पदार्थों से अपना रथ सजाना चाहते हैं और यह आज्ञा मिल गयी।

यह अग्नि-उत्सव इतने सुन्दर ढंग से मनाया जाता है कि प्रत्येक देखने वाले के मन को आकर्षित करता है।

यह रथ सफेद बैलों द्वारा खींचा जाता है और कैथैड्रल के सामने तक पहुँचाया जाता है। यहाँ आर्क विशप आता है और एक कबूतर में आग लगाता है। यह कबूतर रथ के पीछे दरवाजे के ऊपर से निकलता है, फिर रथ से बाहर हो जाता है। जैसे ही आग जलाई जाती है, वह कबूतर घरों के ऊपर उड़ना शुरू कर देता है, फिर वह रुक जाता है तथा उसकी यात्रा समाप्त हो जाती है। अगर यह कबूतर धीरे-धीरे चलता है और अचानक ही रुक जाता है तो यह बुरा शकुन माना जाता है। अगर यह बिना किसी ठहराव के यात्रा करता है तो लोग यह समझते हैं कि अगली फसल बहुत ही अच्छी होगी। पियाज्जा देल दुयोमो पर खेल करने के उपरान्त रथ घर के उस पुराने कोठों की ओर ले जाया जाता है जहाँ उसे खड़ा कर देते हैं। इस रथ को खड़ा करने के लिये पहिले से ही स्थान निश्चित कर लिया जाता है। अन्त में बहुत से बारूद गोले छोड़े जाते हैं और उत्सव समाप्त हो जाता है।

रूस के चर्चों में भी ईसामसीह के स्मरण-दिवस पर अर्द्ध रात्रि तक यह उत्सव मनाया जाता है। बारह बजने के पहले करीब एक घंटे तक लोग कुछ कंपित स्वर से गाते हैं। तमाम बत्तियाँ कम कर दी जाती हैं। गायन में लोग

घोषणा करते हैं। अपमान भी नगाड़ा पीट कर प्रदर्शित किया जाता है। जो लोग अपमान को मुँह के द्वारा प्रगट करते हैं उनको दंड दिया जाता है। यह एक सार्वजनिक अपराध माना जाता है।

मध्य अफ्रीका में नगाड़े की भाषा उनके भिन्न-भिन्न रूप से पीटने से बनती है। नगाड़ा तह पर तथा किनारों पर पीटा जाता है। नगाड़ों के पीटने के चार अलग-अलग तरीके पाये जाते हैं और ये उसी प्रकार के हैं कि जैसे खुले मुँह से गाल के ऊपर टपटप की आवाज की जाये या सीटी की सी आवाज की जाये ताकि अलग-अलग रूप के सन्देश भेजे जा सकें। ये शब्द नगाड़े की सतह पर पड़ी चोटों की संख्या से जाने जाते हैं। इसकी गहराई या चमक इसकी आवाज की लम्बाई और संक्षिप्तता पर निर्भर है। यह उसी प्रकार होता है जैसे टेलिग्राफी में शब्दों को प्रगट करने के लिये खट-खट की जाती है। इस प्रकार की टेलिग्राफी मध्य अफ्रीका में ही नहीं की जाती बल्कि पैसिफिक महासागरीय द्वीपों, दक्षिणी अमरीका के अमेजन प्रदेश, मैक्सिको और उत्तरी पश्चिमी अमरीका में भी की जाती है। यहाँ के लोग भी अपना सन्देश नगाड़े द्वारा भेजते हैं। नगाड़े को पीटने के ढंग से इनके शब्द पहिचाने जाते हैं।

नगाड़ों द्वारा सन्देश भेजने के अतिरिक्त कुछ चिन्ह भी बनाये जाते हैं। ये चिन्ह या संकेत भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग रूप में पाये जाते हैं। जो लोग इन संकेतों को बनाते हैं, वे भिन्न-भिन्न रूप से इन्हें काम में लाते हैं। कांगो के दक्षिण प्रदेश में नगाड़े को शरीर से लटका दिया जाता है, जैसे यूरोपियन नगाड़े वाले इसे लटका कर ले जाते हैं। उत्तर में इनको पैरों पर रख कर बजाया जाता है। अफ्रीका के कुछ नगाड़े बेहद गोल होते हैं और कुछ लकड़ी के बक्स के समान दिखाई देते हैं। साधारण किस्म में यह सिर्फ एक खोखले पेड़ का हिस्सा होता है। जिसे किसी बकरी या भेड़ के चमड़े से ढँक देते हैं। ऊबांगी नदी की जातियाँ बोन्गवा और युगान्डा संकेत प्रगट करने के लिये बहुत छोटे और झुके हुये नगाड़े प्रयोग में लाती हैं जिनके अन्दर धनुष के सहारे आवाज की जाती है। ऐसे नगाड़े जंगल में शिकारियों द्वारा काम में लाये जाते हैं। ये लोग इन नगाड़ों के द्वारा या तो अपने इधर-उधर के साथियों को या अपने मित्रों को खबर भेजते हैं और अपनी स्त्री को खाना पकाने के लिये सूचना देते हैं। पेड़ के ठूँठ के बने नगाड़े को लोग हाथी को फँसाने वाले गड्ढे के पास रख देते हैं और जंगल में जब हाथी इधर-उधर जाता है और

अचानक इस गड्ढे में गिर जाता है तो लोग शिकारियों को बुलाने के लिये नगाड़े पीटते हैं, ताकि उसे ले जाने के लिये आदमी एकत्रित हो जायें।

पैसिफिक द्वीपों के लोगों के द्वारा जो नगाड़े काम में लाये जाते हैं वे अफ्रीका के लोगों के द्वारा काम में आने वाले नगाड़ों से भिन्न होते हैं। जावा और सुमात्रा में प्रयोग में आने वाले नगाड़े बाँसों के टुकड़ों के बनाये जाते हैं। ये टुकड़े अलग-अलग होते हैं। इनको मिलाकर तथा खाली जगह की पूर्ति करते हुये बनाया जाता है। ये नगाड़े पेड़ों पर लटका दिये जाते हैं और छड़ियों द्वारा पीटे जाते हैं। शायद बाँस के डंठल जो शुरू-शुरू में बढ़ते हैं, काम में लाये जाते हैं और यह तलाश किया जाता है कि खोखला जोड़ने पर अच्छी आवाज करता है या नहीं।

बाली द्वीप के पदजंग गाँव में भी एक ऐसा ही यन्त्र प्रयोग में लाया जाता है और यह पत्थर की ऊँची गुम्बद के ऊपर लगाया जाता है, जो कम से कम ३० फीट ऊँची होती है। ये सभी धातु के नगाड़े होते हैं, जिनके चारों ओर मनुष्य की-सी शक्ल के चित्र बड़ी कारीगरी के साथ कढ़े हुये रहते हैं। कोई भी व्यक्ति इन नगाड़ों के इतिहास और विकास के बारे में नहीं जानता। ये नगाड़े १७५० ई० में बाली द्वीप की यात्रा करते समय प्रसिद्ध डच नाविकों द्वारा देखे गये। ये नगाड़े बाली द्वीप वालों के द्वारा बड़े ही आदर के साथ रखे जाते थे।

फिलीपाइन द्वीपों में सँकरे पेड़ को खोखला किया जाता है और जितना खोखला किया जा सके, किया जाता है। इनको पेड़ से लटका दिया जाता है। बोर्नियो और जावा में भी लकड़ी के खोखले नगाड़े काफी अच्छे चित्रों द्वारा मढ़े हुये होते हैं। वे लोग इन नगाड़ों को जमीन पर रख देते हैं और इन्हें लकड़ी से बजाया जाता है। ये लकड़ियाँ हमारे यहाँ की नगाड़े बजाने वाली लकड़ियों से मिलती-जुलती हैं। न्यू हेब्रिडीज़ में पेड़ों को काट दिया जाता है, और खोखले पेड़ों के टुंडों को नगाड़े के रूप में बदल दिया जाता है।

सोमाली लोगों के नगाड़े ओखली जैसी शक्ल के होते हैं जब कि मौरक्को के लोग अपने नगाड़े मिट्टी की ओखली जैसा बनाते हैं। काँगो के कुछ लोगों के नगाड़े मिट्टी के बर्तनों के समान होते हैं। इन बर्तनों का मुख खाल से ढक दिया जाता है।

साइबेरिया में नगाड़ों को लोग अब तक जादू के प्रभाव के लिये काम में लाते हैं। स्याम के लोगों के धार्मिक कृत्यों से नगाड़ा सम्बन्धित है। यह एक जादू-टोने का माध्यम है। आर्टिक के लोगों द्वारा, नगाड़े द्वारा जादू का प्रयोग काम में लाया जाता है और लैपलैंड में भी जादू का प्रयोग नगाड़े के माध्यम से होता है।

नगाड़ा लकड़ी के एक टुकड़े द्वारा ही बनाया जाता है। इसे काफी गहराई तक खोखला किया जाता है। यह अंडे की शक्ल जैसा होता है। इसके नीचे के हिस्से में वे लोग दो निशान बनाते हैं जो काफी लम्बे होते हैं। इनको इसलिये बनाया जाता है कि नगाड़ा मजबूती के साथ पकड़ा जा सके। इसके ऊपर का हिस्सा रेन्डियर की खाल से ढका जाता है। इसके ऊपर वे लोग लाल रंग से अनेकों ही चित्र बना देते हैं और इसके बगल में सैंकड़ों ही पीपल की अंगुठियाँ और रेन्डियर की हड्डियों के टुकड़े लटके रहते हैं।

इसमें एक निश्चित स्थान पर एक दैवी तंत्र लगा रहता है। आवाज होने के बाद वह यह बताता है कि किस प्रकार का जादू उससे दूर हटाया जा सकता है। नगाड़े के द्वारा पुजारी आत्माओं के संसार में पहुँच जाता है तथा वह दूरी से बैठकर मन्त्र बोलता रहता है और शिकार के दिन की सफलता पर भी प्रकाश डालता रहता है। मरीज को ठीक किया जाता है या मनुष्य को बीमारी से प्रभावित किया जाता है या मारण क्रिया की जाती है। ऐसे नगाड़े ऐस्किमो शेमनों द्वारा ग्रीनलैंड में प्रयोग में लाये जाते हैं। इसकी शक्ल सबकी राय से तय की जाती है।

साइबेरिया के सेमोयड लोग रेन्डियर की खाल का नगाड़ा, जो कि पीतल के छल्लों से सजा हुआ रहता है, काम में लाते हैं। शेमन अपने सहयोगियों सहित एक घेरे में आत्मा की उपस्थिति के लिये चलते हैं और कुछ देर के लिये खड़खड़ाहट का शब्द करते हैं। उनकी आवाज कुछ भारी हो जाती है और जब यह समझ लिया जाता है कि आत्माएँ कुछ निकट आ गयी हैं तो जादूगर अपने नगाड़े को बड़ी सावधानी के साथ पीटता है। उसके उत्तरों को सुनने के लिये कुछ मन्त्रों का उच्चारण करता है। धीरे-धीरे वह क्रोध की सी हालत में कार्य करने लगता है, नगाड़े को बड़ी बुरी तरह बजाता है, और स्वयं ऐसा प्रगट करता है मानो उस पर किसी दुष्टात्मा का प्रभाव हो गया हो। उसके मुख से झग निकलते रहते हैं। अचानक ही वह बजाने से रुकता है, और दुष्टात्मा की इच्छा को प्रगट करता है। शेमन लोगों में यह वंश-परम्परा के

अनुकूल होता है। लेकिन अगर कोई जाति का सदस्य विशेष योग्यता प्राप्त करना चाहता है तो उसे, पुजारी के कार्य में लगा दिया जाता है। उत्तरी अमेरिका के इन्डियनों में व्रत करके, उत्तेजक पदार्थ प्रयोग में लाकर, यह विश्वास कर लिया जाता है कि वह आत्माओं ने ग्रहण कर लिया है।

साइबेरिया के याकूत लोगों में नगाड़ा बजाने के लिये बड़ी चतुराई की आवश्यकता पड़ती है। नगाड़े बजाने की सफलता प्राप्त करने के लिये बहुत दिन तक अभ्यास किया जाता है। एक शेमन ने स्टर्नवर्ग से कहा था कि वह अपने इस व्यवसाय में घुसने से पहले दो महीने से बीमार था, इस बीच में वह बेहोश रहा करता था। रात्रि को उसने अपने शेमनों को गाना गाते हुये सुना। तब आत्मायें उसके सामने चिड़ियाओं की शक्ल में प्रगट हुईं। और एक मानव शरीर के रूप में आकर एक आत्मा ने उसे नगाड़े बजाने के लिये कहा। अन्य लोगों ने भी इसी प्रकार अपने यन्त्रों का प्रयोग आरम्भ किया था।

नगाड़े को वे लोग बड़ी सावधानी से रखते हैं। जब वे यह जानना चाहते हैं कि शिकार में उनके साथ क्या होगा, तो शेमन नगाड़े के सामने झुकता है और उसे बजाता है। पहले धीमी चोटों से, फिर और तेज, तथा बाद में बहुत तेजी के साथ ! यह यन्त्र मोटे पेड़ के ठूँठ का एक टुकड़ा होता है और यह किसी जानवर की खाल से ढक दिया जाता है। इसके तले में छेद कर दिये जाते हैं जिनसे यह पकड़ा जा सकता है। खाल के ऊपर कुछ जानवरों के और कुछ अन्य आत्माओं के चित्र बने रहते हैं। इन चित्रों में कहीं पानी की छाया, कहीं जमीन की छाया पड़ती रहती है, और इसकी सतह पर धातु के छल्लों का ढेर का ढेर लटका रहता है। कभी कभी शेमन हर्षोन्माद के कारण गिर जाता है जबकि वह नगाड़े को अपने सिर पर ले जाता है। वह जादूपरक मन्त्रों का उच्चारण करता है, जिसमें प्रत्येक उत्तर देववाणी को बतलाने वाला होता है। इसमें बड़ी सावधानी रखी जाती है कि कहीं इस साधना में उसे कोई छू न ले। वह ऐसी हालत में घंटों तक सो सकता है और जिन्दा होने के बजाय मरा हुआ प्रतीत होता है।

चीन, बर्मा और इनसे मिले हुये देश वर्षा के लिये नगाड़ों का प्रयोग करते हैं। ये नगाड़े मेंढ़कों के चित्रों से सजाये जाते हैं। जो जानवर चावल की खेती में काम में आते हैं उनके चित्र भी इन पर लगाये जाते हैं। मध्य अफ्रीका की अनेकों ही जातियाँ वर्षा के समय नगाड़ों को बजाती हैं ताकि बिजली के द्वारा किसी को हानि न हो।

संक्षेप में नगाड़े प्राचीन युग से ही, राजा, पादरी, या ईश्वर की आवाज से सम्बन्धित माने जाते हैं। सन्देश भेजने के साधनों में भी इनकी गिनती की जाती है। भारत और अफ्रीका में पवित्र नगाड़े बजाये जाते हैं। भारत में शादियों के अवसर पर नगाड़े बजाये जाते हैं। इनसे यह समझा जाता है कि दुष्टात्मा दूल्हे पर इनकी आवाज के कारण कोई प्रभाव नहीं कर सकती। हमारे यहाँ बड़े-बड़े उत्सवों में, त्यौहारों पर नगाड़ों का प्रयोग किया जाता है।

पुतलों का उत्सव

प्राचीन युग से ही यह विश्वास किया जाता है कि मृत्यु के द्वारा ही मनुष्य दूसरे रूप में प्रवेश करता है। मृत्यु हो जाने पर आत्मा कहीं भी और किसी भी रूप में प्रगट हो जाती है। बहुत प्राचीन मानव यह नहीं समझ पाया था कि मानव-शरीर से निकल कर आत्मा अलग भी जीवित रह सकती है। इसलिये उन लोगों में यह धारणा थी कि शव को हर दशा में सुरक्षित रखा जाये। मरने के बाद उसके सुख-साधन के लिये उसकी औरतें मार दी या जला दी जाती थीं; क्योंकि उनके हिसाब से मृतक व्यक्ति आराम और शान्ति इसी भाँति प्राप्त कर सकता था। स्त्री और पुरुष दोनों को एक साथ दफनाया जाता था। उनके लिये कब्र में किसी न किसी साधन द्वारा भोजन पहुँचाया जाता था। कब्र के ऊपर कोई ऐसा छिद्र रख लिया जाता था, जिसके द्वारा खाना आसानी से अन्दर पहुँचाया जा सके। खाना पहुँचाने के साधनों में नलिकाओं का भी प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार की बहुत सी प्रथायें ब्रिटिश द्वीपों में पाई जाती थीं। इन द्वीपों में कब्रों के अन्दर मृतक व्यक्ति के औजार, हथियार व काम में आने वाले सभी बर्तन रख दिये जाते थे। मृत्यु-दिवस पर सरदार लोगों की कब्र पर घोड़ों तक को मार दिया जाता था और यह माना जाता था कि ऐसा करने से घोड़ा उनके सरदार के पास रहेगा और आनन्द भोगेगा। अटिला हूण की मृत्यु पर भी ऐसा किया गया था।

मार्कोपोलो ने आज से ६०० वर्ष पहले चीन में हाँगचू नामक स्थान के मृतक संस्कारों का वर्णन किया है—“जब वे लोग श्मशान-भूमि में आते हैं तो चीजों के प्रतिनिधित्व के रूप में वे कुछ को काटते हैं। इन चीजों के अन्तर्गत

घोड़े, स्त्री और पुरुष गुलाम, सुनहले गहने आदि होते हैं। ये सभी वस्तुएँ मृतक के साथ अग्नि में रख दी जाती हैं। ये सभी वस्तुएँ उस मृतक के साथ जल जाती हैं। वे लोग कहते हैं कि ये सभी वस्तुएँ पुतलों के रूप में गोشت और खून धारण करते हैं तथा ये पुतले उसके साथ जीवित रहते हैं। दूसरे संसार में धन उस के काम आयेगा और ये सभी लोग उसकी मदद करेंगे तथा उसके साथ रहेंगे।" चीन के आधुनिक शहरों में इस प्रकार के पुतलों को बनाने वाले उद्योग आज भी काफी मात्रा में प्रचलित हैं। यह वहाँ एक मुख्य उद्योग माना जाता है।

मृतक की ख्याति के लिये तथा उसको दुष्टात्माओं के साथ से बचाने के लिये, पुतले बनाये जाते हैं। रोमन लोगों में मोम के पुतले तैयार किये जाते हैं और वे खास-खास कामों पर ही बाहर लाये जाते हैं। सभी प्रभुसत्ता-धारी और रानी आदि तक के पुतले जलाने से पहले तैयार कर लिए जाते थे। सैकड़ों शताब्दियों से यह एक प्रकार का फैशन प्रचलित हो गया था कि वहाँ चमड़े को पानी में गर्म किया जाता था। जब इस प्रकार की कला नष्ट हो गयी तो मोम के द्वारा पुतले बनाये जाने लगे। चमड़ों के पुतले बनाने की प्रथा को लोग भूल गये। वैस्टमिनिस्टर में कमरा बना हुआ है जहाँ मृतकों के पुतलों को सुरक्षित रखा जाता है। मुख्य रूप से चार्ल्स द्वितीय का पुतला प्रसिद्ध है। यहाँ १० अन्य आकृतियाँ और हैं जो कि रानी ऐलिजाबेथ के समय से लार्ड नेल्सन के समय तक की हैं। इनमें, शुरू से अन्त तक, सभी मृतक-पुतले हैं। आज संसार के सभी देशों में मृतक-पुतलों का रूप भिन्न-भिन्न रूप से पाया जाता है। पैटैगोनिया के लोग अपने मुखियों के मृतक-दिवसों की बाट देखते रहते हैं। वे लोग हड्डियाँ एकत्रित किया करते हैं और उन हड्डियों को पुतलों के रूप में जमा लेते हैं तथा वे लोग उन्हें मृतक की सबसे सुन्दर पोशाक में सजा लेते हैं। इस उत्सव के अन्त में पुतलों को एक चौकोर गड्ढे में रख कर जलाया जाता है तथा उसके चारों ओर मृतक घोड़े लगा दिये जाते हैं। सौलोमन द्वीपों के मैलेनेशियन लोगों में एक प्रथा पाई जाती है जो मृतक-पुतलों से सम्बन्धित है। दुःख मनाने वाले लोग अपने घर पर मृतक के हथियारों को लटका देते हैं और खूब रोते हैं। कुछ एस्किमो लोग मृतक शरीर को घर में बन्द कर देते हैं। इस मृतक के पास वे लोग कुत्ते का पुतला लगा देते हैं, जिसके बारे में माना जाता है कि वह उसकी अन्तिम यात्रा में पद-प्रदर्शक होगा। उसके साथ ही वे लोग उसके हथियारों और अन्य चीजों को रख देते हैं।

आधुनिक लोगों में यह प्रथा दूसरा रूप धारण कर गयी है। लोग कब्रों को हीरे-मोतियों से सजाते हैं। डोवेनशायर में एक स्त्री ने अपनी कब्र के साथ भोजन और शराब रखी। फ्रान्स में आत्माओं के दिवस के अवसर पर प्राचीन प्रथाएँ आज भी मनाई जाती हैं। वहाँ इन दिवसों पर कब्रों के पास भोजन और अन्य सामान ले जाया जाता है। अफ्रीका में हजारों ही जीवित प्राणी प्रतिवर्ष बलिदान कर दिये जाते हैं। बेक झील की धार्मिक प्रथा के अनुसार मृतक के सामने कुछ उत्सव मनाये जाते हैं जो कि पाप-विनाशक के नाम से जाने जाते हैं। इस उत्सव में मृतक-पुतले काम में लाये जाते हैं।

मृतक-पुतलों के दिन बेलजियन कांगो जिले में एक प्रथा मनाई जाती है। आज का मानव जब वह प्राचीन धार्मिक रिवाजों के बारे में पढ़ता है तो वह अपने को उन लोगों के बजाय सभ्य महसूस करता है। वाटरफॉल्स जिले के केटेरेक्ट में मृतक के शरीर को एक प्रकार की लकड़ियों के ढाँचे में रख दिया जाता है। यह ढाँचा कुछ ऊँचाई पर बनाया जाता है। इसको लकड़ियों की सहायता से उठा दिया जाता है। इसके नीचे विधवा स्त्री या अन्य कोई निकट सम्बन्धी काफी अग्नि जला देता है। इसमें शरीर को बड़ी सावधानी से रखा जाता है और यह तब तक रखा रहता है जब तक कि मृतक का गोشت न जल जाये। इसके बाद उस मानव के कंकाल को उसके कपड़ों द्वारा सजाया जाता है। इस प्रकार की सजावट किसी चतुर व्यक्ति द्वारा की जाती है। सजावट होने के बाद उसे अनेकों ही रंगों द्वारा रंगा जाता है तथा दूसरा अन्य व्यक्ति उसके ऊपर विशेष प्रकार के जातीय चिन्ह बनाता है। जब सारी चीजे पूर्ण करली जाती हैं तो वह पुतला जुलूस के साथ सम्पूर्ण गाँव में घुमाया जाता है तथा घुमाते हुये उसे शव जलाने के स्थान पर ले जाया जाता है। उसकी कब्र बनादी जाती है। कब्र पर उसके सम्बन्धी लोग नित्य उसके लिये भोजन तथा शराब लाते रहते हैं तथा उसके ऊपर लकड़ियों की मदद से एक प्रकार का मन्दिर बना लेते हैं। मृतक का उत्सव जोर से चिल्लाने तथा बाजे बजाने के बाद समाप्त किया जाता है। लेकिन इस सम्पूर्ण उत्सव की समाप्ति नाच और दावत के बाद की जाती है।

स्याम देश में पुतलों को बड़े धार्मिक तरीकों द्वारा लगाया जाता है। इन पुतलों का उत्सव बहुत ही प्राचीन रिवाजों द्वारा मनाया जाता है। इस उत्सव में असभ्य युग की प्रथाएँ निभाई जाती हैं। स्याम के निवासी यह विश्वास करते हैं कि एक धनवान स्वर्ग में प्रवेश नहीं कर सकता। उसके लिये

स्वर्ग में प्रवेश करना इतना ही मुश्किल है जितना कि सुई की नोक में होकर ऊँट का निकलना। जैसा कि ईसाई भी मानते हैं। यूरोपीय देशों में यह अच्छा माना जाता है कि धनवान व्यक्ति मरने के बाद अपनी सम्पत्ति चर्च के लिये या दान के लिए छोड़ जाये। इस सम्बन्ध में स्याम के निवासियों का विश्वास कुछ अधिक साधारण है। वे लोग मानते हैं कि वे अपने जीवन के समय में ही उस धन का उपयोग अपने घर में कर लें और जब उनकी निजी सम्पत्ति बहुत अधिक हो जाती है तो वे लोग अपने भविष्य को सुधारने के लिये यह प्रथा काम में लाते हैं। इस प्रथा के अन्तर्गत एक प्रकार की पूजा की जाती है। आज इस पूजा का ईसामसीह के सिद्धान्तों से काफी सम्मिश्रण हो चुका है। इसमें एक काफी बड़ा ढाँचा तैयार किया जाता है। इस ढाँचे में ही आराध्य वस्तु को रखा जाता है। यह आराध्य प्रतिमा दुष्टात्माओं का राजा कहलाती है। इसे ७५ फीट ऊँचे लट्ठे पर खड़ा कर दिया जाता है। इसके चारों ओर वे लोग एकत्रित हो जाते हैं जो कि अपने भाग्य को इस संसार में अच्छा बनाना चाहते हैं। वे लोग इससे प्रार्थना करते हैं, गीत गाते हैं तथा यमराज से दया की याचना करते हैं। यह प्रतिमा ही उस देश की भाषा में 'फय यमराज' कहलाती है। इस प्रतिमा से ही वे लोग अनेकों प्रकार की प्रार्थना करते हैं। इसके बाद धनवान लोगों के अन्तःकरण में एक प्रकार की भावना टकराती है और वे अपना भाग अदा करते हैं। धनी अपने धन के द्वारा अपने भोजन की सामग्री खरीद लेता है। वह उस यमराज की प्रतिमा के पास पहुँचता है और दुष्टात्माओं के राजा को सूचित करता है कि वह अपने सारे धन को गरीबों को दे रहा है। इसके बाद यमराज की अनेकों प्रकार की प्रार्थनायें की जाती हैं। इतना सबकुछ होने के बाद पश्चात्ताप करने वाला व्यक्ति अपनी उस धारणा को मन में बसाये अन्य धनवान लोगों के साथ उस ऊँचे स्थान पर पहुँचता है। पश्चात्ताप करने वाले लोग इस ऊँचे स्थान पर पहुँच कर अपनी खरीदी हुई भेंटों को गरीब लोगों के लिये फँकते हैं। इन चीजों को प्राप्त करने के लिये लोग बड़ी प्रसन्नता-वश आपस में लड़ते हैं और भेंटों के लिये झपटते हैं। इस उत्सव में एक प्रकार की हाथापाई सी हो जाती है, जिससे इस उत्सव में विघ्न पैदा हो जाता है। इस उत्सव के लिये विशेष प्रकार के जाल तैयार किये जाते हैं ताकि बाँटा जाने वाला सामान आसानी से बाँटा जा सके। यह जाल इस ढंग से लगाया जाता है कि किसी प्रकार का कोई झगड़ा न हो सके। अब यमराज अपना कार्य अदा करता है। मृतकों का रक्षक होने का कारण उसका शमन किया जाता है, अर्थात् उसकी हर प्रकार की संतुष्टि की जाती है। यहाँ बहुत अधिक

भीड़ होती है। मृतकों का राजा जमीन पर कूदता है। इसके बाद बिखरी हुई चीजें बड़ी खुशी के साथ जलाई जाती हैं। कोई दूसरा उत्सव करने से पूर्व स्याम के निवासी अपने पास धन का संचय कर लेते हैं।

ब्रिटिश म्यूजियम में कुछ विशेष प्रकार के पुतले पाये गये हैं। ये पुतले चित्राल और अफ़गानिस्तान के मध्य में पाये जाते हैं। एक जिला तो इनको बनाने में बहुत प्रसिद्ध है। वह देश संसार के लिये आज तक अनजाना सा ही है। वहाँ के निवासी काफिर हैं। यह कुछ गोरे रंग की जाति है और अपने को ग्रीक तथा अलैक्जेंडर महान का पूर्वज मानती है। इन लोगों की बहुत-सी प्रथायें असभ्य लोगों की-सी हैं। इन प्रथाओं में विशेष रूप से मृतकों की प्रथायें असभ्य युग से सम्बन्धित हैं। ये प्रथायें इन लोगों में आज तक मनाई जाती हैं। गाँव की हदें बहुत ही घिरे हुये ढंग से बनाई जाती हैं। यहाँ मृतकों को जमीन में गाढ़ने के बजाय एक बहुत ही अँधेरे बक्स में बन्द कर दिया जाता है। इस लकड़ी के बक्स को इतना सख्त बन्द दिया जाता है, कि इसमें वायु भी प्रवेश नहीं कर सकती तथा यह बहुत ही गन्दा होता है। सिर्फ़ धनवान और प्रभावशाली मनुष्य ही इन बक्सों में से एक बक्स प्राप्त कर सकता है। मुर्दा दफनाने के समय पर मृतक का एक भूसे का पुतला बनाया जाता है और कब्र के ऊपर जला दिया जाता है। इस पुतले को जलाने के बाद उस मृतक के सम्बन्धी गाँव वालों को एक दावत देते हैं। एक साल बाद यह पुतला एक बक्स में रख दिया जाता है जहाँ कि वह शरीर रखा रहता है। वे लोग पुतले को देवदार पेड़ की लकड़ी से बनाते हैं और चाकुओं तथा कुल्हाड़ियों द्वारा उस पर नक्काशी करते हैं। इसमें आँखों को बनाने के लिये गोल पत्थर काम में लाये जाते हैं। इन पुतलों को धार्मिक ढंग से काम में लाया जाता है। इनकी अप्रसन्नता पर अचानक तूफान का आ जाना तथा बर्फ़ का गिरना आदि खतरे पैदा हो जाते हैं। बर्मा में इन मृतक पुतलों का विशेष रूप पाया जाता है। बर्मा की भाषा में एक बौद्ध साधु ह्पौनज्यी के नाम से जाना जाता है। अगर उस साधु की मृतक क्रिया का उत्सव मनाया जाये तो वह ह्पौनज्यीव्यान के नाम से जाना जाता है। यह उत्सव बहुत ही अनोखे ढंग से मनाया जाता है। इस उत्सव को मनाने के लिये साधुओं के शिष्यों से चन्दा एकत्रित किया जाता है। ये शिष्य लोग देश भर में फैले रहते हैं। इस बीच में शव को लकड़ी की माँद में तेल और शहद में रखते हैं। कोई भी बौद्ध साधु व्रत के दिनों में जलाया नहीं जा सकता। यह समय जुलाई की पूर्णिमा से लेकर अक्टोबर की पूर्णिमा तक रहता है। इस समय के बीच मरने वाले का शरीर

एक विचारणीय समय के लिये छोड़ दिया जाता है। जब यह देख लिया जाता है कि काफी धन एकत्रित हो गया है तो शहर के निकट एक बृहत और खुला स्थान चुना जाता है। उस स्थान पर ऊँचाई पर प्याथट और मन्दिर तैयार किये जाते हैं। प्याथट एक पचास फीट ऊँची बाँसों के द्वारा तैयार की हुई इमारत होती है। इन बाँसों की इमारत को बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित भिन्न-भिन्न रँगों से रंगा जाता है। उसके ऊपर सुन्दर-सुन्दर डिजाइन बने हुए होते हैं। सुन्दर-सुन्दर बुद्ध-जीवन सम्बन्धी चित्र खिचे हुए रहते हैं। ये मन्दिर बौद्ध साधुओं के शिष्यों के लिये विश्रामगृह का काम देते हैं। उनमें मृतक साधु के शिष्य निवास करते हैं तथा उनमें वे लोग सुन्दर-सुन्दर चित्र तथा पर्दे बनाते हैं। वह अलग-अलग हिस्सों में विभक्त रहता है। प्रत्येक हिस्से में एक खाट रखी रहती। उस खाट पर साधु लोग आठ दिवसीय उत्सव के समय पर विश्राम किया करते हैं। इस मन्दिर का एक हिस्सा विशेष रूप से दूसरे हप्पौन्जी के काम के लिये सुरक्षित रखा जाता है।

इस उत्सव के प्रत्येक दिन दावत और नित्य गान किये जाते हैं। समूह के समूह आगन्तुक लोगों को नाच-गान करके प्रसन्न करने में लगे रहते हैं तथा चारों ओर घोड़ों और बैलगाड़ियों की आवाज होती है। आगन्तुक लोगों की खुशी के लिये लोग इतने व्यस्त हो जाते हैं कि वे दिन-रात नाच-गान में मतवाले रहते हैं। इस उत्सव में हाथियों के हौदों-सहित पुतले, शेरों के पुतले तथा मोरों के पुतले गाड़ियों के ऊपर सजाये जाते हैं और उन सबका जुलूस निकाला जाता है। उन पुतलों में से कुछ पुतले बड़े पवित्र माने जाते हैं और जुलूस में उनकी बड़ी इज्जत की जाती है। उन पुतलों के एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक डोरा बँधा रहता है तथा गाड़ियों के बीच में एक रस्सी बँधी रहती है। उन पुतलों को मनुष्य भी खींचते हैं। उनको खींचकर ले जाने में बड़ी सावधानी बर्ती जाती है। पुतलों के उस उत्सव में स्त्रियाँ भी भाग ले सकती हैं। स्त्रियाँ पुतलों के धार्मिक कार्य को आसानी से कर सकती हैं। वे उनको खींच सकती हैं तथा उन पर कारीगरी कर सकती हैं। उन पुतलों पर बड़ा ही अनोखा कलात्मक कार्य किया जाता है।

इस उत्सव के आठवें दिन सबसे सुन्दर शव-बक्स जलाने के लिये ले जाया जाता है। अगर कोई साधु बहुत ही उच्च कोटि का होता है तो उसे जलाने के लिये ईंधन तथा चन्दन की लकड़ी, सोना और चाँदी, रेशमी कपड़े तथा सुन्दर पेड़ों की पत्तियाँ काम में लाई जाती हैं। जब अग्नि की लपटें इन

पदार्थों को जलाती हैं तो उस साधु की हड्डियाँ एक स्थान पर एकत्रित हो जाती हैं। हड्डियों को एकत्रित करके सुरक्षित रख दिया जाता है। ये हड्डियाँ मृतक की राय के अनुसार, जैसा कि वह मरने से पहले अपने विचार प्रगट करता है, रखी जाती हैं। कभी-कभी इनको पाउड्र में रखकर बुद्ध की प्रतिमा के साथ जमीन में रख दिया जाता है। इस उत्सव की मुख्य विशेषता उस प्याथट को जलाने की होती है। इनमें से कुछ प्याथट तो १००-१०० फीट ऊँचे बनाये जाते हैं। ये बड़ी-बड़ी इमारतें सिर्फ नष्ट करने को तैयार की जाती हैं। मजबूत रस्सियाँ तथा १००-१०० गज लम्बे तार जमीन पर लगा दिये जाते हैं। इन रस्सियों के द्वारा हवाई गोले चलाये जाते हैं। जब अच्छी घड़ी आती है तो एक हवाई गोला चलाया जाता है। जब यह गोला छोड़ा जाता है तो यह प्याथट से टकराता है और जोर का धमाका होता है। प्रत्येक गोले में कागज और बाँस फटता है। जब ये गोले चलाये जाते हैं तो जनता बड़ी प्रसन्नता मनाती है। अगर कोई गोला-चालक अपने कार्य में लापरवाही दिखाता है या अन्य किसी प्रकार से उसका गोला रस्सी को नहीं काटता तो भीड़ में जोर की आवाज होती है। भीड़ उस चालक के विरुद्ध आवाजें कसती है। ये गोले बाँस के बनाये जाते हैं। इनकी लम्बाई चार-पाँच फीट होती है। भीतर से ये गोले पोले बनाये जाते हैं। इनके अन्दर बन्दूक का मसाला अर्थात् बारूद भर दी जाती है और इनको बाँसों की छड़ियों द्वारा बन्द कर दिया जाता है। इन गोलों को पट्टों से मँढ़ दिया जाता है तथा इनके ऊपर सुन्दर-सुन्दर चित्र बना दिये जाते हैं। सबसे अधिक महत्त्व प्रथम चलने वाले गोले को दिया जाता है क्योंकि यह गोला उस पुतले के स्वागत में प्रथम बार चलता है। पहले पहल प्रथम हवाई गोले के द्वारा ही उस पुतले का स्वागत किया जाता है। इस प्रकार के गोलों के चलाने के कारण ये प्याथट अग्नि पकड़ लेते हैं। अग्नि की लपटें इनके प्रत्येक भाग तक पहुँच जाती हैं। अग्नि धीरे-धीरे बढ़ जाती है और ये नष्ट हो जाते हैं। जब अन्तिम प्याथट तक अग्नि की लपटें पहुँचती हैं तब तक भीड़ काफी मात्रा में बढ़ जाती है। भीड़ में काफी जोश पैदा हो जाता है। अन्त में यह उत्सव समाप्त होता है और इसमें भाग लेने वाली भीड़ गाने गाती है। प्रार्थनाएँ करती है। घर को लौटने की तैयारी करती है। इस प्रकार पुतलों के उत्सव से सम्बन्धित अनेकों ही उदाहरण देखने को मिलते हैं।

पुतलों का उत्सव अरब तथा भारत देश में भी मनाया जाता है। भारत के मुसलमान लोगों में मोहर्रम के दिनों में इस प्रकार के पुतले तैयार

किये जाते हैं। उनको एक निश्चित स्थान पर रख फर बाँस और कागज द्वारा बनाया जाता है। इनके बनाने में बड़ी कारीगरी की आवश्यकता पड़ती है। इन पुतलों को सुन्दर कागजों द्वारा व्रत के दिनों में चतुर लोग तैयार करते हैं। जब व्रत का अन्तिम दिन होता है तो मुसलमान लोग एक जगह एकत्रित होते हैं तथा अपने द्वारा तैयार किये हुये पुतलों (ताजियों) को एक स्थान पर एकत्रित करते हैं। इसी स्थान पर वे लोग इनकी प्रार्थना-पूजा-अर्चना करते हैं। इन पुतलों को वे लोग निश्चित समय पर पूरे गाँव में घुमाते हैं और एक निश्चित स्थान पर इन सभी पुतलों को शहर में जुलूस निकाल कर ले जाते हैं। वहाँ इन पुतलों को दफना दिया जाता है। इन पुतलों को बनाने में बड़ी कारीगरी की आवश्यकता होती है। ये पुतले १००-१०० फीट ऊँचे बनाये जाते हैं। इनके जुलूस में बड़ी भीड़ भाग लेती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार के अनेकों ही देशों में पुतलों के उत्सव में भाग लेने से लोग अनेकों ही धारणायें अपने मन में धारण करते हैं।

नेताओं के प्रति शोक-प्रदर्शन

जब से संसार में मृतक लोगों के प्रति श्रद्धा-भाव उत्पन्न हुआ है, तब से लोगों में भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रभाव समयानुकूल बदलते रहे हैं। असभ्य लोगों में यह विश्वास किया जाता था कि मरने के बाद मनुष्य जीवित रहता है। लोग उस आत्मा के प्रति विशेष रूप से ध्यान देते थे। नेताओं की कब्रें या गुम्बद उनके जीवन में काम आने वाले सभी साधनों से भरी हुई रहती थीं। राजा लोगों के शवों के साथ सिर्फ उनकी तलवार, उनके भाले, उनके अन्य हथियार ही नहीं रखे जाते थे, बल्कि उनके घोड़े का सिर तक भी उनके पास रख दिया जाता था। राजा लोगों की समाधि के पास सभी साधन जुटा दिये जाते थे। इसी प्रकार अन्य बड़े-बड़े नेताओं की समाधि पर भी ऐसा ही प्रबन्ध किया जाता था।

जब मनुष्य ने यह स्वीकार कर लिया कि वह मरने के बाद भी अमरत्व को प्राप्त करता है तो उसने मृत्यु के बाद आत्मा की सन्तुष्टि के लिये अनेकों ही साधन जुटाये। रोमन लोगों में नेताओं को आम जनता द्वारा आदर दिया जाता था। मृतक नेता के शव को सात-आठ दिन तक रखा जाता था। उसे नित्य गर्म पानी द्वारा साफ किया जाता था। उसके प्रति ऐसा समझा जाता था कि वह सो रहा है। उसकी यह सफाई उसके मित्रों द्वारा की जाती थी, जोकि उसके स्वागत में वहाँ पर एकत्रित होते थे। इसके बाद शव खाट के साथ निकट के श्मशान में ले जाया जाता था और उसे एक गुम्बद में खाट सहित रख दिया जाता था। राष्ट्रीय नेता या बादशाह के साथ इस उत्सव की विशेष क्रियायें की जाती थीं। ईसाई लोग अपने विश्वास और रीति-रिवाजों के अनुसार अनेक प्रकार से ऐसे उत्सवों का आयोजन करते थे तथा फारसी लोगों में लोग अपने नेताओं के सामने झुकते थे। शरीर को खाली गड्ढे के अन्दर लटका

दिया जाता था एवं उसे पक्षी और कुत्तों के लिये छोड़ दिया जाता था। यह प्रथा पारसियों में अब भी चलती है।

आज के युग में सभ्य देशों के लोग अपने नेता के प्रति सेवा-भाव दिखाते हैं और उस व्यक्ति के गुणों की याद में अनेकों ही विचार प्रगट करते हैं। जब कोई नेता अपने देश के लिये विशेष सेवायें करता है तो देश के लोग उसका शव एक सुन्दर स्थान पर रखते हैं और उसके गुणों की याद में उत्सवों का आयोजन करत हैं। वास्तव में ऐसे उत्सव प्रचार की दृष्टि से मनाये जाते हैं। आयरलैंड के सिन-फेन में डबलिन नाम का एक प्रसिद्ध लेखक था। उसने मृतक के प्रचार के लिये बहुत सी पुस्तकें निकालीं तथा इङ्गलिश लोगों की प्रथा से घृणा प्रगट की। महायुद्ध से पूर्व नेताओं ने एक बहुत बड़ा आन्दोलन खड़ा किया और पुस्तकों में शव-क्रियाओं की बुराइयों को बताया। लन्दन के निवासियों में इस सम्बन्ध में आज तक अनेकों विश्वास प्रचलित हैं जो मिस डेविस ने एकत्रित किये हैं। उसने स्त्रियों के अधिकारों के विश्वासों को प्रगट करने के लिये ये एकत्रित किये थे। यह स्त्री राजा के घोड़े के सामने उछली और मारदी गयी। सेना में भी इस प्रकार के अनेकों उदाहरण देखने को मिलते हैं। महायुद्ध में निस्स्वार्थ भाव से बलिदान हो जाने के अनेकों ही उदाहरण पाये जाते हैं। इन लोगों के प्रति अनेकों लोगों के आचार-व्यवहार बड़े ही धार्मिक ढंग के हैं। इतिहास में यह प्रयास किया गया है कि कोई भी व्यक्ति अपने गुणों, कार्यों, तथा श्रेणी के कारण भूला न जा सके। सरकार ने भूले हुए लोगों की जाँच के लिये कुछ लोगों की नियुक्ति की, ताकि कोई भी बलिदानी नेता इतिहास के द्वारा भुला न दिया जावे। इस कमीशन का यही उद्देश्य था कि देश के नेताओं के बारे में खोज की जाये और उनको इतिहास में उनकी श्रेणी के मुताबिक स्थान दिया जाये। युद्ध के बाद सरकार ने ऐसे कमीशन की नियुक्ति की, जिसने मृतक लोगों का इतिहास तैयार किया। इन मृतक लोगों के इतिहास को बड़े ही सुन्दर ढंग से एक क्रम में सजाया गया। इससे नेताओं की याद ताजा हुई। इस प्रकार की खोज से उन मृतक लोगों (वीरों) की याद जब तक इतिहास है तब तक ताजी बनी रहेगी। नेताओं ने संसार के एक हिस्से को बदलने में बड़ा ही मुख्य कार्य किया। इस प्रकार के इतिहास को तैयार करने या एकत्रित करने से उन वीरों द्वारा किये हुये कार्य का ज्ञान भी होता है। जिससे पता चलता है कि संसार में किस प्रकार के व्यक्ति कितना परिवर्तन कर सकते हैं। मानव की शक्ति का भान प्राचीन वीरों की याद से आभासित होता है। आज हम अपने प्राचीन नेताओं की याद करते हैं। उनकी याद के साथ-साथ हमको उनके

कार्य का ज्ञान शीघ्र हो जाता है। उन लोगों की स्मृति हमारे हृदय-पटल को बदलने में बड़ी सहायक सिद्ध होती है। अमेरिका के मित्र राज्यों ने मृतकों के बारे में जहाँ तक सम्भव हो सका है, सबकुछ जानने की चेष्टा की है। अंग्रेज लोगों ने भी अपने महायुद्ध में काम आये वीरों की तलाश कराई और उनके लिये जितना सम्मान दिया जा सकता है, वह प्रदान किया। महायुद्ध के अंग्रेज वीरों की खोज होने पर उनको सम्मान का पात्र बनाया गया। मृतक-आचार-व्यवहार में यह एक नवीन पद्धति है। इस प्रकार खोज करके सम्मान प्रदान करना आज के युग की नवीन पद्धति के अन्तर्गत आता है। ११ नवम्बर १९२० को अनजाने वीरों का एक शव-बक्स फ्रान्स में लाया गया, जिसमें अनेकों ही ऐसे शव रखे हुये थे जिनको कोई भी नहीं जानता था। इनमें से एक वीर फ्रांस में मी पाया गया था। इस शव-बक्स को फ्रांस से वैस्ट मिनिस्टर लाया गया। इन अनजाने शवों में से अनेकों ही ऐसे व्यक्तियों के शव थे, जो अपना कर्त्तव्य पूरा करते हुये अपने देश पर बलिदान हुये थे। इन्होंने इतिहास में अपने राष्ट्र की इज्जत को बचाने के लिये अपने कर्त्तव्य को निभाया था। इनमें एक ऐसा शव भी है जो फील्ड मार्शल की पोशाक पहिने हुये है। लोग इस पर फूल पत्तियाँ आदि सभी ऐसी चीजें चढ़ाते हैं, जो कि शवों पर चढ़ाई जाती हैं। इस प्रकार का चिन्ह या शव-बक्स का सभी देशों ने अनुकरण किया है। सरकार का यह कर्त्तव्य होता है कि वह बाहरी लोगों की हर प्रकार की देख-भाल करे और उनके सम्बन्ध में पूरा व्यौरा अपने यहाँ पर रखे। बाह्य व्यक्ति देश में बने हुये स्मारक चिन्हों पर गजरा या हार चढ़ाते हैं, ये लोग अनजाने नेताओं के स्मारक चिन्हों पर भी हार चढ़ाते हैं। लेकिन आज-कल यह प्रथा कहीं-कहीं कतई बन्द कर दी गयी है। इस प्रथा को लोगों ने त्याग दिया है। इन प्रथाओं के बजाय आज देश के लोग अपने नेताओं के प्रति एक वार्षिक उत्सव मनाते हैं। यह उत्सव उन लोगों के समाधि-स्थल पर मनाया जाता है। इन उत्सवों में उन लोगों के जीवन सम्बन्धी कार्यों की याद की जाती है तथा उनके प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित की जाती हैं। लन्दन में युद्ध के मुख्य वीरों की समाधियाँ, उनकी याद में आज भी बनी हुई हैं। लन्दन में एक छोटा गाँव हैम्पडन है जिसमें कुछ झोंपड़ियाँ हैं। मगर यह गाँव देश के इतिहास में अपना मुख्य स्थान रखता है। इस गाँव में एक पत्थर है जो तीन नाम धारण किये हुए है। इस स्थान पर प्रतिवर्ष एक जुलूस निकलता है, जिसमें वीरों की याद की जाती है। जुलूस उन वीरों के कार्यों की स्मृति-हेतु निकाला जाता है। यहाँ वीरों की स्मृति के लिये एक दूसरा साधन भी अपनाया

डूब जाते हैं। जैसे ही बारह बजते हैं तमाम बत्तियाँ बुझा दी जाती हैं। पादरी लोग और धार्मिक परिषदों के सदस्य एक-दूसरे से प्रेम प्रदर्शित करते हैं और कहते हैं कि 'ईसा उठ रहा है।' तो उसके उत्तर में अन्य लोग कहते हैं, 'वह वास्तव में उठ रहा है।' गलियों में ऐसे अनेकों ही दृश्य देखे जा सकते हैं। इस के बाद दावत के प्रोग्राम प्रारम्भ हो जाते हैं। इस प्रकार की दावतें दूसरे दिन तथा इसके बाद के दिन तक जारी रहती हैं। इस दिन विशेष केक तथा विशेष खाद्य बनाये जाते हैं। इस दिन लोग शराब खूब पीते हैं। ईसामसीह के स्मरण-दिवस पर इतनी खुशियाँ मनायी जाती हैं कि लोग अपनी भूख तक को भूल जाते हैं।

यह पवित्र सप्ताह अंग्रेज लोगों में बड़ी धूम-धाम के साथ मनाया जाता है। लोग इस सप्ताह में आनन्दों में डूबे रहते हैं, तरह-तरह के उत्सवों का आयोजन करते हैं। आज सारे संसार के ईसाइयों में यह उत्सव बड़ी धूम के साथ मनाया जाता है।

भ्राधुनिक साधु, फकीर और तपस्वी

प्रत्येक व्यक्ति इस संसार से छुटकारा चाहता है और सोचता है कि वह किसी प्रकार दूसरे लोक में पहुँच जाये। इस संसार से छुटकारा पाने के लिये लोगों ने बड़े-बड़े कष्ट सहन किये हैं। विचित्र प्रकार के ढँगों को अपनाकर जीवन-मरण के बन्धन से मुक्त होने का घोर प्रयत्न किया है। उनके इन अनेकानेक ढँगों में से कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। उन लोगों ने बताया है कि यह संसार भूल जाने के प्रयत्न करने से भूला जा सकता है। अनुभव बताता है कि संसार में मानव के प्रेम से बढ़कर शक्तिशाली कोई भी चीज़ नहीं है। साधु लोग अपनी इच्छा में इतने दृढ़ होते हैं कि वे सिर्फ ईश्वर के साथ अकेले रहते हैं। उन लोगों का कथन है कि जिस प्रकार एक प्रेमी अपने प्रिय को प्राप्त करने के लिये अनेकों कष्ट सहन किया करता है, उसी प्रकार वे लोग उस परमात्मा की प्राप्ति के लिये कष्टों को सहन किया करते हैं। जब हम मनो-वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखते हैं, तो पाते हैं कि प्रेम में मानसिक रहस्य छिपा रहता है। यह आन्तरिक मानसिक रहस्य ही मानव को प्रेम करने की ओर अग्रसर होने के लिये प्रेरित करता है। धर्म के प्रति मानव का आन्तरिक प्रेम होता है। कभी-कभी मनुष्य के सामने ऐसी परिस्थितियाँ भी आ जाती हैं जब उन्हें किसी न किसी धर्म से अपना सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है। यूरोप में समय-समय पर धर्म की लहरें उठती रही हैं। जीवन की परिस्थितियों ने ही मानव के जीवन पर काफी प्रभाव डाला है। जब हम इंग्लैंड में फ्लेगलेन्ट्स के इतिहास को देखते हैं, तो हमको १८वीं और १९वीं शताब्दि में इंग्लैंड और वेल्स के बीच जो सँकरी लाइन खिंची हुई थी उसका ज्ञान होता है और पता चलता है कि इस सँकरी रेखा के द्वारा किस प्रकार आनन्दमय चीज़ों को आपस

में बाँटा गया था। मनुष्य किसी भी चीज को अपने दृष्टिकोण से देखता है और वह धर्म को अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर अपनाता है।

मनुष्य ने सदैव इस संसार से दूर रहने की बात सोची है। शरीर को या मस्तिष्क को कुछ समय के लिये या स्थिर रूप से किसी विषय में लगाये रखने को संसार के बड़े-बड़े गुरु और नेताओं द्वारा अच्छा माना गया है। लोग अपने मन को किसी की ओर लगाये रखने के लिये कुछ न कुछ अभ्यास करते ही रहते हैं। मनुष्य ने इस संसार से सदैव ही मोह त्यागते पर जोर दिया है। जितने भी धार्मिक धर्मोपदेशक या नेता हुये हैं, उन सभी ने इस संसार से मोह त्यागा है। ऐलिजा ने सात वर्ष तक रेगिस्तान में निवास किया था। ईसामसीह ने स्वयं एकान्तवास किया था। बुद्ध बुद्धत्व की प्राप्ति के हेतु कुटुम्ब से दूर हट गये तथा अन्त में आत्मिक विश्वास प्राप्त किया। बुद्ध के बाद के समय में भी रामकृष्ण परमहंस, गांधी जी आदि अनेक ऐसे महापुरुषों ने इसी प्रकार का प्रयत्न किया है।

जोहैन ने स्वयं को खालों के कपड़ों से ढका और जंगली जड़ी-बूटियों तथा शहद खा कर अपना जीवन निर्वाह किया। इसने दुष्ट आदमियों से अपना सम्बन्ध कतई विच्छेद कर दिया और सोचा कि अन्य व्यक्ति उसके पीछे चलेंगे तथा जीवन के साधारण ढंग को अपनायेंगे। इस किस्म के व्यक्ति अपने सुधार के संसार के हित में अधिक लगे रहते हैं। इन लोगों का कार्य संसार में सुधार करने का होता है।

आज के फकीर वह साधु प्राचीन बातों पर ही विशेष ध्यान देते हैं। ये लोग प्राचीन सिद्धान्तों को जिनमें कि मानव को अधिक कष्ट सहन करना पड़ता था, मानते हैं। शरीर को कष्ट देने के कारण लोग व्रत तथा इसके समान अन्य कष्ट-दायक साधनों को अपनाते हैं। इस प्रकार के साधनों द्वारा शरीर धीरे-धीरे कष्ट सहन करने में अभ्यस्त हो जाता है। लोग अपने सम्प्रदाय के अनुसार इन कष्टों को सहन करते हैं। कभी-कभी जब धर्म का प्रभाव अधिक होता है तो इसकी स्थिति और भी गहन बन जाती है। इस प्रकार व्रत आदि करने की प्रथा प्राचीन लोगों ने अपनाई थी। शायद इस बात को प्राचीन लोगों ने शारीरिक बीमारियों को दूर करने के कारण अपनाया था। प्राचीन लोग सोचते थे कि इस तरीके से आत्मायें हट जाती थीं तथा अपना आधिपत्य नहीं जमाने पाती थीं। इस प्रकार के साधनों द्वारा वे लोग यह सोचते थे कि ऐसे उपायों द्वारा दुष्ट आत्मायें आक्रमण नहीं कर सकती थीं। बाद के समय में भी

लोगों ने इसी सिद्धान्त को स्वीकार किया। प्राचीन लोगों में विश्वास था कि एकान्त में निवास करने से मनुष्य अपने को सांसारिक प्रभावों से बचा कर रख सकता है तथा स्वयं को भगवान की सेवा में अधिक लगा सकता है। इस प्रकार एकान्त में निवास करने से मनुष्य अन्य प्रभावों से भी अलग रहता है। अफ्रीका में यह आमतौर पर पाया जाता है कि वे लोग दुल्हिन को जब तक सूर्य न उग आये, एकान्त में रखते हैं तथा यह भी पाया जाता है कि जब तक दुल्हिन योग्य नहीं हो जाती, उसे उस समय तक के लिये बिल्कुल अलग रखा जाता है। जब यह निर्जनता का समय व्यतीत हो जाता है, तो वे स्त्री-पुरुष दोनों ही जाति के सदस्य बन जाते हैं। इस प्रकार की निर्जनता नवीन जीवन की तैयारी के लिये रखी जाती है। इसके द्वारा वे लोग मृत्यु के द्वार तक पहुँचने में सफलता प्राप्त करते हैं। इसलिये उन लोगों में एकान्त के उत्सव मनाये जाते हैं। दार्शनिकता से पूर्ण धर्मों के मानने वाले लोग सन्यासी के पास पहुँचते हैं और सोचते हैं कि इस प्रकार उनके निकट बैठने से उनका उद्धार हो रहा है। कभी-कभी शेमन या इलाजी हिस्टीरिया का इलाज करने के लिये अपना कार्यालय अलग से कायम करते हैं। इससे वे लोग यह सोचते हैं कि एकान्त का प्रभाव व्यक्ति के मस्तिष्क पर पड़ता है, इसलिये वे लोग इलाज करने का स्थान किसी विशेष निर्जन स्थान को चुनते हैं। कुछ मामलों में यह आमतौर से होता है कि शेमन कभी-कभी अपनी मानसिक कमी को दूर करने के लिये विशेष उपयुक्त स्थान को चुनता है। इस प्रकार की बातें आधुनिक और प्राचीन सन्यासियों में पाई जाती हैं। मिस्र में धार्मिकों की दृष्टि में पवित्रता ही मनुष्य की मानसिक निर्बलताओं को दूर करने में सहायक सिद्ध होती है।

जब कोई व्यक्ति इलाजी (सयाने) के रूप में अपना कार्य प्रारम्भ करता है तो उसे इस काम के जानने वाले किसी चतुर व्यक्ति के नीचे काम करने के लिये जाना पड़ता है। भारत और मिस्र में अगर कोई व्यक्ति साधु या पवित्र बनना चाहता है तो उसे किसी सन्यासी या पवित्र आदमी से अपना सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है। ऐसे व्यक्ति को कुछ समय के लिये कुछ काठ के साथ एकान्त में रहना पड़ता है। यह समय कुछ सप्ताह तक का हो सकता है। इस समय में उस प्राणी को कठिनाई में से गुजरना पड़ता है, साथ ही कुछ भूख का सामना भी करना पड़ता है। इस समय में वह व्यक्ति आत्मा को आवाज को सुनता है और वह उसे अपने मददगार के रूप में लेता है। शेमन का प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले व्यक्ति को इस प्रकार के निर्जनता के वातावरण में कई बार जाना पड़ता है। जब उसकी यह ट्रेनिंग समाप्त होती है तो वह

इस ट्रेनिंग की पूर्ति करने से पहले कई बार ऐसे वातावरण में होकर गुजरता है। शोमन की ट्रेनिंग प्राप्त करने की प्रथा उत्तरी-पूर्वी एशिया और उत्तरी पश्चिमी अमरीका में बहुत हद तक पायी जाती है। यह प्रथा प्राचीन लोगों में भी पाई जाती थी।

प्राचीन ईसाईयों के चर्च में संन्यासी लोगों की एकान्तता में कुछ सन्देह हो सकता है। लेकिन उनकी इस एकान्तता में नित्य की शुद्धता उनको बुरी आत्माओं के प्रभाव से बचाती रहती है। यह मिस्र में प्रारम्भ हुई, जहाँ अलेक्जेंड्रिया में अनेकों ही धार्मिक, अनोखी रूढ़ियाँ थीं, दार्शनिकों के सिद्धान्त थे। आत्मिक प्रभाव के कारण एन्थोनी और साइमन ने रेगिस्तान को अपने साथियों सहित पार किया था, ताकि वे उन लोगों को भक्ति के अभ्यास के कारण दुष्टात्माओं के प्रभाव से बचा सकें। किस प्रकार एक साधु ४० वर्ष तक एक गुम्बद के ऊपर खड़ा रहा और किस प्रकार दूसरे साधु ने जीवन भर उसकी परिक्रमा की और अन्य लोगों ने उनके प्रति कितनी भक्ति प्रदर्शित की, यह बात किसी से छिपी नहीं है। इस प्रकार पता चलता है कि एक व्यक्ति अपना जीवन ईश्वरीय तत्त्व प्राप्त करने के लिये किस प्रकार लगा देता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि स्वयं को साधु के रूप में लाने के लिये कष्टमय जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उसे व्रत करने पड़ते हैं, पत्थरों के ऊपर गुफा में या पत्थरों की गुफाओं में अपना बिस्तर बनाना पड़ता है, अपने बालों को बढ़ाना पड़ता है तथा अपने चेलों को भी साथ में लगाना पड़ता है। आयर-लैंड में भी स्वयसेवक को सन्त बनाने के लिये बड़ी कठिन जिन्दगी व्यतीत करनी पड़ती है। केविन, बिना किसी प्रकार की निद्रा के, सात वर्ष तक लगातार एक स्थिति में खड़ा रहा और एक दिशा में ही उसने अपनी भुजा फैलाये रखी। मौचुआ ने भी अपने जीवन को एक पत्थर के छोटे-से छिद्र में रह कर गुजार दिया। उस छिद्र में होकर उसके जीवन के हितार्थ खाना मुश्किल से ही पहुँचाया जा सकता था। एक दूसरे साधु ने सात वर्ष तक स्वयं को एक गड्ढे में बन्द रखा था।

आजकल भी भारतीय योगी इस प्रकार की अनेकों ही बातों को उत्सवीय ढंग से मनाते हैं। हमारे देश में साधु अपना जीवन बड़ा ही कठिन व्यतीत करते हैं। वे लोग सात-सात वर्ष तक जल में एक ढंग से बिना हिले-डुले खड़े रहते हैं और भगवान का कीर्तन किया करते हैं। बहुत से साधु वर्षों तक एक पैर से खड़े रहते हैं तथा अनेकों साधु वर्षों तक एक झूले पर खड़े

रहते हैं। जब वे अपने निश्चित समय की अवधि को पूर्ण कर लेते हैं तो इसका अन्त एक उत्सव मना कर करते हैं। यह उत्सव गाँव वालों की ओर से सामूहिक रूप में मनाया जाता है। उत्सव के दिन अनेकों प्रकार की पूजायें, हवन, कीर्तन आदि किये जाते हैं। सेमेटिक लोगों में जब वे ईसाई लोगों के सम्पर्क में आये तो अनेकों अभ्यास आ गये। पवित्र व्यक्ति बनने वाले को प्राचीन युग में अनेकों ही अभ्यासों में होकर गुजरना पड़ता था। प्राचीन अभ्यासों में से मुस्लिम संसार में अनेकों ही अभ्यास आज भी जीवित हैं। मुस्लिम लोगों में ये अभ्यास, ऐसा प्रतीत होता है कि शायद भारतीयों में से आये। मैगस्थनीज ने बताया है कि शायद भारतीय जंगल में निवास करते थे, वल्कल के वस्त्र धारण करते थे और यौन-सम्बन्धी अनुभवों से अनिभन्न रहते थे। तक्षशिला के दो वक्ता पूरे दिन एक टाँग से खड़े रहते थे और रात्रि को चाहे कैसा ही मौसम हो जमीन पर सोते थे। इस प्रकार मैगस्थनीज के व्यौरे से भारतीय लोगों के सम्बन्ध में बहुत-कुछ ज्ञात होता है। पौराणिक आधार तो और भी बहुत कुछ बतलाते हैं।

जापान के साधुओं के विषय में भी अनेक बातें प्रचलित हैं। प्रारम्भ के चीनी यात्रियों द्वारा यह बताया गया है कि जापानी लोग एक व्यक्ति की नियुक्ति करते हैं, जिसे वे लोग शराब न पीने वाले के नाम से जानते हैं। इस व्यक्ति के लिये यह हिदायत होती है कि वह न तो स्नान कर सकता है, न अपने बालों में कंधा कर सकता है, न गोشت खा सकता है और न स्त्री-गमन कर सकता है। इस प्रकार इस व्यक्ति पर अनेकों ही बन्धन होते हैं। जब देश में खुशहाली होती है या किसी क्षेत्र में विजय प्राप्त होती है तो इस व्यक्ति को इनाम दिया जाता है। और जब सौभाग्य प्राप्त करने में असफलता होती है तो इस व्यक्ति को सजा दी जाती है। यहाँ पर वंश-परम्परात्मक भिक्षुओं के स्कूल हैं, जो कि जापान के इतिहास में प्राचीन काल से चले आ रहे हैं। ये लोग अपने को ईश्वर फ्यूडूमा का वंशज मानते हैं। राजा के साथ इनके कर्त्तव्य जुड़े रहते हैं और खास तौर से शाही महल की इमारत से इनका सम्बन्ध जुड़ा रहता है। वास्तव में ये लोग बहुत ही पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं।

आधुनिक युग में भारतीय साधुओं द्वारा पवित्रता सम्बन्धी अनेकों ही अद्भुत अभ्यास काम में लाये जाते हैं। यद्यपि ये प्रयोग आज नष्ट होते जा रहे हैं। फिर भी इनमें से अनेकों ही आज तक लाखों ही व्यक्तियों में पाये जाते हैं। आज देश में ऐसे लोग भीख मांग कर गुजर करते हैं, इससे देश के

अनेकानेक नागरिकों को बहुत हानि उठानी पड़ती है। देश की समृद्धि में भी अन्तर आता है। दरअसल आज यह एक भार-स्वरूप प्रथा बनकर रह गई है।

यद्यपि सन्यास को वेदों में कोई स्थान नहीं दिया गया है; मगर इसका उद्भव हमें अन्य प्राचीन पवित्र साहित्य में ही दिखाई देता है। शरीर का चार भागों में कार्य करना, जिसके मुताबिक भारतीय समाज को वर्णों में विभक्त किया है, गुजरना आवश्यक है। वैरागी के लिये मनु ने कुछ निश्चित नियम बनाये हैं, जिनमें उसकी खुराक, कपड़े तथा जीवन के रहन-सहन के बारे में पूरा व्यौरा दिया है। इन नियमों के अन्तर्गत रहने वाला व्यक्ति ही जीवन की ऊँचाई तक पहुँचने में सफल हो सकता है। मनुस्मृति में सभी सिद्धान्त बड़े स्पष्ट ढंग से बताये गये हैं कि कैसी प्रवृत्ति वाला पुरुष परम ब्रह्म को प्राप्त करने में सफल सिद्ध हो सकता है।

प्राचीन युग में पवित्र तथा वैरागी जीवन व्यतीत करना, मनुष्यत्व को प्राप्त करना तथा जिन्दगी की सबसे ऊँची चोटी पर पहुँचना, माना जाता था। लेकिन बाद के समय में धार्मिक भक्त का जीवन अपनी जाति के प्रति एक विद्रोह करना माना जाने लगा। वैरागी जीवन व्यतीत करने वाले लोग हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मों में पाये जाते हैं। बहुत से प्राचीन वैरागी मुस्लिम जाति से सम्बन्ध रखते थे और आज भी उनके समाधि-स्थल पवित्र माने जाते हैं। वे बाद में मुसलमान हुए थे। हिन्दू सन्यासी अनेकों ही सम्प्रदायों में विभक्त होते हैं। ये लोग अलग-अलग सम्प्रदाय की पोशाक के द्वारा जाने जाते हैं। इन लोगों की पोशाक बहुत ही खास ढंग की, और एक खास ढंग से सम्बन्ध रखती है। इन लोगों की पोशाक में गेरुआ रंग ही अधिक प्रचलित है। यह पोशाक खाल की भी हो सकती है। इन साधुओं में से एक वर्ग तो चीते की खाल के वस्त्र धारण करता है। ऐसे लोग कपड़े नहीं पहिनते। इन साधुओं में कुछ लोग नग्न अवस्था में भी रहते हैं, जैसे जैन तथा नागा। इन साधुओं के सिर पर एक विशेष प्रकार का तिलक-चिन्ह लगा होता है, जो पवित्रता का द्योतक होता है। पृथ्वी की मिट्टी से या राख के द्वारा ये लोग अपने शरीर की मालिश करते हैं, जिसे भस्म रमाना कहा जाता है।

एक सन्यासी के लिये यह आवश्यक है कि वह कुछ समय जंगल में निर्जनता में रहकर व्यतीत करे। जो व्यक्ति इस बात का इच्छुक होता है कि वह पवित्र बनना चाहता है तो उसे किसी साधु के पास रह कर उसका चेला बनना पड़ता है। भारत में वैरागी जीवन व्यतीत करना बड़ा ही कठिन है।

साधु को बड़ा ही अनुशासनात्मक जीवन व्यतीत करना पड़ता है। यहाँ पर ऐसे व्यक्ति को अपना जीवन गरीबी में रहकर तथा माँग कर बिताना पड़ता है। साधु लोग दूसरों से याचना करके अपने जीवन के साधन प्राप्त करते हैं। साधु का वस्त्र साधारण होना उचित है। चाहे वह ऊनी ही क्यों न हो। एक साधु को अपने साथ सिवाय लकड़ी के प्याले के कुछ भी नहीं रखना चाहिये। यह प्याला नारियल के खोखले का या पीतल का या अपने सम्प्रदाय के मुताबिक अन्य वस्तु का हो सकता है। साधु दिन में एक बार से अधिक नहीं माँग सकता। वह किसी के खाने के पूर्व या खाने के बीच में नहीं माँग सकता। याचना, कुटुम्ब के भोजनोपरान्त ही की जा सकती है। जब कोई साधु अधिक ख्याति प्राप्त कर लेता है तो उसके शिष्य उसके पास अनेकों ही प्रकार की भेंटें स्वयं ला लाकर पेश करते हैं। गुणों के अनुकूल प्रत्येक साधु अपनी ख्याति प्राप्त कर लेता है। एक ऐसा भी सम्प्रदाय है जिसके लोग यह कहते हैं कि वे मनुष्य के मांस में विशेष प्रकार का स्वाद महसूस करते हैं तथा ये लोग मानव का गोشت कब्रों से और नदियों से प्राप्त करते हैं। ये लोग शव का गोشت खाने में कुछ महत्त्व समझते हैं। हिन्दू वैरागियों में शारीरिक अनुशासन, जो कि काफी लाभकारी होता है, माना जाता है। बहुत से भक्त काँटे के ऊपर झूला डाल कर झूलते हैं। इसमें धातु का काँटा काम में लाया जाता है।

वैरागी जीवन केवल पुरुषों के हेतु ही खुला हुआ नहीं है इसमें औरतें भी भाग ले सकती हैं। स्त्री या पुरुष कोई भी वैरागी जीवन व्यतीत कर सकता है। लेकिन भारतीय सामाजिक स्थिति ऐसी है जिसमें औरतें इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने के लिये आज्ञा नहीं पाती हैं। हमारे देश की सामाजिक रचना इस प्रकार की बन गयी है, जिसमें औरतों को घर से बाहर निकालने की कोई प्रथा नहीं है। आज इस अवस्था में काफी परिवर्तन हो रहा है। वैरागी जीवन व्यतीत करने वाली औरतों में बनारस की एक औरत का जिक्र मिलता है जो करीब ३८ वर्ष तक निर्जन स्थान पर जमीन में एक गड्ढे के भीतर रही।

जब बौद्ध धर्म भारत से तिब्बत पहुँचा तो इसको ले जाने वाले सन्यासी लोग ही थे। वे लोग इस देश से निकलकर अन्य देशों में पहुँचे और उन्होंने ही इस धर्म का प्रचार किया। इस धर्म के मुताबिक अनेकों ही व्यक्तियों ने विशेष रूप से साधु जीवन व्यतीत किया। तिब्बत के एक हिस्से की धार्मिक परिस्थितियों में यही सत्य है कि वे लोग आध्यात्मिक पूजा करें। यह कहा

जाता है कि जब खण्डन करने वाले लोगों के प्रति तलवार उठाई गयी तो कोई भी ऐसा व्यक्ति दिखाई नहीं दिया जिसने खण्डन न किया हो। भारत के सन्यासियों ने उस समय वहाँ पर बहुत ही अच्छी बातें की थीं। इससे लोगों को काफी लाभ हुआ। यहाँ पर हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जातियों के अन्तर्गत अग्नि को लेकर चलने का उत्सव किया गया था। इस अग्नि-उत्सव का समर्थन दोनों ही जातियों ने किया। इस अग्नि-उत्सव में पवित्र व्यक्ति और उसके पीछे चलने वाले शिष्य लोग पत्थरों के ऊपर जो कि गर्म हुये रहते हैं, चलते हैं। ये लोग नंगे पैरों से इस अग्नि के मध्य में होकर निकलते हैं, और इन लोगों को किसी प्रकार की हानि नहीं होती।

मुसलमान फकीर तरह-तरह की शक्तियाँ अपने पास रखते हैं। जिसकी खोज के लिये ये लोग प्राचीन चीजों की सहायता लेते हैं। इलाजी अपने दाम्पत्य जीवन में धार्मिक जीवन को विचार कर चलते हैं। जो शक्ति ये फकीर लोग प्राप्त करते हैं उसके द्वारा ये काफी लाभ उठाते हैं। इस शक्ति के द्वारा ही ये लोग बीमार की बीमारी को दूर करते हैं, सूखे स्थानों पर वर्षा करने की योजना बनाते हैं, समुद्र के ऊपर चलने की सोचते हैं और जमीन पर उड़ने की भी शक्ति दिखाना चाहते हैं। कुछ भारतीय साधु जहरीले प्रभाव को दूर करने की शक्ति भी रखते हैं। ये साधु लोग अगर किसी को कोई माँप या जहरीला कीड़ा काट खाये तो उसे अपने तन्त्र-मन्त्रों की शक्ति के द्वारा ठीक करने की सोचते हैं। यहाँ तक देखा जाता है कि कुछ साधु लोग तो साँप के जहर को अपने मुँह से खींचकर निकाल फेंकते हैं। जिस आदमी को साँप काटता है, उसकी काटी हुई जगह को ये लोग अपने मुँह से चूसते हैं तथा उसके जहर को निकाल देते हैं। इस सम्बन्ध के अनेकों ही अद्भुत उदाहरण हमको देखने को मिलते हैं। भारत में कुछ लोग इन जहरीले कीड़ों का इलाज निम्न प्रकार से करते हैं ; यह इलाज बड़ा ही आश्चर्यजनक प्रतीत होता है।

एक व्यक्ति को साँप काट लेता है और दूसरा व्यक्ति उस साधु के पास खबर करने जाता है कि अमुक व्यक्ति को साँप ने काट लिया है तो वह साधु उसी व्यक्ति के गाल पर एक तमाचा जोर से मारता है। इधर उस साधु का तमाचा मारना होता है और उधर मरीज का ठीक होना होता है। तमाचा लगाने से ही साँप का काटा हुआ मरीज ठीक हो जाता है। इस प्रकार का एक व्यक्ति मथुरा में सिटी मजिस्ट्रेट था। वह साँप के इलाज को इसी ढंग से करता था। अगर इन मजिस्ट्रेट महोदय को कोई टेलीफोन पर भी कहता था कि

अमुक व्यक्ति को साँप ने काट लिया है तो ये साहब टेलीफोन पर ही थप्पड़ लगाते थे और उधर आदमी ठीक हो जाता था। इस प्रकार के अनेकों ही उदाहरण हमको भारत में देखने को मिलते हैं। जहरीले कीड़े के इलाज के सम्बन्ध में हिन्दू साधु मुसलमान फकीरों से मिलते-जुलते हैं और वे लोग साँप को आकर्षित करने की क्रिया करते हैं। ये लोग अपनी शक्ति के द्वारा साँप को बुलाते हैं। उस शक्ति के द्वारा साँप खिचा हुआ चला आता है।

संसार में दरवेश नामक फकीर लोग संसार से अलग रहने के अभ्यास को नहीं मानते। वे लोग देश में ही निवास करते हैं। अधिक से अधिक ये लोग किसी एकान्त गुफा में रहते हैं, जिसमें ये लोग व्रत करके जीवन व्यतीत करते हैं। यहाँ पर ये लोग कम से कम चालीस दिन तक का व्रत करते हैं। इस प्रकार के अभ्यासी लोग साधु के रूप में ही पुकारे जा सकते हैं। कुस्तुनतुनिया के दरवेशों के नृत्य संसार में काफी प्रसिद्ध हैं। केरो में इन दरवेशों में जो प्रधान होता है, वह घोड़े की पीठ पर बैठकर भक्तों के ऊपर चलता है। ये भक्त लोग जमीन पर लेट जाते हैं। वे लोग इसी में अपना महत्त्व समझते हैं कि उनके ऊपर होकर उनका प्रधान दरवेश निकल रहा है। मिस्र और टर्की में इस प्रकार के फकीरों का बहुत मान किया जाता है। ये लोग इस प्रकार की शक्ति के लिये प्रसिद्ध होते हैं। विशेष रूप से मिस्र और उत्तरी अफ्रीका में ये फकीर आश्चर्य-जनक शक्ति रखते हैं। ये लोग याचना करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं। पहिने के लिये इन लोगों के पास फटे-पुराने ऊनी कम्बल होते हैं तथा अपने सिर पर ये लोग चिथड़े लपेटे रहते हैं। ये कपड़े, मिट्टी और धूल से बड़े गन्दे हो जाते हैं। ये लोग दावतों के दिनों पर अपना निजी आनन्द मनाते हैं। भारत में साधु तथा फकीर लोग दोनों ही आत्माओं को बुलाने का उत्सव करते हैं। यहाँ पर ऐसे लोग दुष्टात्माओं का इलाज करते हैं। ये अपनी शक्ति के द्वारा दुरात्मा को बुलाते हैं और उससे पूछते हैं कि तुमको क्या चाहिए ? तुम उस व्यक्ति को क्यों तंग कर रहे हो ? उस आत्मा से लोग सभी बातें स्पष्ट रूप से पूछते हैं। भारत देश में भूत-प्रेतों को दूर करने के लिये ये लोग अनेकों ही साधन करते हैं। यहाँ पर तो यह भी बताया जाता है कि ये लोग इन दुष्टात्माओं से अनेकों प्रकार के निजी कार्य भी कराते हैं। इस प्रकार संसार के भिन्न-भिन्न देशों में साधु तथा फकीर भिन्न-भिन्न रूप में अपने सम्प्रदायों के अनुकूल कार्य करते हुए पाये जाते हैं।

उत्तरी यूरोपीय शादी के रिवाज

सम्पूर्ण उत्तरी यूरोप में विवाह के रिवाज प्रायः एक से पाये जाते हैं। इसका मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि उत्तरी यूरोपीय प्रदेश जिसमें कि स्वीडन, नार्वे, डेनमार्क आदि आते हैं, बर्फीले क्षेत्र हैं। इन प्रदेशों की बाह्य परिस्थिति लगभग समान है। यहाँ पर नॉर्डिक लोगों की संख्या अधिक मिलती है, जो कि अपने गुणों तथा रीति-रिवाजों में एक समान हैं। ये लोग अपने रीति-रिवाजों को आज के युग तक, जिनको कि इन्होंने अपने पूर्वजों से प्राप्त किया है, नये रूप में नहीं बदल पाये हैं। ये रीति-रिवाज उनकी वंश-परम्परा में घुल-मिल चुके हैं। अपनी शादी के रिवाजों तथा उत्सवों में वे लोग या तो रोमन-चर्च या लूथर का अनुगमन करते हैं। आज भी अनेकों ही ऐसी बातें देखने को मिलती हैं, जो प्राचीन समाज ने अपनी सुविधा के लिए बनाई थी। ये सभी रिवाज मानव-समाज ने प्राचीन युग से आधुनिक युग तक भिन्न-भिन्न रूपों को लेकर निश्चित किये; किन्तु ये सभी विश्वास और रिवाज समाज में आज तक ज्यों के त्यों जीवित देखने को मिलते हैं। उत्तरी यूरोप में मूर्ति-पूजा, जो कि ईसाई धर्म का परिचय देती है, काफी दिनों तक जीवित रही। यहाँ चर्च सम्बन्धी अज्ञान काफी दिनों तक चलता रहा, शायद ऐसा अन्य स्थानों पर देखने को नहीं मिलता।

उत्तरी रूस में शादी के रिवाज जातीय प्रभाव को प्रगट करते हैं। विभिन्न जातियों के सम्मिश्रण के प्रभाव से इस देश के रिवाज प्रभावित हुए हैं। नार्वे देश के लैप्स, स्वीडन, लायलैंड तथा फिनलैंड के फिन्स, पूर्वी केरेलिया और लेटेविया की जातियों में परम्परा तथा सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों ने शादी के रिवाजों पर बड़ा ही अनोखा प्रभाव डाला है, जो कि अनेक रूपों में विवाह के अवसर पर देखा जा सकता है।

युद्ध से पूर्व रूस में बिचौलिये शादी में काफी महत्वपूर्ण थे। वास्तव में उनका एक-एक वर्ग-सा बन गया था, जो इसको अपना धन्धा समझता था कि एक दूसरे से शादी की रीति और व्यवहार तथा लेन-देन का सौदा तय करे। ये वर्ग ही एक दूसरे की शादी के आचरण तथा व्यवहार तय कराते थे। इस रिवाज के विकास में हमको पूर्व का प्रभाव दृष्टिगत होता है। स्केन्डेनेविया के लोगों में मुख्य रूप से इसका कारण उनके नॉर्डिक पुरखों का प्रभाव दिखाई देता है।

नॉर्डिक लोगों के प्राचीन इतिहास को पढ़ने से ज्ञात होता है कि यह एक लड़ाकू और विजयी जाति थी। इसने अन्य जातियों की भाँति अपने विवाह के रिवाजों को शुद्ध बनाये रखा। टन्यूटौनिक लोगों में विवाह उनकी सामाजिक स्थिति पर निर्भर रहा। जब सभ्य लोगों का वर्ग स्वतन्त्र लोगों के वर्ग से धीरे-धीरे अलग हुआ तो उनकी शादियों की सुविधायें उनके समाज की स्थिति पर निर्भर हुईं। उनके यहाँ अयोग्यता शादियों में एक रुकावट थी। यूरोप के शिष्ट जनों में यह एक नियम बन गया। स्वीडन में यह बात आज भी तुलनात्मक रूप में गहराई के साथ देखी जा सकती है। इंग्लैंड और जर्मनी में यह बात प्रथम महायुद्ध तक रही और बाद में इसका टूटना प्रारम्भ हो गया, हालाँकि रिवाज के मुताबिक एक व्यक्ति अपने समाज से निम्न समाज की स्त्री के साथ शादी कर सकता है, लेकिन यह बात उसके कुटुम्ब के लोगों तथा समाज के लोगों की दृष्टि में अच्छी नहीं मानी जाती। इस प्रकार की शादियों को लोग निम्न कोटि की शादी समझते हैं।

नॉर्डिक लोगों में शादी में व्यक्तिगत बात के अतिरिक्त समूह का अधिक सम्बन्ध रहता था तथा सामाजिक परिस्थिति का काफी प्रभाव पड़ता था। टन्यूटौनिक लोगों में शादी की दो किस्में प्रचलित थीं। एक रिवाज में समूह का यह अधिकार था कि वे दुल्हन की कीमत चुकाये तथा मूल्य का निर्धारण समूह द्वारा होता था। स्केन्डेनेविया में छठी और नवीं शताब्दी के मध्य दुल्हन की कीमत एक समूह द्वारा चुकाई जाती थी और वह कीमत दुल्हन को दे दी जाती थी। आज के युग में भी यह प्रथा नवीन रूप में जीवित है। दूसरे किस्म की शादियाँ यहाँ पर भगा कर ले जाने से होती हैं। स्केन्डेनेविया में यह ढंग बहुत बाद के समय तक जीवित रहा। यह एक आम रिवाज था कि प्रेमी दुल्हन को चर्च के दरवाजे से जब कि उसकी शादी दूसरे व्यक्ति के साथ की जाने को होती थी, भगा कर ले जाता था। गोथलैंड में चर्च के अन्दर अनेकों

ही भाले रखे जाते थे, जिनका प्रयोग दीपक ले जाने वाले करते थे। शादियाँ अक्सर कर रात्रि के समय होती थीं। ये भाले, अगर कोई आक्रमण करे, तो काम में लाये जाते थे। दूसरे जिलों में आज भी अनेकों बातें देखने को मिलती हैं। इनमें दुल्हन को दो व्यक्ति, जिनमें एक स्त्री और एक पुरुष होता है, चर्च तक ले जाते हैं। ये लोग दुल्हन के हाथों को पकड़े रहते हैं। दुल्हन इस प्रकार से जाने में कभी-कभी अपनी अनिच्छा प्रगट करती है और कभी-कभी बहाना भी करती है। नावें में शादियों में दुल्हन वाला दल दूल्हे के जुलूस के साथ चर्च जाता है। इन प्रथाओं में दूसरी बात यह होती है कि किसी प्रकार से अपना प्रचार किया जाये। प्रचार पर प्रसिद्धि निर्भर करती है। सगाई की प्रथा में अधिक से अधिक लोगों को एकत्रित किया जाता है। ये आदमी साक्षी के रूप में एकत्रित किये जाते हैं। शादी के अवसर पर दोनों पक्षों अर्थात् वर-पक्ष और वधू-पक्ष के अधिक से अधिक व्यक्ति उपस्थित रहते हैं। ये भी साक्षी के रूप में उपस्थित होते हैं। शादी की वास्तविक प्रथा यह होती है कि अतिथि लोग दूल्हे और दुल्हन के जोड़े को एक कम्बल के भीतर देखें। वर और वधू दोनों कम्बल के नीचे बैठते हैं और शादी की रस्मों को पूरा करते हैं। यह समाज में बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। आज के युग में स्त्री-पुरुष की शादी रजिस्ट्रेशन के द्वारा तय की जाती है, जिसमें पुरुष, स्त्री और उसके बच्चों को पालने का जिम्मा अपने ऊपर लेता है। उत्तरी यूरोप में आज भी इस प्रथा में परम्परात्मक बातों को स्वीकार किया गया है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक शादियाँ अतिथियों की उपस्थिति में की जाती थी। बोहुसलन में शादियों में जब दूल्हा दुल्हन अपने विस्तरे पर जाते हैं तो अतिथियों को उस कमरे में जाने की आज्ञा नहीं होती। वहाँ कोई भी व्यक्ति प्रवेश नहीं कर सकता।

उत्तरी यूरोप की शादियों के रिवाजों में विशेष रूप से नावें और रूस में बड़ा परिवर्तन आता जा रहा है। इन देशों में धीरे-धीरे पुरानी प्रथायें समाप्त और इनके स्थान पर नवीन प्रथायें स्थान ग्रहण करती चली जा रही हैं।

स्वीडन में अगर कोई व्यक्ति किसी औरत के साथ एक तश्तरी में खाना खाता है तो यह माना जाता है कि वे दोनों निश्चित रूप से एक दूसरे के प्रेम-बन्धन में अवश्य फँस जावेंगे। इन दोनों में अवश्य प्यार होगा। आपस के खाने की प्रथा हमें रोमन लोगों में भी मिलती है। रोमन लोगों में यह खाने की प्रथा

सामाजिक संस्थाएँ और रीतिरिवाज

कई रूपों में पाई जाती है। जब कोई व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार किसी स्त्री के साथ शादी करने की बात तय कर लेता है तो शादी के बाद उसके मित्र के द्वारा यह बात लड़की वालों के सम्मुख प्रगट की जाती है अर्थात् उस व्यक्ति का मित्र लड़की वाले को यह बताता है कि अमुक व्यक्ति ने अपनी शादी के लिये आपकी लड़की को चुन लिया है। अगर ऐसा प्रस्ताव लड़की के घर वालों द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो वह अगले रविवार को लड़की के कुटुम्ब वालों के पास पेश किया जाता है। इस अवस्था में जवान आदमी को आने के लिये आज्ञा नहीं दी जाती। उन दोनों तक कोई आदमी नहीं पहुँच सकता। अगर भेंट स्वीकार करली जाती है तो 'हाँ' की एक दावत की जाती है और पसन्द करने वाला लड़का लड़की को एक चाँदी का पात्र, जिसमें कागज के अन्दर कुछ सिक्के लिपटे रहते हैं, पेश करता है। इसके बाद पादरी के सामने वे अपनी भेटे बदलते हैं और सगाई निश्चित हो जाती है। इस सगाई में जाति के अनेकों ही व्यक्ति साक्षी-हेतु आमंत्रित किये जाते हैं।

पश्चिमी गोथलैंड में स्त्रियाँ एक कमीज अपने हाथ से बनाती हैं और उसे पुरुष को देती हैं। यह कमीज उस व्यक्ति को शादी के दिन अवश्यमेव पहिननी पड़ती है। लेकिन इसके बाद वह इस कमीज को मृत्यु तक नहीं पहिन सकता। आदमी अपनी प्रेमिका के प्रति अपना प्रेम प्रगट करता है। वह अपना चाकू और कैंची नहीं दे सकता, क्योंकि ये मित्रता को नष्ट कर देने वाले माने जाते हैं। प्रेमी जूते भी भेंट में नहीं दे सकता, क्योंकि वह इन्हें पहिन कर भाग जायेगी। न वह रुमाल ही दे सकता है क्योंकि इससे वह अपने प्रेम को ढँक लेगी। शादी होने से पहले एक निश्चित समय अवश्य तय कर लिया जाता है। जैसे-जैसे यह समय निकट आता जाता है, इसकी विशेष तैयारियाँ शुरू कर दी जाती हैं। इस उत्सव में काफी स्वतन्त्रता काम में लायी जाती है। एक समय नावें में शादी के लिये थोड़ा भी समय अच्छा नहीं समझा जाता था। स्केन्डिनेविया में यह एक आम रिवाज है कि अतिथि लोग दोनों तरफ के खच्चों में काफी मदद करते हैं। दक्षिणी स्वीडन में जब दोनों दल एक दूसरे से अलग होते हैं तो अलग होने से पहले एक सम्मिलित पार्टी की जाती है, जिसमें वे लोग गेहूँ की रोटी और शराब लेते हैं। ऐसा करने से वे लोग पारस्परिक मित्रता में हिस्सा बँटा लेते हैं।

दुल्हन की पोशाक भी महत्त्वपूर्ण होती है। उसकी पोशाक बनावटी फूलों द्वारा काली बनायी जाती है। वह एक कौंधनी भी पहिनती है और अपने

सिर के ऊपर भी कुछ पहिन्ती है। सिर के ऊपर दुल्हन, परम्परा से चला आता हुआ, एक चाँदी का ताज धारण करती है। उत्तरी यूरोप में कुछ खास गहने भी पहिने जाते हैं। नावों में चाँदी का ताज धारण करना इतना आम हो गया है कि चर्चों में बने बनाये ताज रखे रहते हैं। गरीब व्यक्तियों को ये ताज दिये जाते हैं। जो बाद में उन्हीं के पास रह जाते हैं। इस प्रकार का शिरो-भूषण वास्तव में एक चिन्ह के समान है, जिसे नॉर्डिक लोग अपने पास रखते हैं। रूस के लोगों के शादी के उत्सवों में पादरी के ताज दूल्हा और दुल्हन के लिये काम में लाये जाते हैं। ताज के बारे में यह सोचा जाता है कि यह दुष्टात्माओं से रक्षा करता है। इस ताज के धारण करने वाले व्यक्ति या स्त्री के ऊपर दुष्टात्मा अपना प्रभाव नहीं जमा सकती।

दुल्हन के जूतों के प्रति भी विशेष ध्यान दिया जाता है। यह जूते न तो फीतों से बाँधे जाते हैं और न बक्सुओं से, न बटनो से कसे जाते हैं। अगर वह स्त्री जल्दी बच्चा पैदा होने की उम्मीद करती है तो ऊपर की चीजों में से कोई भी चीज काम में नहीं लाती। दूल्हे के दल के दो सदस्य दुल्हन के पैरों पर जूते रख कर आते हैं। जब वे जूते उस स्त्री के पैरों में होते हैं तो उसका बाप उसके दाँये पैर पर एक चाँदी का सिक्का रखता है और उसकी माता उसके बाँये पैर पर एक सोने का सिक्का रखती है। यह उसके भविष्य के सुख साधनों की निश्चितता के लिए किया जाता है। प्रत्येक स्त्री यह आशा करती है कि उसका ताज वर्षा से अवश्य ही भीगेगा। इस सम्बन्ध में उसका विश्वास होता है कि इस प्रकार वह एक धनवान स्त्री बन जायगी। निस्सन्देह यह उसके लिये और उसके घर वालों के लिये बहुत बड़ा आकर्षण होता है। जब वह स्त्री अपने जूतों को पैरों में धारण कर लेती है, तो वह उस स्थान पर जाती है, जहाँ उसने पहली बार एक गाय का दूध काढ़ा था, क्योंकि ऐसा करने से भविष्य में होने वाले उसके घर में कभी भी दूध की कमी न रहेगी, ऐसा विश्वास किया जाता है।

शादी के उत्सव के बीच में वधू की दासियाँ उसके ऊपर एक शाल उठाये रहती हैं। यह शाल बुराईयों को उससे दूर रखता है। फिनलैंड की स्वीडिश जाति में जब शादी के बाद वर और वधू एक साथ भोजन करते हैं तो दरवाजे के बाहर एक शाल टाँग दिया जाता है और एक शाल उस स्थान पर भी टाँग दिया जाता है, जहाँ वे दोनों बैठते हैं। यह शाल उनकी हर प्रकार से रक्षा करता है।

जब वधू अपने पति के घर जाती है तो उसकी माता अपने हाथ में जलती हुई लालटैन लेकर उससे मिलती है। उसे अपने हाथ से उसकी ली छूनी पड़ती है। ऐसा करने से यह माना जाता है कि उस पर से सारी बुराइयाँ दूर हो जावेंगी और उस पर किसी भी प्रकार के प्रेत का प्रभाव शेष नहीं रहेगा। इससे जो भी प्रभाव उसके ऊपर अब तक था वह भी दूर हो जावेगा।

नार्वे में एक प्रथा है कि शादी में एकत्रित हुए लोग नाव में बैठ कर चर्च जाते हैं। इसके लिए उनकी भौगोलिक परिस्थिति जिम्मेदार है। दुल्हन की दासियाँ हरी पोशाक धारण करती हैं। यह पोशाक अन्य देशों में दुर्भाग्यप्रद मानी जाती है। उत्सवों में शराब पीना और नाचना मुख्य माना जाता है। यहाँ एक नाच होता है जिसका जिक्र होना परमावश्यक प्रतीत होता है। इस नृत्य में दुल्हन आँखें बन्द करके घेरे के बीच में खड़ी हो जाती है और अपने मुकुट को उतार लेती है। बाकी लड़कियाँ इसके चारों ओर नाचती हैं। दुल्हन अपने मुकुट को उसके सिर पर रखती है, जिसे वह पकड़ लेती है। यह लड़की अब उसका स्थान ग्रहण कर बीच में खड़ी हो जाती है और जब तक यह ताज को किसी ओर के सिर पर नहीं रख देती तब तक नृत्य चलता रहता है। इस बीच में एक उत्सव और भी होता रहता है, जिसमें दूल्हा अपने मित्रों के साथ नाचता रहता है। इस उत्सव के अन्त में वह जोड़ा कभी-कभी पिता और माता को सम्बोधित करता है। इसके बाद वर-वधू अपने कपड़े बदलते हैं और आनन्द मनाते हैं।

टोरना जिले में दूल्हे-दुल्हन के कमरे में कई दंपति एकत्रित होते हैं तथा दूल्हा प्रत्येक पुरुष के हाथ में शराब का गिलास देता है और दुल्हन स्त्रियों के हाथों में। फिनलैंड के कुछ हिस्सों में शादी के एक दिन बाद दुल्हन छिप जाती है और उसकी खोज की जाती है। जब वह मिलती है तो घर लाई जाती है और शराब पीने का उत्सव मनाया जाता है। इसके बाद प्रत्येक अतिथि शादी की रोटी पर एक-एक सिक्का रखता है। स्वीडन के बहुत से हिस्सों में यह प्रथा पाई जाती है कि वर और वधू एक स्थान पर अपनी जगह ले लेते हैं। तब शादी की भेंटें एक रेशम से ढँकी बेंच पर रखी जाती हैं। फिनलैंड में इस तरीके से काफी चन्दा इकट्ठा किया जाता है। दूल्हा और दुल्हन चमकदार कपड़े पहनते हैं। दुल्हन के घुटनों के ऊपर एक शाल भी पड़ा रहता है।

डेन्मार्क में दूल्हा अपने पूरे दल को निमन्त्रण दे देता है। दावत समाप्त होने के बाद दो घण्टे तक नृत्य चलता रहता है। इस बीच में दूल्हा दुल्हन के सिर से ताज को उतार कर ले आता है तथा एक जुलूस चर्च की ओर दो औरतों के बीच में होकर चलता है। इन औरतों में से एक औरत उसकी सहायिका होती है।

सगाई होने के बाद कितने ही वर्षों तक शादी नहीं होती। इसका मुख्य कारण अदालत की फीस की अधिकता होती है। इसी बीच पुरुष भावी पत्नी के पास जाता है तथा उसके रिस्तेदारों को भेंट प्रदान करता है। शादी होने के बाद वह अपनी दुल्हन को अपने घर नहीं ले जा सकता। कम से कम एक वर्ष तक उसे सुसराल में रहना आवश्यक होता है। पुरुष से आमतौर पर स्त्री छोटी होती है। आइसलैंड की शादियों में भी ऐसी ही प्रथा पाई जाती है।

रूस में प्रथम महायुद्ध के पहले ही शादी के परम्परात्मक रिवाज मिट गये। अब शादी के उत्सव बड़े ही नये रूप से किए जाते हैं। रूस की परम्परात्मक प्रथाएँ एक बहुत ही प्राचीन किस्म का सामाजिक संगठन प्रगट करती हैं। शादी में सरक्षक के रूप में लड़की का भाई एक मुख्य भाग अदा करता था। जब दूल्हा दुल्हन के घर पहुँचता था तो वह भाई को नंगी तलवार लिए हुए बहिन की बगल में बैठे हुए पाता था। दूल्हा उससे दुल्हन को प्राप्त करने के लिये अनेक प्रकार से अनुनय-विनय करता था, लेकिन जब तक भाई कुछ धन प्राप्त नहीं कर लेता था, तब तक अपना स्थान नहीं छोड़ता था। पुराने समय में पति के लिए स्त्री एक स्मरणीय वस्तु बनाती थी और शादी के दिन उसे भेंट करती थी। इस पर दूल्हा उसके कंधे पर हल्की सी शाबाशी की थपकी सी देता था। स्त्री के लिए यह आवश्यक था कि वह अपना सिर दूल्हे के पैरों पर झुका दे। यह स्वामि-भक्ति का चिन्ह माना जाता था।

पूर्वी केरलिया के फिनो में भी शादी की रस्में काफी प्राचीन दिखाई देती हैं। शादी के उत्सव में वहाँ स्त्रियाँ अपनी सखियों के साथ स्नान करती हैं तथा अपने बालों को खोलती हैं। बालों में लगे हुए पिनों को निकालती हैं। इस कार्य के लिए वहाँ यही दिन निश्चित होता है। रूस और फिनलैंड दोनों में लड़की जब अपने घर को छोड़ती है तो काफी दुख प्रगट करती है। उसकी सखियाँ उसे सन्तोष देती हैं तथा इसी समय उसे भविष्य में काम आने वाली शिक्षाएँ भी दी जाती हैं। इसके बाद स्त्री और पुरुष चर्च की ओर जाते हैं और

जब वे लौटते हैं तो दुल्हन अपना घूँघट खींचे हुए होती है। जाते समय उसके घर वाले और पड़ोसी रोते हैं तथा स्वयं वह भी रone लगती है। इस प्रकार का रone दुल्हन को भगा कर ले जाने वाली शादियों की याद दिलाता है।

वर्ष के प्रथम दिवस के रीति-रिवाज

मानव ने वर्ष के प्रत्येक दिवस की महत्ता को अपनी सुविधानुकूल किसी योजना के अन्तर्गत निर्धारित कर लिया है। उसने प्रत्येक दिवस को विचार करके निश्चित किया है तथा साथ ही उसका महत्त्व भी तय कर दिया है। कुछ लोग सोचते हैं कि वर्ष के ३६५ दिन प्रकृति द्वारा निश्चित कर दिये गये हैं। जैसे सूर्य, चन्द्रमा और तारे अपने स्थान पर अपना कार्य करने के लिये निश्चित हैं, उसी प्रकार वर्ष का प्रत्येक दिन भी निश्चित है। ऐसे लोग यह सोचते हैं कि वर्ष का प्रथम दिन वास्तव में एक नवीन समय प्रारम्भ करता है तथा बीते हुए वर्ष का अन्तिम दिन एक निश्चित समय की अवधि का अन्त करता है।

वास्तव में यदि हम अपने वर्ष, मास और सप्ताह में प्रारम्भ और अन्त न रखें तो जीवन भारमय हो जाये। लेकिन वस्तुतः ये सब दिवस अपनी इच्छा के अनुकूल ही तय किये गये हैं। दिन और रात्रि का आरम्भ और अन्त प्रकृति का एक क्रम है। इसका मुख्य कारण अपनी पृथ्वी का सूर्य के गिर्द चक्कर लगाना है। बसन्त, पतझड़, शरद आदि सभी इस क्रम द्वारा होते रहते हैं। अन्य मौसम और उत्सव भी मानवों ने इसी क्रम से परिगणित किये हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता; क्योंकि सभी जातियाँ अपना नवीन वर्ष एक ही दिन से प्रारम्भ नहीं करतीं। प्रत्येक जाति अपने विश्वासों तथा परम्पराओं द्वारा नवीन वर्ष का प्रारम्भ भिन्न-भिन्न दिनों से करती है।

अक्टोबर के प्रथम दिवस पर यहूदी लोग नववर्ष मनाते हैं और अपने पवित्र मन्दिर में जाते हैं। कुछ लोगों का इस सम्बन्ध में मत-भेद भी मिलता है। वे लोग कहते हैं कि समय प्रकृति द्वारा बाँट दिया गया है। यहूदी लोगों का प्रत्येक वर्ष उक्त तिथि से ही प्रारम्भ नहीं होता, बल्कि भिन्न-भिन्न वर्ष

विभिन्न तिथियों से प्रारम्भ होते हैं। सन् १९३१ ई० में नव वर्ष १२ सितम्बर से प्रारम्भ हुआ था। इसी प्रकार शरद ऋतु भिन्न-भिन्न समयों पर प्रारम्भ होती है। यही ऋतु खेतिहर वर्ष का प्रथम मौसम होता है, अतः संभवतः नववर्ष का इसी से संबंध जोड़ा जाता है।

प्राचीन रीति-रिवाजों के मुताबिक यहूदी लोग नवीन वर्ष के प्रथम दिन पर फल खाकर उत्सव मनाते हैं। इन फलों में अंगूर और शहद का होना परमावश्यक है। वे लोग अपनी रोटी को शहद में डुबोते हैं तथा भगवान से प्रार्थना करते हैं। ऐसा करने से वे लोग सोचते हैं कि उनका तथा उनके पुरखों का ईश्वर प्रसन्न होगा और उनको यह नव-वर्ष आनन्ददायक सिद्ध होगा। इस दिन प्रार्थना करने से भगवान उनको आनन्द तथा प्रसन्नता देगा, ताकि वे लोग पूरे साल तक आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकें। रूढ़िवादी लोग सफेद पोशाक पहनते हैं और एक दूसरे से प्रसन्नतावश सहृदयता से मिलते हैं। उस समय आपस में एक दूसरे से कहते हैं कि ईश्वर करे तुम वर्ष भर प्रसन्न बने रहो तथा अनेक प्रकार से वे एक दूसरे को बधाई देते हैं। यह दो दिन का उत्सव माना जाता है; किन्तु आज के जीवन की व्यस्तता ने इसको बजाय दो दिवस के एक दिन का ही कर दिया है। नवीन वर्ष के प्रथम दिन के अवसर पर कोई भी व्यक्ति शराब नहीं पीता। परन्तु बहुत से ईसाई लोग इस दिन शराब पीते हैं। नवीन वर्ष की सन्ध्या बेला में लोग भिन्न-भिन्न तरीकों द्वारा उत्सव मनाते हैं। इस समय आधुनिक भोजनालय भरे हुए मिलते हैं। कुछ लोग लन्दन में सेंट पॉल के सामने अपनी जेबों में बोतल लिए हुए दिखाई देते हैं। कुछ लोग अपने घरों पर ही रहते हैं और शराब पीते हैं। इस सबका मुख्य कारण यही है कि प्रत्येक व्यक्ति इस दिन प्रसन्नताओं से भरा रहता है। इस प्रकार के स्फूर्तिदायक पदार्थों का सेवन इस दिन की खुशी को और अधिक बढ़ा देता है।

सेंट पॉल से बाहर इस दिवस की अर्ध रात्रि को गीतों द्वारा एक दूसरे को बधाई दी जाती है। इन गायकों में मुख्यतः स्कॉट लोग होते हैं। वास्तव में यह स्कॉट लोगों का ही मुख्य त्यौहार है। ऐडिनबरा के चर्चों में इस रीति का अनुकरण किया जाता है। इंगलिश लोग भी इस उत्सव के गायन में सम्मिलित होते हैं। स्कॉटलैंड में नवीन वर्ष बजाय ईसामसीह के दिवस के, बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। नवीन वर्ष का प्रथम दिवस बैंकों की छुट्टी का दिवस है। बच्चे भी गाते हुए घूमते रहते हैं। स्कॉटलैंड में गेहूँ की सफेद तथा जौ की भूरी रोटी मजदूरों द्वारा खाई जाती है।

‘फ्रस्ट फुटिंग’ अर्थात् प्रथम प्रवेश स्कॉटलैंड की एक विशेष रस्म मानी जाती है। लेकिन यह रिवाज इंगलैंड के बहुत से जिलों में भी मिलता है। यूरोप के अन्य हिस्सों में भी यह प्रथा पायी जाती है। नवीन वर्ष को जो प्रथम व्यक्ति घर में प्रवेश करता है, उसके बारे में यह माना जाता है कि वह घर के निवासियों के जीवन पर अपना प्रभाव डालेगा। कुछ हिस्सों में ऐसा समझा जाता है कि गोरा व्यक्ति अच्छे भाग्य की पहिचान होता है और काले आदमी को दुर्भाग्य की निशानी माना जाता है। कुछ हिस्सों में काले व्यक्ति को ही भाग्य की पहिचान माना जाता है। कुछ लोग इस दिन अपने घरों के दरवाजों को अर्धरात्रि के पूर्व ही खोल देते हैं और यह समझते हैं कि नवीन वर्ष को घर के अन्दर आने दो—जैसे दिवाली पर हिन्दुओं में लक्ष्मी के प्रवेश के लिए रात को द्वार खोले जाते हैं।

इंगलैण्ड में नवीन वर्ष के रीति-रिवाज इतने आधुनिक नहीं हैं जितने कि ईसामसीह के उत्सव। यहाँ एक परम्परा के मुताबिक टर्किश रात्रि को सेंट जार्ज की याद में पुतलों का खेल करते हैं। यह रिवाज यहाँ लगभग १५० वर्ष से मनाया जाता है। यहाँ के पुतलों के रिवाज का इतिहास काफी प्राचीन है। यह यहाँ १७६४ में प्रारम्भ हुआ था। बहुत से हिस्सों में घोड़े के पुतले को सजाया जाता है और पुरुषों तथा बालकों द्वारा ले जाया जाता है। जहाँ पर ये ले जाया जाता है, वहाँ अनेकों ही रीति-रिवाज मनाये जाते हैं जो कि बहुत प्राचीन हैं। लन्दन के सेंट पॉल के बाहर रैस्टोरेण्टों तथा भोजनालयों में रुढ़िवादिता की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। ये बातें रतजगा करके की जाती हैं। इस सम्बन्ध में कुछ लोगों का कथन है कि ये जॉन बैसले के ‘दिन’ का अनुकरण है। हालैंड में जो व्यक्ति कभी चर्च नहीं जाता, नवीन वर्ष के प्रथम साँयकाल को वह इस सम्बन्ध में विशेष ध्यान रखता है और रविवार के दिन अपने को वह विशेष नियमित बना लेता है। रविवार की साँझ को वह अपने मित्रों तथा रिश्तेदारों सहित बैठ जाता है और शराब का सेवन करता है। नवीन दिवस के अवसर पर कैथोलिक चर्च कोई भी कार्य नहीं करता। इसका मुख्य कारण यह है कि यह एक पवित्र धार्मिक मौका होता है। रोम में इस दिवस पर व्रत किया जाता है।

फ्रान्स में यह एक महान् दिवस समझा जाता है। इस दिन लोग अपने यहाँ चाय आदि का आमंत्रण देते हैं। इस दिन सारे सरकारी दफ्तर बन्द कर दिए जाते हैं और यह सोचा जाता है कि मातहतों को अपने अधिकारी के प्रति

सम्मान प्रगट करना चाहिए। इसलिये वे लोग अपनी सुन्दर पोशाक पहनते हैं और इधर उधर घूमने जाते हैं। अविवाहित व्यक्ति अपने विवाहित मित्रों से वर्ष के अन्तिम दिन फूल और मिठाइयों की भेंटें प्राप्त करते हैं। उपहार बजाय ईसामसीह-दिवस के, नवीन दिन को ही दिये जाते हैं। इंग्लैंड में भी नवीन दिवस आनन्द देने वाला होता है। कुटुम्ब में आपसी दावतों के लिए ये दोनों दिन ही आमतौर पर श्रेष्ठ माने जाते हैं। पैरिस में लोग मिठाई और खिलौने बेचते हुए एक लाइन में दिखाई देते हैं। ये लोग भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुएँ बेचा करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति छुट्टी का उपयोग करता हुआ आनन्द मनाता है। ब्रिटेनी में इस दिन की बधाइयाँ धार्मिक मानी आती हैं। इन बधाइयों में लोग कहते हैं कि “मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह तुम्हें अच्छा वर्ष प्रदान करे। परियाँ तुम्हारा स्वागत करें।” ब्रिटेन के निवासियों में अनेक धार्मिक विश्वास माने जाते हैं। इस दिन के बारे में वे लोग विश्वास करते हैं कि जनवरी के प्रथम दिन जैसी वायु चलेगी, वह पूरे महीने तक चलती रहेगी, दूसरे दिन जैसी हवा चलेगी, वह फरवरी के मास में चलती रहेगी। यह क्रम इसी प्रकार चलता रहेगा। यहूदी लोग यह विश्वास करते हैं कि अगर नवीन दिवस गर्म होगा तो पूरा वर्ष गर्म रहेगा। अगर यह दिन ठंडा होगा तो साल के १२ महीने ठंडे रहेंगे।

नवीन दिवस पर जर्मन लोग भी काफी मनौतियाँ मनाते हैं। इस दिन ये लोग बजाय ईसामसीह-दिवस के अधिक बधाई-पत्र भेजते हैं। इस दिवस की साँझ में सभी लोगों के लिए उत्सव होता है। जो लोग दावत देते हैं, वे लोग दावतों को बड़े आनन्द के साथ मनाते हैं। जैसे ही घण्टा बजता है सब लोग अपने गिलासों को भर लेते हैं और रोटियों को उनमें डुबोते हैं। स्कॉटलैंड के हाईलैंड में भी ऐसी अनेक प्रथाएँ आसानी से देखी जा सकती हैं। ये लोग इस दिन बुराइयों से बचने के लिए पवित्र जल का एक पात्र प्रयोग में लाते हैं। यह पात्र उन लोगों को बुराइयों से अलग रखता है। उनकी रक्षा करता रहता है। ये लोग अपने कंधों पर अलग-अलग वृक्षों की पत्तियाँ भी इस दिन लगाते हैं।

लूथर के अनुयायी भविष्य की बातें बतलाते हैं। आटे की अनेक प्रकार की शकलें तैयार की जाती हैं और उन्हें किसी ढके हुए स्थान पर लगा देते हैं। इनके ढक्कन एक समय में तीन लगाये जाते हैं। अगर कोई एक ढक्कन को भी हटायेगा, तो इसमें से कुछ न कुछ अवश्य गिरेगा। इसमें से जिस प्रकार की भी शकलें गिरती हैं वह वर्ष के बीच में होने वाली कठिनाइयों तथा घटनाओं की द्योतक मानी जाती हैं। अगर इसमें से कोई कफन-बक्स गिरता है तो उसका

मतलब मृत्यु प्राप्त करना लगाया जाता है। अगर कोई भुजा या टांग गिरती है, तो उसका अर्थ वर्ष भर में किसी दुर्घटना के बारे में लगाया जाता है। अगर कोई गाय या सूअर की शक्लनुमा वस्तु गिरती है तो उसका अर्थ अच्छे भाग्य की निशानी माना जाता है। इसी प्रकार अन्य चीजों के सम्बन्ध में ये लोग अपनी परम्परा के मुताबिक अर्थ लगाते हैं। ग्रीस के भविष्य-वक्ता दूसरे ढंग को प्रयुक्त करते हैं। जैतून के वृक्ष की पत्तियाँ अग्नि में डाल दी जाती हैं। अगर इन पत्तियों का रूप जलने से कुछ झुकावदार या एक दूसरे की ओर खिंचती-सी शक्ल में आ जाता है, तो यह समझा जाता है कि शकुन बहुत अच्छे हुए हैं। ये पत्तियाँ दो-दो मिलाकर डाली जाती हैं। ये दोनों पत्तियाँ दंपति की सूचक होती हैं। अगर ये पत्तियाँ अग्नि में एक दूसरे से अलग-अलग हो जाती हैं, तो यह माना जाता है कि दंपति एक दूसरे को नहीं देख सकते। अगर ये पत्तियाँ चमकती हैं और जल जाता हैं तो यह माना जाता है कि दंपति आनंद का अनुभव नहीं करेगा। उसे पूरे वर्ष तक दुर्भाग्य घेरे रहेगा।

नवीन दिवस के बहुत से रिवाज पानी से भी सम्बन्धित माने जाते हैं। इटली में इस दिन कुओं को अच्छी प्रकार सजाया जाता है। इस काम को बच्चे करते हैं। अगर कोई लड़की वहाँ जाती है तो उसको चुम्बन के बदले में ही पानी लेने दिया जाता है। कुछ स्थानों में पानी को बड़े उत्सवीय ढंग से लाते हैं तथा सुन्दर-सुन्दर गीत गाते हैं। जो व्यक्ति पानी ले जाता है वह निम्नलिखित गीत गाता है :—

शुद्ध जल की पवित्रता,
हममें शुचिता लाती है।
पवित्रता के हेतु हम,
इस दिन ईश्वर के गीत गाते हैं ॥

ऐथेन्स में कागज के जहाज पानी में चलाये जाते हैं। इसके लिए कठिनाई से रुपया एकत्रित किया जाता है। मैसैडोनिया के ग्रीक, बलगेरिया तथा सर्बिया के लोग भी नवीन वर्ष का अभिनन्दन करते हैं। इस दिन ये लोग प्रातःकाल इधर-उधर अपने हाथों में घंटियाँ लेकर उनको बड़ी तेजी के साथ लकड़ी से बजाते हुए जाते हैं। अगर कोई आदमी घर के अन्दर सो रहा होता है तो उसके दरवाजे को इस लकड़ी की सहायता से खटखटाते रहते हैं, ताकि वह व्यक्ति समझ सके कि यह दिन कौनसा है तथा इस दिन भी वह इतनी देरी से क्यों सो रहा है। रूमानिया के लोग भी अपने गाँवों में इसी प्रकार कार्य करते

हैं। वे लोग इस घन्टी के साथ-साथ एक तेज आवाज भी करते हैं, जो मशीन-गन के घूमने की सी आवाज होती है। इन दोनों देशों में ही यह रिवाज अच्छे भाग्य का आगमन समझा जाता है। मैसेडोनिया के लोग अपने साथ जैतून की पत्तियाँ ले जाते हैं। इन पत्तियों को लोग भाग्यशाली मानकर छूते हैं। रोमानिया में इस दिन लोग अपने हाथों को ज्वार के भुट्टों से भर लेते हैं और उसको भाग्यप्रद समझने के कारण फैंकते हैं। कुछ लोग ऐसा इनाम प्राप्त करने के विचार से भी करते हैं। ज्वार का फैंकना भाग्य का आगमन समझा जाता है।

रूस में मुख्यतः दक्षिण में इस अवसर के अनेक रिवाज पाये जाते हैं। अन्य मौसमों के भी भिन्न-भिन्न रिवाज इस देश में पाये जाते हैं। इन रिवाजों में प्राचीन ग्रामीण नृत्यों को विशेष रूप से माना जाता है। नवीन अवसरों पर लोग नृत्य करते हैं। नवीन वर्ष के दिन किसान मेज पर अनेकों ही गेहूँ की बालियाँ एक घेरे में एकत्रित कर लेता है। इनके मध्य में वह एक स्वादिष्ट पदार्थ और रख देता है। इसके बाद एक आदमी इस घेरे के पीछे जाता है और कुटुम्ब वालों से पूछता है कि क्या वे उसे देख सकते हैं। चाहे वे देख सकते हैं या नहीं, वे लोग यही कहते हैं कि हम तुमको नहीं देख सकते। वह स्वादिष्ट पदार्थ जो कि मेज पर रखा रहता है, एक समोसे के समान होता है। तब वे लोग उस समोसे को खाते हैं। इस प्रकार की क्रिया से यह समझा जाता है कि उस किसान के गेहूँ के पौधे जब वह खेत जायेगा, उसकी ऊँचाई से ज्यादा ऊँचे होंगे, जिनमें होकर वह दिखाई नहीं दे सकेगा। फसल बहुत ही अच्छी होगी। इस प्रकार वे लोग ऐसा करने में अच्छी पैदावार का शकुन मानते हैं।

चीन के कम्युनिस्ट होने के पहले वहाँ के नवीन वर्ष का उल्लेख एक यात्री ने इस प्रकार किया है :—

चीन में नवीन वर्ष यहूदियों की भाँति मनाते हैं अर्थात् साल में यह दिवस चाहे जब निश्चित कर लिया जाता है। अक्सर करके यह फरबरी के महीने में आता है। इस देश के निवासी इस दिन प्रसन्नता में बड़ा शोर-गुल करते हैं, बड़ी-बड़ी दावतें देते हैं तथा ऐसी बातें करते हैं जो अन्य मौकों पर नहीं की जातीं। वर्ष की अन्तिम रात्रि को कोई भी चीनी सोने की नहीं सोचता। इस रात्रि को वे लोग रात भर जागते रहते हैं। यहाँ अग्नि को लगातार जलाते हैं और कभी-कभी एक घड़ियाल को भी बड़ी तेजी के साथ बजाते हैं। इस

देश की सभी गलियाँ लोगों से भरी हुई दिखाई देती हैं। ये लोग अपने हाथों में लालटेन लिए हुए रहते हैं। इन लोगों को गौर से उस दिन देखा जाये तो ये हड़ से दिखाई देते हैं। यह रूप इस बात को प्रदर्शित करता है कि वे अपना सम्पूर्ण ऋण चुका सकते हैं। चीन में कर्जदार और कर्ज देने वाले के बीच में तीन दिन वार्षिक रूप से तय किए हुए रहते हैं। इन अवसरों में से एक वर्ष के प्रारम्भ में होता है जो कि मुख्य माना जाता है। सारा धन इस दिन चुका देना पड़ता है और कर्ज पुनः ले लिया जाता है। इस अवसर पर बहुत से लोग दिवालिया हो जाते हैं; लेकिन बहुत से लोग व्यापार या अपने कार्य बड़े ही अच्छे ढंग से कर लेते हैं, क्योंकि इस अवसर पर पता चल जाता है कि व्यापार में मुनाफा हो रहा है या हानि। इसलिए लोग अपने व्यापार को उन्नतिशील बनाने का अच्छा मौका प्राप्त करते हैं। बड़े पैमाने पर काम करने वाला सौदागर नवीन वर्ष की जाँच की बात से कम प्रभावित होता है। उसके पास इतना सौदा या मदे होती हैं, जिनके हिसाब-किताब को बैठ लेना एक दिन में बहुत कठिन होता है। वह अपने कार्य में लगा रहता है। छोटे सौदागरो को यह आवश्यक होता है कि वह सम्पूर्ण धनराशि अपने देनदार को वर्ष प्रारम्भ होने से पहले अवश्य दे दे। उसको इसी में अधिक लाभ दृष्टिगोचर होता है। जिनको यह विश्वास होता है कि उनका रुपया सुरक्षित वापिस आ जायेगा वे लोग बड़े प्रसन्न और जिनको पैसा आने में कठिनाई दिखाई देती है, वे बड़े दुखी से दिखाई देते हैं।

अर्द्ध रात्रि तक सभी लोग अपना-अपना कार्य करके अपने घरों को वापिस आजाते हैं और यह निश्चित कर लेते हैं कि उनका व्यापार ठीक है। अब वे लोग अपने दरवाजो को बन्द करके, आवश्यक चित्र जो वहाँ बनाये जाते हैं, उनको देखते हैं। रात्रि में आराम से वे लोग खाना खाते हैं और शराब पीते तथा बातचीत करते हैं, धूम्रपान करते हैं एवं शतरंज का खेल खेलते हैं। वे लोग अपनी रुचि और साधनों के अनुकूल अपनी रात्रि को व्यतीत करते हैं। इस रात्रि को अधिक आनन्ददायक कार्य तथा खेल किए जाते हैं।

इन चित्रों में वे लोग अपने भगवान का चित्र विशेष रूप से बनाते हैं। वह उनके दरवाजे की रक्षा करने वाला भगवान होता है। यह एक धार्मिक चित्र होता है। इसमें लोग परम्परानुसार अपनी धारणा प्रगट करते हैं। एक समय ये चित्र घर की रखवाली करने के रूप में प्रयुक्त किये जाते थे। इनके बारे में यह सोचा जाता था कि ये उनके घरों को बुरी आत्माओं के प्रभाव से

बचाते रहेंगे और उनके घर सदैव पवित्र बने रहेंगे। वे लोग सोचते हैं कि उनके घरों के बाहर प्रेतात्मायें घूमती रहती हैं, जो निवासियों को हानि पहुँचा सकती हैं। इसलिए ये देवता जो चित्र-रूप में बना कर टाँग दिया जाता है, उनकी रक्षा करता रहेगा। कुछ व्यक्ति अपने को ऐसे चित्रों से ढँक-सा लेते हैं। बुरी आत्माओं के लिए नोटिस लगा देते हैं कि उनका भगवान वहीं पर है।

नवीन वर्ष के अभिनन्दन पत्रों में अच्छी भावनाओं से भरे हुए शब्द तथा बधाईयाँ लिखी रहती हैं। ये शब्द ऐसे सुनहले रंग और नम्र-भाव से लिखे जाते हैं जिससे मानव-भाव जागृत हो जाये और सौभाग्य की प्राप्ति हो। इन भावनाओं से वे लोग भाग्य लाने वाली देवी के प्रति आदर प्रदर्शित करते हैं। प्रत्येक घर के मुखिया के द्वारा इस देवी की पूजा की जाती है। इस पूजा के उत्सव पर कन्दीलें जलाई जाती हैं। इस अवसर पर अग्नि भी जलती हुई रखी जाती है।

पेरिस में भी नवीन वर्ष के उत्सव धार्मिक रूप लिए हुए होते हैं। लोग अपने परिचितों को इस दिन अपने यहाँ पर आमन्त्रित करते हैं। स्त्रियाँ इस कार्य में भाग नहीं ले सकतीं। इस उत्सव पर नम्रता अन्य उत्सवों के बजाय अधिक प्रदर्शित की जाती है। कोई भी व्यक्ति इस उत्सव पर गालियों, मृत्यु, जंगली जानवरों, बीमारी और प्रेतात्माओं के बारे में कुछ भी नहीं कह सकता। इस प्रकार के शब्द बहुत बुरे समझे जाते हैं और दुर्भाग्य समझा जाता है। नवीन वर्ष की खुशी में बालक छुट्टी मनाते हैं।

चीन के कुछ हिस्सों में पुतलों का उत्सव भी इस अवसर पर किया जाता है। मन्चूरिया में लोग अपने सिर पर इस दिन अजगर साँप लपेट लेते हैं। वह साँप वास्तविक नहीं होता; बल्कि पुतले के रूप में होता है। इन लोगों के बाल बड़े लम्बे-लम्बे होते हैं, जो कि सिर से पैर तक लपटे रहते हैं। मनुष्य का पूरा शरीर इन बालों से ढँक जाता है। अमेरिका में प्रवासी चीनी लोग इस अवसर पर विशेष रूप से इस उत्सव को मनाते हैं। अनामवासी भी पुतलों को अपने यहाँ सजाते हैं तथा नवीन वर्ष के आनंदों में नृत्य अधिक किया जाता है।

जापान में तोकियो नगर में इस अवसर पर रस्सी लटका देते हैं। यह रस्सी एक धार्मिक निशानी के रूप में समझी जाती है। ये रस्सियाँ दरवाजों के ऊपर लटका दी जाती हैं। यह माना जाता है कि ये रस्सियाँ उन लोगों को बुरी आदतों से बचाती रहेंगी तथा गंदी बातों को साफ करती रहेंगी।

इस अवसर पर भारत में भी लोग बड़े-बड़े धार्मिक उत्सव मनाते हैं। हिन्दू लोगों के घरों में इस दिन देवी की पूजा की जाती है। देवी की पूजा में लोग अनेक प्रकार के उत्सवों का आयोजन करते हैं। भारतीय इस दिन विशेष प्रकार का भोजन, जिसमें चावल मुख्य होता है, बनाकर खाते हैं। सरकारी दफ्तरों में छुट्टियाँ मनाई जाती हैं। इस दिन बालकों की स्कूल की छुट्टी रहती है। वे इस छुट्टी का उत्सव बड़े ही आनंद के साथ मनाते हैं। प्रसन्नता में अनेक प्रकार के खेल खेलते हैं। व्यापारी लोग अपने बही-खातों को ठीक करते हैं तथा नवीन वर्ष का नवीन हिसाब प्रारम्भ करते हैं। स्त्री-पुरुष, आवाल-वृद्ध सभी इस दिन आनन्दातिरेक से प्रसन्न-चित्त दिखाई पड़ते हैं। इस दिन रात्रि को उत्तरी भारत में दीवाली जैसा त्यौहार मनाया जाता है। लोग नवीन वर्ष की खुशी में अपने मित्रों को तथा सम्बन्धियों को बधाई-पत्र प्रेषित करते हैं। सभी लोग अपने-अपने धर्म के मुताबिक धार्मिक उत्सवों का आयोजन करते हैं। इस प्रकार संसार के भिन्न-भिन्न देशों में इस दिवस को भिन्न-भिन्न रूपों में मनाया जाता है।

उपसंहार

संसार की अनेक जातियों के रीतिरिवाजों का अध्ययन हमें यह बताता है कि हमारी संस्थायें भी बदलती रहती हैं। रिवाज, लोकाचार और रूढ़ि तीनों में ही निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन हमारी परिस्थितियों के कारण निरन्तर ही उपस्थित रहता है। हम चेतना में या अनजाने ही इस परिवर्तन को स्वीकार करते रहते हैं।

हमारे उत्तर भारतीय परिवारों में बाबा और दादी अँगरेखा लँहगा पहने मिल जाते हैं। पिता माता की वेश-भूषा में कुछ अंगरेजियत होती है, परन्तु फिर भी पुरुष की टोपी तथा स्त्री के छोड़े लक्षित होते हैं। आज की पीढ़ी में एकदम यूरोपीय वेशभूषा हमें पुरुषों में तो स्पष्ट मिल जाती है। युवतियों ने साड़ी तो नहीं छोड़ी है, लेकिन उसके पहनने के ढंग से ही आधुनिक छाप प्रगट हो जाती है। हमारी इन तीन पीढ़ियों के मानसिक गठन में भी बहुत बड़ा भेद है।

भारत में रिवाज की व्याख्या करना और भी कठिन है। हमारे रिवाज अनेक प्रजातियों (races) द्वारा आये हैं। हम प्रजाति कहते समय यह स्पष्ट याद रखते हैं कि धर्म से प्रजाति एक नहीं हो जाती। जैसे लोग भारत में मुसलमानों को एक जाति मानते हैं, जबकि वस्तुतः ऐसा सत्य नहीं है। भारत के मुसलमान विभिन्न प्रजातियों से बने हैं। भारत में आने वाले विदेशी मुसलमानों में अरब लोग सिनाइट ग्रुप के तुर्क थे। तुर्क अन्य ग्रुप से आये थे। मुगल लोग मंगोल थे। ईरानी और तूरानी अन्य ग्रुप के थे, जिन्हें आर्य्य कहना उचित है। हालाँकि भारतीय जातियों ने जब आर्य्य संस्कृति को स्वीकार कर लिया, तब इन सबको यवन कहा था। भारत में आने वाले यवन भी आर्य्य भाषा परिवार

के ही लोग थे, परन्तु भारत में उन्हें यवन और म्लेच्छ कहा गया। इसलिये जब हम प्रजाति कहते हैं तो हमारा आधार भाषा और संस्कृति पर इतना आश्रित नहीं रहता जितना नृत्तत्वीय (anthropological) भेद पर। इसमें एक ही संस्कृति में अनेक प्रजातियाँ रह सकती हैं।

मोटे तौर पर हमारे यहाँ निम्नलिखित संस्कृतियों का मिलन हुआ है—

(१) आर्य्य—इसमें वैदिक संस्कृत भाषा के बोलने वाली सभी प्रजातियाँ और उनके वंशज लिये जा सकते हैं।

(२) द्राविड़—इसमें आर्य्यों के अतिरिक्त कुछ विशेष समानतायें रखने वाली प्रजातियाँ रखी जा सकती हैं, जिनके अधिकांश वंशज आज दक्षिण भारत के द्रविड़ भाषा-भाषी हैं।

(३) हिमालय प्रदेश की प्रजातियाँ, जिनका नाम पुराणों तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में यक्ष, राक्षस, गंधर्व, किन्नर इत्यादि के रूप में मिलता है।

(४) टाँटेम प्रजातियाँ, जिनमें नाग, गरुण, उलूक, वानर, मण्डूक, छिपकली इत्यादि अनेक प्रजातियाँ आ सकती हैं।

(५) नीग्रो जातियाँ, जिनका प्रभाव हमें बंगाल, मदरास तथा अंडमन, नीकोबार में अधिक मिलता है।

(६) यहाँ आस्ट्रिक (आग्नेय) परिवार की भी जातियाँ हैं जैसे मुण्डा, कोल इत्यादि।

(७) इनके अतिरिक्त अन्य कबीला जातियाँ (tribes) भी हैं। प्राचीनकाल में जैसे शबर इत्यादि थीं।

(८) भारत में समय-समय पर विदेशों से भी अनेक जातियाँ आती रही हैं, जिनमें अन्तिम यूरोपीय जातियाँ हैं।

(९) निषाद जातियाँ भी यहाँ रही थीं, और वर्त्तमान हैं।

इतनी संस्कृतियों के पारस्परिक मिलन ने हमारे रीति-रिवाज, लोकाचार और रूढ़ियों को जन्म दिया है ! कौन सी परम्परा कितनी पुरानी है, इसे बताना नितांत असम्भव है। अभी तक मोअन-जो-दड़ो और हरप्पा की संस्कृतियों को सबसे प्राचीन माना जाता है। किन्तु बहुत सी बातें, जिनके कि वहाँ होते रहने के इंगित मिले हैं, वह बाद में भी मिलती हैं। यहाँ जातियों की सभ्यता और संस्कृति में परस्पर भेद रहा है और आज भी है। आज आवश्यकता है कि बहुत बड़े पैमाने पर इनमें से हर एक के रिवाजों का अध्ययन किया जाये और उलझी हुई गुथी के डोरे अलग-अलग किये जायें ! हमारी जाति

प्रथा, विवाह, उपासना, वेशभूषा और प्रायः प्रत्येक जीवन के नियमन में हमें 'विशुद्धता' नहीं मिल सकेगी। जातियों के मिलन ने यहाँ हास नहीं किया, किन्तु मानवीय मूल्यों को ऊपर उठाया है। व्यवहार और सिद्धान्त में भारत में जितना भेद लगता है, उतना अन्यत्र हमें नहीं मिलता।

सारे इतिहास में हमें रूढ़ियों से लड़ने वाले महापुरुष मिलते रहे हैं और प्रायः उनका विद्रोह हमें धर्म के रूप में मिलता है। यहाँ रिवाज के लिये 'सदाचार' शब्द को अधिक महत्त्व दिया गया है, अर्थात् अच्छे 'आचार' को प्रमुखता दी गई है। जातियों के मिलन ने अनेक-अनेक प्रथाओं को जन्म दिया है। द्रविड़ों (दक्षिण-भारतीयों) में आर्यों से मिलने से पहले भी जातियाँ थीं। प्राचीन-तमिल ग्रंथों में सुनार, लुहार, धोबी, कुम्हार आदि श्रेणियों का उल्लेख मिलता है। धर्मशास्त्रों में उत्तर भारत में जहाँ पुरानी जातियाँ (castes) मिलती हैं, वे मूलतः पेशे के हिसाब से बँटी हुई श्रेणियाँ (guilds) ही थीं, जिनको विलेख ज्ञानार्जन प्रणाली (specialization) के कारण बाद में जाति रूप मिल गया। भारत की पुरानी प्रजातियाँ (races) और कबीला जातियाँ (tribes) जैसे राक्षस, नाग, वानर, आदि सब रूप बदल कर अपने अपने पेशे के अनुसार जातियाँ (castes) बन गईं। आर्यों में वर्ण-प्रथा थी किन्तु ब्राह्मण-ग्रंथों से ऐसा आभास मिलता है कि वर्ण-प्रथा पहले असुरों में थी। उन्हीं से उसे आर्यों ने सीखा। आय्यों में, ऋग्वेद की प्रारम्भिक ऋचाओं के आधार पर, केवल दो मुख्य भेद थे,—देव और मानव। मनु के आदेशों को मानने वाले मानव थे। जो पुराने रिवाजों के अनुसार चलते थे वे देव कहलाते थे। बाद में 'हिरण्यगर्भ' संस्कार के द्वारा जातियों की शुद्धि होने लगी और 'त्राय संस्कार' भी पुराने रूपों में परिवर्तन उपस्थित करने लगे। दक्षिण भारत में वऽम ब्रह्म चरणम, अष्ट सहस्ररम आदि उपजातियाँ बताती हैं कि वे द्राविड़ पुरोहित जातियाँ थीं, जो बाद में आर्य ब्राह्मणों की जातियों के बराबर दर्जा प्राप्त कर सकीं। डा० के० के० पिल्ले के मतानुसार भी पेशे के हिसाब से आर्यों द्रविड़ों में वर्ण मिल गये। रोटी-बेटी का अलगाव क्रमशः परवर्ती काल में आया। महाभारत में स्पष्ट उल्लेख है कि ब्राह्मण मांस खाते थे और शूद्रों के हाथ का भोजन ग्रहण करते थे। बाद में ब्राह्मणों के लिये नये नियम बने जो 'कलिवर्ज्य' कहलाये और तब ब्राह्मणों में बहुत सी नई बातें चल पड़ीं। डा० पिल्ले के मतानुसार दक्षिण भारत में 'अहनानुरू' में वहाँ के विवाह की मूल प्राचीन रीतियाँ हैं। और 'सिलप्पडिकरम' में आर्यों और तमिलों की मिश्रित रीतियाँ हैं। अग्नि की परिक्रमा और पुरोहित द्वारा विवाह संस्कार आर्यों की

रीति है, जो दक्षिण में प्रचलित हुई। दूसरी ओर विवाह के समय वर का वधू के गले में 'ताली' बाँधना दक्षिण का खास रिवाज है, जो सब जातियों में प्रचलित है। जब तक पति जीवित रहता है, कोई स्त्री इसे नहीं उतारती। उत्तर भारत की विवाह-पद्धति में किस प्रकार राक्षस संस्कृति मिल गई है, इसका आभास हम दे चुके हैं। वैर के नगाइच ब्राह्मणों में अभी तक वर-वधू विवाह के बाद नाग देवता के टीले पर नाग के लिये दूध रखने जाते हैं, नाग की पूजा करते हैं। नगाइच वास्तव में उन्हीं नाग ब्राह्मणों की संतान हैं, जो-कि भारशिव नाग कहलाते थे। विद्वानों के मतानुसार नाग-पूजा मोअन-जोडड़ो संस्कृति में भी विद्यमान थी। महाभाष्यकार पतंजलि भी नाग ब्राह्मण ही थे। यह नाग पहले अलग संस्कृति वाले थे परन्तु जब नाग जातियाँ आर्यों में घुलमिल गईं तब नागों के पुरोहित लोग ब्राह्मण कहलाने लगे। उन्होंने आर्यों के वेद को स्वीकार कर लिया और आर्यों में नागपूजा आ गई। प्राचीनकाल के नियम दूसरे ही थे। वाल्मीकि रामायण में सीता ने गंगा पूजा की विधि बताते हुये कहा है कि मैं तुम में एक हजार घड़ा मदिरा और मांस युक्त भात समर्पित करूँगी। (अयोध्या काण्ड, ५२।६०)। उस समय के रिवाज में यदि मांस मदिरा का समर्पण मान्य न होता, तो सीता के वचन कभी भी ऐसे नहीं होते।

उद्भट विद्वान पी० वी० काणे ने धर्मशास्त्रों पर गंभीर विवेचन प्रस्तुत किया है। उन्होंने 'आचार' पर विशेषतया प्रकाश डाला है। उनके मतानुसार भारत में 'आचार' शब्द का प्रयोग रिवाज के लिये ही होता था।

समाज की व्यवस्था और परिस्थितियों का रिवाजों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। पहले ब्राह्मण लोग भारत में चौराफाड़ी करते थे, किंतु बाद में छुआछूत के कारण वह काम गंदा समझा जाने लगा और धीरे-धीरे वह विद्या ही नष्ट हो गई। केवल परिस्थितियों ने ही रिवाज बदल दिया और परिणाम कुछ का कुछ हो गया।

भारत में सती-प्रथा भी ऐसी ही थी। आर्यों में सबसे पहले पर्दा और सती-प्रथा का उल्लेख वाल्मीकि रामायण, महाभारत तथा पौराणिक ग्रंथों में हुआ है। पांडु के मरने पर माद्री सती हो गई थी। वाल्मीकि रामायण में उल्लेख प्राप्त न होने पर भी अन्यत्र वर्णन आता है कि मेघनाद की स्त्री सुलोचना सती हुई थी। इसका अर्थ है कि राक्षसों में सती होना जायज था। सती होने का कारण क्या था? जब पुरुष की सत्ता का समाज में प्राधान्य बढ़ गया और

स्त्री उसके अपहरण और भोग की सामग्री हुई, तब उसने सारे गणगोत्र के पुरुषों से अपनी रक्षा के लिये पातिव्रत धर्म को स्वीकार किया। राक्षसों में कई सांस्कृतिक स्तरों के लोग थे। कुछ राक्षस नरभक्षी थे। कालमुख राक्षस नरबलि देते थे। नैऋत्य और किकर सभ्य थे। रावण आदि राक्षसों में पुरोहित कुलों के लोग थे। राक्षस मूलतः रक्षा करने वाले थे। (रक्षामेति च यैरुक्तं राक्षसास्ते भवन्तुवः (वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड ४।१३) और मानवों के रक्षक थे (रक्षध्वमिति मानदः। वही ११।१३) और मानव कौन थे? मनु के नियमों का पालन करने वाले। राक्षस एक पति वाली गृहस्थ स्त्री को सम्मान देते थे। एक पति वाली स्त्रियाँ देवों में नहीं होती थीं। देवलोक में न देव एक स्त्री के होते थे, न अप्सरा एक पति की होती थी। (वही २६।३६-४०) राक्षसियाँ सती साध्वी होती थी। (वही, सुन्दरकाण्ड, ५।६) जिस प्रकार मित्र में पुरुष के मरने पर स्त्री तथा सेवक आदि भी उसकी कब्र में बंद कर दिये जाते थे कि वे परलोक में उसके काम आयेंगे, उसी प्रकार संभवतः पितृसत्ता के उस जोरदार समय में स्त्री भी पति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये परलोक भेज दी जाती थी। शायद प्रारंभ में यह भी कारण रहा हो कि स्त्री जब एक पुरुष की सामग्री हो चुकी तो दूसरा उसे क्यों भोगे? विधवा विवाह रोकने में आज भी इसी भावना को सैक्स के पाप-पुण्य से मिला दिया गया है। पर्दा-प्रथा का उल्लेख भी राक्षसों में स्पष्ट मिलता है।^१ पति के मरने पर कुछ राक्षसियों में (या राक्षस जातियों में) जीवनभर विवाह नहीं होता था। काम-भोग उनके लिये वर्जित होता था।^२

रामायण काल के बाद जब राक्षस संस्कृति का आर्यो पर प्रभाव पड़ा तब शायद माद्री भी सती हो गई। बाद में यह प्रथा हमें अन्य विदेशों से आई जातियों में भी मिलती है। राजपूतों में यह निरंतर चलती रही। बंगाल में तो इसे विलियम बेटिंग ने रोका था, जब राजा राममोहन राय ने उसे सहायता दी थी।

सामाजिक रिवाजों में हेर-फेर का क्रम पुराना ही है। कलिवर्ज्य इसका

१. पश्येष्टदार दरांस्ते भ्रष्टलज्जावगुण्ठितान् ।

बर्हिनिष्पतितान् सर्वान् कथं दृष्ट्वा न कुप्यसे ?

(वाल्मीकिरामायण० युद्धकाण्ड ११४।६३)

२. विहीना कामभोगैश्च शोचिष्ये शाश्वतीः समाः ।

(वही ११४।५६)

एक उदाहरण हैं। काणे ने इसे विस्तार से दिया है। कुछ बातें हम यहाँ देते हैं :—

(१) नियोग वर्जित हुआ। पहले चलता था।

(२) पहले श्राद्ध में मांस और मदिरा भी काम आते थे। वे वर्जित हुए। (प्रजापति १५१)

(३) कलि में कुण्ड और गोलक संतान से उत्तराधिकार के अधिकार छिन गये। (लघु आश्वलायन २१-१४।१५)

(४) निम्न वर्ण कन्या से विवाह, मधुपर्क के लिये पशुबध, वानप्रस्था-श्रम, नरबलि, अश्वबलि, समुद्र-यात्रा, गोवध वर्जित हुए। (नारद महापुराण)

(५) सगोत्र और सपिण्ड कन्या से विवाह तथा मदिरापान छोड़ दिये गये। (ब्रह्मपुराण)

(६) देवर से भाभी का विवाह, बड़े पुत्र को पिता की सारी जायदाद मिलना, औरस और दत्तक के अतिरिक्त पुत्रों को उत्तराधिकार देना, विधवा-विवाह, अंतर्जातीय विवाह, सगोत्र और सपिण्ड कन्या से विवाह, आततायी ब्राह्मण का वध, शूद्र के हाथ से भोजन प्राप्ति, समुद्र-यात्री को समाज में बिना प्रायश्चित्त मिला लेना, सौत्रामणि यज्ञ में मदिरा-प्रयोग, वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश, ब्रह्मचारी का शौचार्थ जलघट लेकर विदेश जाना, अतिथि तथा दूल्हे के लिये वैदिक मंत्रों सहित पशुबलि और पितरों को पशुबलि, असवर्ण जाति के स्त्री और पुरुषों का यौन-संबंध, निम्न जाति के पुरुष से संभोग करने वाली माता का पालन-पोषण, यज्ञ में ब्राह्मण द्वारा पशुबलि, ब्राह्मणों द्वारा सोमरस देने वाली बूटी का बेचना, दास तथा शूद्र और अन्य निम्न वर्णों के यहाँ ब्राह्मण का भोजन करना, दूर देशों में तीर्थ यात्रा, सन्यास लेना, मद्यपान, इत्यादि को वर्जित कर दिया गया।

इसका तात्पर्य यही निकलता है कि पहले यह सब रिवाज समाज में चलते थे, परंतु परिस्थिति बदल जाने पर इनको छोड़ दिया गया।

कुमारिल ने अपने समय के कुछ रीति-रिवाजों का उल्लेख किया है—

(१) मथुरा और अहिच्छत्र की स्त्रियाँ मदिरा पीती थी।

(२) उत्तर देश के ब्राह्मण घोड़े बेचते थे। पत्नी के साथ एक ही थाली में खाना खाते थे। मित्रों, बच्चों के साथ भी खाया करते थे।

(३) दक्षिण देश के ब्राह्मण मामा भाँजी की शादी करते थे। पलंग पर बैठकर खाना खाते थे।

(४) उत्तर और दक्षिण के ब्राह्मण खाने पर बचे हुए भोजन को भी बचाकर रख लेते थे और बाद में खा लेते थे। पान खाकर आचमन नहीं करते थे और वे लोग सब वर्णों के लोगों के हाथों से छुए पान खाते थे। घोबी के धुले कपड़े पहनते थे, जो गधे की पीठ पर लादी में लाये जाते थे।

श्रुतियों को ही आचार का प्रमाण माना गया। स्मृतियों ने उसे ही निबाहा, परंतु उनमें हमें श्रुतियों का कहीं-कहीं विरोध भी मिल जाता है। जहाँ कारण दिखाई देता हो, वहाँ वेद की आज्ञा मान लेनी चाहिये—परंतु जहाँ न दिखाई दे वहाँ लोकाचार को ही स्वीकार कर लेना चाहिये, ऐसा भी हमें मिलता है। परंतु यह भी कहा गया है कि कारण समझ में न आने पर भी वेद की ही बात माननी चाहिये। यह रूढ़ि के अंतर्गत आता है। मनु ने स्पष्ट लिखा है कि राजा अपनी प्रजा के लोकाचार को रोके नहीं, बल्कि उसे ही स्वीकार कर ले।

इसी नियम से ब्राह्मणों ने अनेक जातियों के अनेक आचारों को स्वीकार कर लिया। हमारे यहाँ बहुत सी कुरीतियाँ भी हैं। स्वामी दयानंद ने बाल-विवाह, स्त्री-अशिक्षा इत्यादि कितनी ही बातों को मिटाने की चेष्टा की थी। महात्मा गांधी ने जाति-प्रथा तोड़ने की भी चेष्टा की। किन्तु जाति-प्रथा एक संस्था बन चुकी है, जिसको पहले तो इसीलिये सारे संत नहीं मिटा सके कि उसके पीछे खेतिहर सामंती व्यवस्था का आर्थिक आधार था, और अब वह प्रजातंत्र के चुनावों के विद्वेष के बल की रूढ़ि बना कर पाली जा रही है।

आज धीरे-धीरे अणु-युग उपस्थित हो गया है। पुरानी परंपरायें टूटने पर आ गई हैं। धीरे धीरे मनुष्य का कौतूहल बढ़ता जा रहा है। वह अपने रहन-सहन के बारे में अधिक से अधिक सोचने लगा है। आवश्यकता है कि हम अपने अतीत को ज्यादा समझें क्योंकि उसी की याद हमारे आचार में रूढ़ि बन कर पल रही है। हम जान गये हैं कि ग्रहण में ग्रहों की छाया पड़ती है, फिर भी क्योंकि पूर्वज इस कारण को न जानकर डरते थे और स्नान करते थे, हमारे यहाँ भी स्नान किया जाता है। परिवार में यह रिवाज है, पर तीर्थों में यही लोकाचार है और संस्कृति में यह एक रूढ़ि बन चुका है, जिसके लिये रेलें चलाई जाती हैं। एक समय विभिन्न जातियों के देवताओं और पवित्र स्थानों की याद रखने के लिये तीर्थस्थान बने थे। बाद में सांस्कृतिक एकता कायम रखने के लिये उनकी ओर यात्रा होने लगी, जैसा मुसलमानों में मक्का-मदीना तथा ईसाइयों में पैलैस्टाइन की यात्रा की जाती है, पर अब युग बदल गया है। परिस्थिति बदल गई है। हमें सबका त्याग नहीं करना है। अच्छी बातों को

चुनना है और जो परंपरायें अब हमारे लिये निरर्थक हो गई हैं उन्हें इतिहास में रखने के लिये छोड़ देना है ।

समाजशास्त्र के विद्यार्थियों को सदैव इनके प्रति जागरूक रहना चाहिये । मैकाइवर ने ठीक ही कहा है कि हमें इनका उपहास नहीं करना है, वरन् अधिक से अधिक तथ्यों को एकत्र करना हमारे लिये वैज्ञानिक विश्लेषण का आधार बन सकेगा और जितना हम एक दूसरे के अतीत और वर्तमान को जानते जायेंगे, हमारे पारस्परिक घृणा और द्वेष भी दूर होते जायेंगे और मानव-जाति का विवेक निर्मल हो सकेगा ।
